देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

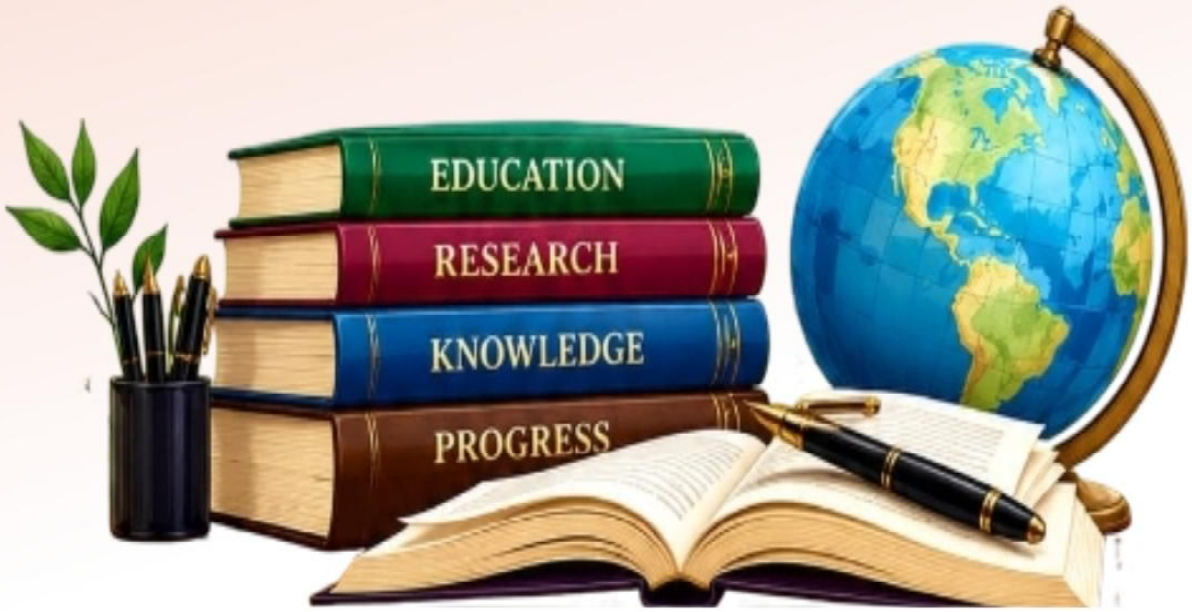
9 772395 711007

Impact Factor
8.642

ISSN : 2395-7115
Oct. 2026
Vol.-24, Issue-4

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL



Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

https://bohalshodhmanjusha.com/

Vol. 24 ISSUE-4, Part-2 (अक्टूबर 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115 PRINT INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 (Print International Standard Serial Number) नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका के एक अंक का शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

- शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।
- पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।
- शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।
- सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२
ISSN : 2395-7115
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – अक्टूबर 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	10–12
2.	राजसत्ता से संतत्व तक : गागरोन के राव प्रताप सिंह से संत पीपाजी बनने की यात्रा (युद्धभूमि के योद्धा से भक्ति-पथ के संत बनने तक की अनूठी यात्रा और उनकी वाणी का सामाजिक संदेश)	विशाल सोलंकी	13–16
3.	डॉ. भरत मिश्र प्राची के त्रिपद काव्य स्वर में जीवन-मूल्य, लोकचेतना और सामाजिक सरोकार	डॉ. नरेश सिहाग	17–23
4.	प्रगतिवादी कवि नागार्जुन की कविता में मानवीय संवेदना	दिनेश कुमार गोगलू	24–29
5.	भर्तृहरि के नीतिशतक और आत्मीय-स्वजनों के प्रति कर्तव्य का दार्शनिक आधार : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक सैद्धांतिक विश्लेषण	तारक नाथ नायक, डॉ. मीना कुमारी	30–35
6.	हाफिज़ रहमत खान और पीलीभीत नगर की स्थापना	शहनवाज हुसैन, डॉ. तनवीर हुसैन	36–40
7.	जेन जी और वैश्विक भारत	आलोक कुमार	41–44
8.	रजनी गुप्त का उपन्यास 'कुल जमा बीस' और उसमें निहित जीवन मूल्य	रितिक गुप्ता, डॉ. प्रतिभा सोलंकी	45–50
9.	समकालीन हिन्दी यात्रा-वृत्तान्त : शिल्पगत नवीनता और अभिव्यक्ति के नए क्षितिज	प्रशान्त कुमार शुक्ल, डॉ. आलोक विहारी लाल	51–60
10.	डिजिटल युग में निजता का अधिकार और मानवाधिकार : भारत के संदर्भ में अध्ययन	शाजिया नसीब	61–66
11.	भारतीय नागरिक समाज का विकास : सैद्धांतिक विमर्श से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तक	प्रियांशु प्रियदर्शनी, डॉ. नीरज कुमार	67–74
12.	बौद्ध धर्म और शिक्षा का एक संक्षिप्त अध्ययन	रंजू कुमारी	75–77
13.	भारत की गुरू शिष्य-परंपरा का मूलाधार 'आचार्य देवो भव'	गौरव कुमार	78–81
14.	**The Fear of Missing Out in Digital Marketing : The Interplay of Consumer Culture, Social Influence and Purchase Urgency in Shaping Consumer Buying Behaviour**	**Ashwani Kumar Srivastava**	**82-92**
15.	गांधी : सामाजिक क्रांति के सूत्रधार	डॉ. सुनीति कुमारी	93–98
16.	पंचवटी की पर्णकुटी : रामकथा और लोकस्मृति का सांस्कृतिक संगम	रूपेश रघुवंशी, डॉ. सुशील ब्यौहार	99–103
17.	डिजिटल युग में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति युवाओं की जागरूकता एवं वित्तीय व्यवहार का अध्ययन	अर्चना सिन्हा	104–116

18.	**An Ecocritical Approach To Different Shades of Nature In Ezekiel's Poetry**	**Dr. Neeta Gupta**	**117-121**
19.	आधुनिक हिंदी काव्य के आधार पर महाभारत के चरित्रों का चित्रण	मोनिका	122–126
20.	पाणिनीयव्याकरणं तथा कम्प्यूटेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् : तुलनात्मकम् अध्ययनम्	डॉ. प्रदीप कुमार मीणा	127–134
21.	विष्णु प्रभाकर के नाटकों में विवाह-संस्था, पीढ़ीगत संघर्ष और स्त्री की निर्णय-स्वायत्तता : समाजशास्त्रीय एवं स्त्रीवादी अध्ययन	उषा रानी	135–139
22.	भारतीय ज्ञान परंपरा में रामायण और महाभारत का वैज्ञानिक व सांस्कृतिक योगदान	प्रथम भनोत्रा	140–143
23.	औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का कानपुर के वस्त्र उद्योग पर प्रभाव (1858–1947)	विजेता दीक्षित	144–150
24.	**An Ethnographic Study on Non-Brahmanical Wandering Priests in North India : The Living Embodiments of Shiva**	**Dr. Manu Sharma**	**151-157**
25.	इक्कीसवीं सदी के हिन्दी बाल साहित्य की विधाएँ और बाल मन : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन	हेमलता अहिरवार, प्रोफेसर सरोज गुप्ता	158–164
26.	**The Role of Sleep in Athletic Recovery and Performance : A Systematic Review**	**Mr. Gagandeep Singh, Prof. Suresh Malik**	**165-170**
27.	छिंदवाड़ा जिले में सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि उत्पादकता का योगदान	डॉ. विनोद कुमार नागले	171–178
28.	महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव (छिंदवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में)	डॉ. शीलचन्द्र गुप्ता, शक्ति सिंगारे	179–186
29.	भारतीय राजनीति में राजनैतिक दलों का स्वरूप	डॉ. अखिलेश कुमार गुप्ता, सुरेखा द्विवेदी	187–195
30.	उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव का अध्ययन	डॉ. शीलचन्द्र गुप्ता, डॉ. कलावती स्वामी	196–203
31.	**Socio-Economic Pillars of Maternal and Child Health Transformation : An Economic Analysis with Special Reference to Chhotaudepur District of Gujarat (2014–2024)**	**Dr. Rakeshbhai R. Vankarsadhu**	**204-210**
32.	**Silk Road Economic Belt**	**Dr. Nagma Khanam**	**211+222**

संपादकीय... शोध से समाज तक : ज्ञान, संवेदना और सृजन की नई दिशाएँ

प्रिय शोधार्थियों, प्राध्यापकों, विद्वानों, साहित्यकारों एवं सुधी पाठकों,

सादर नमस्कार!

'बोहल शोध मंजूषा' के 'अक्टूबर 2027' अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है। किसी भी शोध पत्रिका का उद्देश्य केवल शोध–पत्रों का प्रकाशन करना नहीं होता, बल्कि वह ज्ञान, विचार, विमर्श और समाज के बीच एक सार्थक सेतु का निर्माण करती है। शोध तब अधिक सार्थक बनता है, जब वह पुस्तकालयों और शोध–संगोष्ठियों की सीमाओं से निकलकर समाज, शिक्षा, संस्कृति और मानव जीवन के प्रश्नों से जुड़ता है।

आज का समय तीव्र परिवर्तन का समय है। शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, भाषा, साहित्य, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संबंधों के स्वरूप निरंतर बदल रहे हैं। विशेष रूप से उच्च शिक्षा में बहुविषयक अध्ययन, शोध एवं नवाचार, कौशल–विकास और तकनीकी एकीकरण पर व्यापक अकादमिक विमर्श चल रहा है। ऐसे परिवर्तित परिवेश में शोधकर्ता की भूमिका केवल तथ्यों का संग्रह करने वाले व्यक्ति की नहीं, बल्कि प्रश्न उठाने वाले, प्रमाण खोजने वाले और समाज को नई दृष्टि देने वाले चिंतक की भी है।

'बोहल शोध मंजूषा' का मूल उद्देश्य इसी शोध–संस्कृति को प्रोत्साहित करना है। हम मानते हैं कि ज्ञान की कोई एक सीमा या एक भाषा नहीं होती। साहित्य से विज्ञान तक, कला से वाणिज्य तक, इतिहास से भूगोल तक, विधि से शिक्षा तक और पत्रकारिता से प्रौद्योगिकी तक– हर क्षेत्र में गंभीर शोध की आवश्यकता है। बहुविषयक दृष्टि आज इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वर्तमान समस्याएँ प्रायः किसी एक विषय की सीमा में पूरी तरह समझी नहीं जा सकतीं।

शोध की गुणवत्ता और मौलिकता :

शोध का वास्तविक मूल्य उसकी संख्या में नहीं, बल्कि उसकी 'मौलिकता, प्रमाणिकता, पद्धतिगत स्पष्टता और उपयोगिता' में निहित है। एक अच्छा शोध–पत्र किसी स्थापित धारणा को नए प्रमाणों के साथ देख सकता है, किसी उपेक्षित विषय को सामने ला सकता है अथवा किसी सामाजिक समस्या को समझने की नई दृष्टि दे सकता है।

आज शोधकर्ताओं के सामने अवसर भी अधिक हैं और चुनौतियाँ भी। डिजिटल संसाधनों ने सामग्री तक पहुँच आसान बनाई है, लेकिन इसी के साथ स्रोतों की विश्वसनीयता, साहित्यिक चोरी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता से उत्पन्न सामग्री, संदर्भों की शुद्धता और अकादमिक ईमानदारी जैसे प्रश्न भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। हाल के अध्ययनों में भी उच्च शिक्षा में एआई के उपयोग के साथ अकादमिक ईमानदारी, डेटा–गोपनीयता, असमान डिजिटल पहुँच और संस्थागत तैयारी जैसे मुद्दों पर ध्यान दिया गया है।

अतः आज के शोधार्थी के लिए केवल तकनीक का ज्ञान पर्याप्त नहीं है। उसे 'स्रोत–परीक्षण, संदर्भ–विवेक, मौलिक चिंतन और शोध–नैतिकता' को भी अपने शोध का अनिवार्य अंग बनाना होगा।

भारतीय भाषाएँ और ज्ञान की लोकतांत्रिक पहुँच :

भारतीय ज्ञान–परंपरा अत्यंत समृद्ध और बहुभाषिक रही है। हिंदी सहित भारतीय भाषाओं में साहित्य, दर्शन, इतिहास, लोकसंस्कृति, चिकित्सा, कृषि, समाज और जीवन–दर्शन से संबंधित विशाल ज्ञान–संपदा

उपलब्ध है। आवश्यकता इस बात की है कि इस ज्ञान को आधुनिक शोध–पद्धतियों के साथ जोड़कर नए संदर्भों में देखा जाए।

शोध का अंतरराष्ट्रीय होना केवल अंग्रेजी भाषा में लिखने तक सीमित नहीं होना चाहिए। भारतीय भाषाओं में होने वाला मौलिक शोध भी वैश्विक अकादमिक संवाद का हिस्सा बन सकता है, यदि उसमें स्पष्ट शोध–प्रश्न, विश्वसनीय स्रोत, उपयुक्त पद्धति और अंतरराष्ट्रीय स्तर की अकादमिक गंभीरता हो।

'बोहल शोध मंजूषा' इसी बहुभाषिक और बहुविषयक शोध–परंपरा को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध है। हमारा विश्वास है कि 'स्थानीय अनुभवों से निकला ज्ञान भी वैश्विक विमर्श को समृद्ध कर सकता है।'

गांव, समाज और शोध :

शोध का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हमारा अपना समाज है। गांवों में बदलती कृषि व्यवस्था, ग्रामीण शिक्षा, रोजगार, पलायन, महिला सशक्तीकरण, लोकभाषाएँ, लोककला, जल–संरक्षण, पर्यावरण, स्वास्थ्य और डिजिटल तकनीक जैसे अनेक विषय शोध की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भारतीय उच्च शिक्षा पर समकालीन शोध में ग्रामीण–शहरी असमानता, भाषाई बाधाओं, डिजिटल अवसंरचना और सामाजिक समावेशन जैसे प्रश्न भी महत्वपूर्ण बने हुए हैं। इसलिए शोधार्थियों के लिए आवश्यक है कि वे केवल बड़े शहरों और संस्थानों तक सीमित न रहें, बल्कि ग्रामीण और स्थानीय समाज के अनुभवों को भी अकादमिक विमर्श का हिस्सा बनाएं।

बोहल जैसे ग्रामीण परिवेश से प्रकाशित शोध पत्रिका के लिए यह जिम्मेदारी और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। स्थानीय जीवन को शोध का विषय बनाना केवल स्थानीयता नहीं हैय अनेक बार स्थानीय अनुभव ही व्यापक सामाजिक परिवर्तन को समझने की कुंजी प्रदान करते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और शोध का भविष्य :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शोध और शिक्षा के सामने नई संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं। साहित्य–समीक्षा, डेटा–संगठन, भाषा–सहायता, अनुवाद, सामग्री वर्गीकरण और प्रारंभिक विश्लेषण जैसे कार्यों में डिजिटल उपकरण शोधकर्ता की सहायता कर सकते हैं। लेकिन तकनीक शोधकर्ता का विकल्प नहीं है।

शोध की आत्मा 'प्रश्न, तर्क, प्रमाण और मौलिक चिंतन' में है। किसी डिजिटल उपकरण से प्राप्त सामग्री को बिना सत्यापन स्वीकार करना शोध की विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए भविष्य का शोधकर्ता तकनीक का उपयोग अवश्य करे, लेकिन विवेक और अकादमिक नैतिकता के साथ करे।

हमें ऐसी शोध संस्कृति विकसित करनी होगी जिसमें तकनीक सुविधा बने, सत्य का विकल्प नहीं, सहायक बने, शोधकर्ता की आलोचनात्मक दृष्टि का प्रतिस्थापन नहीं।

युवा शोधार्थियों से अपेक्षा :

आज बड़ी संख्या में युवा शोधार्थी उच्च शिक्षा और अनुसंधान से जुड़ रहे हैं। यह भारतीय अकादमिक जगत के लिए सकारात्मक संभावना है। लेकिन शोध की यात्रा धैर्य मांगती है। शीघ्र प्रकाशन की इच्छा के बजाय गुणवत्तापूर्ण शोध पर ध्यान देना आवश्यक है।

एक युवा शोधार्थी को चाहिए कि वह :

- विषय का चयन सोच–समझकर करे,
- शोध–समस्या को स्पष्ट रूप से निर्धारित करे,
- प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों में अंतर समझे,

- प्रमाणों का आलोचनात्मक परीक्षण करे,
- संदर्भों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करे,
- साहित्यिक चोरी से बचे,
- शोध–नैतिकता का पालन करे,

और अपने निष्कर्षों को प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत करे।

शोध–पत्रिका शोधार्थी के लिए केवल प्रकाशन का माध्यम नहीं, बल्कि अकादमिक संवाद का मंच भी है। आलोचना और सुझाव को शोध की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी परिपक्वता की प्रक्रिया समझना चाहिए।

समाजोपयोगी शोध की आवश्यकता :

आज हमें ऐसे शोध की आवश्यकता है जो समाज के वास्तविक प्रश्नों से संवाद करे। शिक्षा में गुणवत्ता कैसे बढ़े? ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार के अवसर कैसे विकसित हों? भारतीय भाषाओं को डिजिटल संसार में कैसे सशक्त किया जाए? लोकसंस्कृति और आधुनिकता के बीच संतुलन कैसे बने? पर्यावरणीय संकटों का स्थानीय स्तर पर समाधान कैसे खोजा जाए? नई तकनीक का उपयोग मानवीय मूल्यों के साथ कैसे हो?

ये प्रश्न केवल सरकार या संस्थाओं के नहीं हैं, शोध–जगत की भी जिम्मेदारी है कि वह इनके वैज्ञानिक, सामाजिक और मानवीय पक्षों को समझे।

एक शोध–पत्र का महत्त्व केवल उसके उद्धरणों की संख्या से निर्धारित नहीं होना चाहिए। उसका सामाजिक प्रभाव, ज्ञान–विस्तार में योगदान और भविष्य के शोध के लिए उसका उपयोग भी महत्त्वपूर्ण है।

'बोहल शोध मंजूषा' की प्रतिबद्धता :

'बोहल शोध मंजूषा' शोधार्थियों, प्राध्यापकों, साहित्यकारों और विभिन्न विषयों के विद्वानों को एक साझा मंच उपलब्ध कराने के उद्देश्य से निरंतर प्रयासरत है। हमारा प्रयास है कि पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में विषयगत विविधता के साथ अकादमिक गंभीरता भी बनी रहे।

हम अपने सभी लेखकों से अपेक्षा करते हैं कि वे मौलिक, प्रमाणिक और शोध–पद्धति के अनुरूप सामग्री प्रस्तुत करें। इसी प्रकार पाठकों और समीक्षकों से प्राप्त रचनात्मक सुझाव पत्रिका को अधिक समृद्ध बनाने में सहायक होंगे।

हमारा विश्वास है कि शोध की यात्रा अकेले व्यक्ति की यात्रा नहीं है। शोधकर्ता, समीक्षक, संपादक और पाठककृसभी मिलकर ज्ञान की एक ऐसी परंपरा का निर्माण करते हैं जिसमें प्रश्न पूछना, विचार करना और सत्य की खोज करना निरंतर जारी रहता है।

अक्टूबर 2027 का यह अंक केवल शोध–पत्रों का संग्रह न होकर ज्ञान और संवेदना के बीच संवाद का एक प्रयास है। हमारा समय परिवर्तनशील है, लेकिन शोध की मूल आत्मा आज भी वही है– 'सत्य की खोज, ज्ञान का विस्तार और समाज के प्रति उत्तरदायित्व।'

आइए, हम ऐसी शोध संस्कृति का निर्माण करें जिसमें मौलिकता हो, प्रमाणिकता हो, भारतीय संदर्भों की समझ हो, वैश्विक दृष्टि हो और सबसे बढ़कर मानव कल्याण की भावना हो।

'बोहल शोध मंजूषा' अपने सभी शोधार्थियों, प्राध्यापकों, समीक्षकों, लेखकों एवं पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करती है। आपके विचार, शोध और सहयोग ही इस यात्रा की वास्तविक शक्ति हैं।

'शोध जीवित रहे, विचार जीवित रहें और ज्ञान समाज के लिए उपयोगी बनता रहे– इसी शुभकामना के साथ।'

संपादक : बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 13-1

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

राजसत्ता से संतत्व तक : गागरोन के राव प्रताप सिंह से संत पीपाजी बनने की यात्रा

(युद्धभूमि के योद्धा से भक्ति-पथ के संत बनने तक की अनूठी यात्रा और उनकी वाणी का सामाजिक संदेश)

विशाल सोलंकी

स. आ. इतिहास, श्री जैन कन्या पी.जी. महाविद्यालय, बीकानेर।

राजस्थान की धरती केवल दुर्गों, युद्धों और शौर्यगाथाओं की भूमि नहीं रही, बल्कि यहां तलवार छोड़कर तप और भक्ति का मार्ग अपनाने वाले अनेक व्यक्तित्व भी हुए हैं। इन्हीं में एक विशिष्ट नाम है संत पीपा का। उनका जीवन एक ऐसी यात्रा का प्रतीक है, जिसमें राजसत्ता का वैभव, युद्धभूमि का पराक्रम और आध्यात्मिक चेतना एक–दूसरे से जुड़ते दिखाई देते हैं।

झालावाड़ का गागरोन दुर्ग इस कथा का महत्वपूर्ण केंद्र है। आहू और कालीसिंध नदियों से घिरा यह जल दुर्ग राजस्थान की स्थापत्य और सैन्य परंपरा का महत्वपूर्ण स्मारक है। गागरोन का संबंध खींची राजपूतों से रहा और इसी परंपरा में राव प्रताप सिंह खींची का नाम आता है, जिन्हें भक्ति साहित्य और लोकपरंपरा में आगे चलकर संत पीपा के रूप में स्मरण किया गया।

गागरोन के इतिहास से जुड़े अनेक आख्यान साहित्य, वंशावलियों और लोकस्मृतियों में मिलते हैं। इसके प्राचीन नाम के रूप में ढोलरगढ़ या डोडगढ़ का उल्लेख भी मिलता है। खींची शासकों के शासनकाल में यह क्षेत्र राजनीतिक और सैन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा।

गागरोन से संबंधित लोक–कथाओं में देवनसिंह खींची और बिजलदेव का प्रसंग विशेष रूप से चर्चित है। एक कथा के अनुसार देवनसिंह की बहन गंगारमण का विवाह बिजलदेव से हुआ था। पति के दुर्व्यवहार से दुखी गंगारमण ने अपने भाई को न्याय के लिए प्रेरित किया। एक दूसरी लोकपरंपरा में घोड़ों को लेकर देवनसिंह और बिजलदेव के बीच विवाद तथा उसके बाद युद्ध का वर्णन मिलता है।

कथा के अनुसार युद्ध में बिजलदेव की मृत्यु हुई और गंगारमण ने पति की चिता पर सती होने का निर्णय लिया। इसी से जुड़ी एक लोकमान्यता यह भी है कि उनकी स्मृति में ढोलरगढ़ का नाम गंगारमण पड़ा और कालांतर में यही नाम गागरोन के रूप में प्रचलित हुआ।

इतिहास के गंभीर अध्ययन की दृष्टि से इन घटनाओं के प्रत्येक विवरण को प्रमाणित करना आवश्यक है। इसलिए इन्हें इतिहास के निर्विवाद तथ्य के बजाय लोक–परंपरा और साहित्यिक आख्यान के रूप में देखना अधिक उपयुक्त होगा। फिर भी इन कथाओं का महत्व इस बात में है कि उन्होंने गागरोन की सामूहिक स्मृति को सदियों तक जीवित रखा।

राजपूत शासक से संत बनने की यात्रा :

इसी खींची राजवंशीय परंपरा में राव प्रताप सिंह का नाम आता है। परंपरागत विवरण उन्हें गागरोन का शासक, कुशल योद्धा और प्रजापालक बताते हैं। उनका प्रारंभिक जीवन राजसत्ता, युद्धकला और क्षात्र परंपरा के बीच बीता।

उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति थी। धार्मिक आडंबरों, सामाजिक विसंगतियों और जीवन के बाहरी प्रदर्शन से उनका मन धीरे–धीरे विरक्त होने लगा। भक्ति परंपरा के अनुसार अंततः उन्होंने राजपाट का त्याग किया और संत रामानंद की शरण ग्रहण की।

यहीं से राव प्रताप सिंह का जीवन एक नई दिशा में मुड़ा।

राजा से संत बनने का यह परिवर्तन केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक यात्रा नहीं था, बल्कि मध्यकालीन भारत में विकसित हो रही भक्ति चेतना का भी हिस्सा था। वे आगे चलकर संत पीपा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

संत रामानंदजी की शिष्य परंपरा :

मध्यकालीन भारत में संत रामानंद की परंपरा ने भक्ति को व्यापक सामाजिक आधार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रामानंद से जुड़ी भक्ति परंपरा में विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों के संतों और भक्तों का उल्लेख मिलता है।

राजसी वैभव छोड़कर भक्ति के मार्ग पर चलना उनके जीवन का निर्णायक मोड़ था। यह संदेश भी महत्वपूर्ण था कि आध्यात्मिक श्रेष्ठता जन्म या पद से नहीं, बल्कि साधना और आचरण से प्राप्त होती है।

संत पीपा की वाणी का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उनकी अंतर्मुखी आध्यात्मिक दृष्टि है। वे मनुष्य के शरीर को ही ईश्वर के अनुभव का माध्यम मानते हैं–

"काया देवल काया देव, काया पूजा पाती। काया धूप दीप नैवेद्य, काया में तीर्थ जाती।।"

इस वाणी का भाव अत्यंत व्यापक है। संत पीपा बाहरी तीर्थ और कर्मकांड की अपेक्षा मनुष्य के भीतर स्थित आध्यात्मिक चेतना को महत्व देते हैं।

उनके लिए ईश्वर की खोज किसी दूरस्थ स्थान पर जाने की प्रक्रिया मात्र नहीं, बल्कि अपने भीतर झांकने की प्रक्रिया है।

आज के संदर्भ में भी यह विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। धार्मिकता यदि व्यक्ति के व्यवहार में सत्य, संयम, करुणा और नैतिकता पैदा नहीं करती, तो केवल बाहरी प्रदर्शन उसका पर्याप्त प्रमाण नहीं हो सकता।

कर्म और उत्तरदायित्व का संदेश :

संत पीपा की वाणी व्यक्ति को उसके कर्मों के प्रति सजग करती है :–

"पीपा पाप न कीजिए, अलगो रहिए आप। करनी जैसी आपरी, कुण बेटो कुण बाप।।"

अर्थात्, व्यक्ति अपने कर्मों का परिणाम स्वयं भोगता है। न संबंध, न सामाजिक प्रतिष्ठा और न ही बाहरी पहचान उसके कर्मों की जिम्मेदारी से उसे मुक्त कर सकती है।

यही कारण है कि संत पीपा की वाणी केवल धार्मिक उपदेश नहीं रह जाती, बल्कि वह जीवन–दर्शन का रूप ले लेती है।

संत पीपा की एक अन्य प्रसिद्ध वाणी है –

"उठ भाग्यो वाराणसी, न्हायो गंग हजार। पीपा वे जन उत्तम घणा, जिण राम कयो इक बार।।"

इसमें तीर्थ–स्नान के बाहरी कर्म की तुलना ईश्वर के सच्चे स्मरण से की गई है।

इसका उद्देश्य तीर्थ या धार्मिक आस्था का निषेध करना नहीं, बल्कि यह बताना है कि धार्मिक कर्म का वास्तविक मूल्य तभी है जब वह मनुष्य के भीतर परिवर्तन पैदा करे।

संत पीपा के लिए राम–नाम केवल उच्चारण नहीं, बल्कि चेतना का विषय था।

संत पीपा की वाणी में जीवों के प्रति संवेदना और संयम का संदेश भी मिलता है :–

"जीव मार जौहर करे, खातां करे बखाण। पीपा प्रत्यक्ष देखलो, थाली मांय मसाण।।"

इस वाणी के माध्यम से वे मनुष्य को अपने भोजन और आचरण के नैतिक पक्ष पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

संत पीपा की शिक्षाओं को उनके संपूर्ण भक्ति–दर्शन के संदर्भ में देखना आवश्यक है। उन्हें केवल किसी एक सामाजिक निषेध के उपदेशक के रूप में सीमित करने के बजाय उनकी मूल चिंता 'आंतरिक शुद्धता और नैतिक जीवन' को समझना अधिक महत्वपूर्ण है।

राजपूत समाज और संत पीपाजी की परंपरा :

संत पीपा की स्मृति राजस्थान सहित पश्चिम और मध्य भारत के अनेक समुदायों में आज भी जीवित है। विभिन्न लोक–परंपराओं में अनेक राजपूत वंशों और समूहों को उनकी अनुयायी परंपरा से जोड़ा जाता है।

जिनमें सोलंकी, दहिया, बड़गुजर, डाबी, टाक, झाला, चावड़ा, भाटी, राठौड़, चौहान, प्रतिहार, कच्छावा, गोहिल, सिसोदिया, तंवर, गहलोत और परमार आदि समुदायों के बीच संत पीपा से संबंधित लोकस्मृतियां और परंपराएं मिलती हैं।

कुछ समुदाय स्वयं को पीपावंशी कहकर संत पीपा की परंपरा से अपना संबंध व्यक्त करते हैं।

हालांकि इस प्रकार की वंशगत और सामाजिक पहचान के संबंध में उपलब्ध वंशावलियों, ताम्रपत्रों और मौखिक परंपराओं का स्वतंत्र ऐतिहासिक परीक्षण आवश्यक है। लोकस्मृति सामाजिक इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत है, लेकिन उसके प्रत्येक दावे को अभिलेखीय प्रमाण के समान नहीं माना जा सकता।

संत पीपाजी और सिलाई-कर्म की परंपरा :

संत पीपा ने अपने अनुयायियों को हिंसा से दूर रहकर सींवन–कर्म अर्थात वस्त्र सिलाई को आजीविका के रूप में अपनाने की प्रेरणा दी।

यह परंपरा इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि भारतीय संत परंपरा ने केवल धार्मिक विचारों को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि अनेक समुदायों के सामाजिक जीवन, व्यवसाय और नैतिक मूल्यों को भी प्रभावित किया।

संत पीपाजी किसी एक जाति या समुदाय से आगे के व्यक्तित्व थे। संत पीपाजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्हें केवल एक जाति या समुदाय के संत के रूप में सीमित नहीं किया जा सकता। वे सभी को नैतिक साधनों से ईश्वर प्राप्ति का उपदेश देते थे।

उनका जीवन तीन महत्वपूर्ण चरणों में देखा जा सकता है– राजसत्ता, युद्ध और कर्तव्य एवं उनकी आध्यात्मिक साधना।

उन्होंने राजसी जीवन देखा, युद्धभूमि का अनुभव किया और अंततः वैराग्य तथा भक्ति का मार्ग चुना।

यही जीवन–यात्रा उन्हें भारतीय संत परंपरा में विशिष्ट बनाती है। उनकी वाणी में मनुष्य को स्वयं से प्रश्न करने की प्रेरणा है। वे बताते हैं कि धर्म केवल बाहरी पहचान नहीं, बल्कि जीवन जीने की पद्धति है। यदि मनुष्य का आचरण शुद्ध नहीं है, तो बाहरी धार्मिकता अधूरी है।

आज के समय में संत पीपाजी की प्रासंगिकता :

आज समाज तकनीकी रूप से जितना आगे बढ़ा है, उतनी ही तेजी से बाहरी प्रदर्शन भी बढ़ा है। धार्मिकता, सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत सफलता के प्रदर्शन के बीच व्यक्ति के भीतर की शांति कहीं पीछे छूटती दिखाई देती है।

ऐसे समय में संत पीपा की वाणी मनुष्य को भीतर लौटने का संदेश देती है।

उनकी विचार दृष्टि हमें बताती है कि,धर्म आडंबर नहीं बल्कि आचरण है।

भक्ति प्रदर्शन नहीं, आत्मानुभूति है। तीर्थ केवल बाहर नहीं, भीतर भी है और ईश्वर की खोज अंततः अपने ही अंतःकरण की यात्रा है।

इसलिए संत पीपा की स्मृति को केवल जयंती, प्रतिमा या समारोह तक सीमित करना उनकी शिक्षाओं के व्यापक अर्थ को सीमित करना होगा। उनके साहित्य और वाणी का अध्ययन, उनके विचारों की समकालीन संदर्भ में व्याख्या और उनके नैतिक संदेश को जीवन में उतारना ही उनकी परंपरा को जीवित रखने का सार्थक माध्यम हो सकता है।

गागरोन का वह योद्धा, जिसने कभी हाथ में तलवार उठाई थी, आगे चलकर हाथ में भक्ति की मशाल लेकर चला। उसका जीवन हमें यह बताता है कि मनुष्य की सबसे बड़ी विजय किसी दूसरे पर विजय नहीं, बल्कि स्वयं पर विजय है।

संत पीपा की वाणी आज भी इसी आत्मविजय का आह्वान करती है।

जय गुरुदेव।

संदर्भ :

1. श्री पीपाजी की वाणी।
2. श्री पीपा प्रकाश – मासिक पत्रिका।
3. संत पीपा से संबंधित उपलब्ध लोक–साहित्य एवं परंपरागत वंशावलियां।
4. गागरोन एवं खींची राजवंश से संबंधित ऐतिहासिक एवं साहित्यिक स्त्रोत।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 17-23

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

डॉ. भरत मिश्र प्राची के त्रिपद काव्य स्वर में जीवन–मूल्य, लोकचेतना और सामाजिक सरोकार

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
कार्यकारी संपादक, कंचनलता
गुगन निवास, 26, पटेल नगर, भिवानी, हरियाणा।

सारांश :

त्रिपद काव्य (या त्रिपदी) कविता का वह रूप है जिसमें तीन पंक्तियों (lines) का एक छंद या स्टैंजा (Tercet) होता है। सरल शब्दों में, ऐसी कविताएँ या छंद जो केवल तीन पंक्तियों से मिलकर बनते हैं, उन्हें त्रिपद काव्य कहा जाता है। समकालीन हिंदी कविता के परिदृश्य में जनजीवन से जुड़े सरोकारों, नैतिक मूल्यों, सामाजिक चेतना तथा मानवीय संवेदनाओं को सरल और संप्रेषणीय भाषा में अभिव्यक्त करने वाली रचनाओं का विशेष महत्त्व है। डॉ. भरत मिश्र प्राची की 'त्रिपद काव्य स्वर' श्रृंखला इसी दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रस्तुत शोध आलेख में उनकी सात चयनित रचनाओं 'उत्तम है धन', 'अपना गांव', 'पितृपक्ष पर्व है', 'तीरथ समान', 'महाशक्ति है बेटी', 'वृद्धजन का करें सम्मान' तथा 'स्वस्थ जीवन शैली, यहीं आधार' का विश्लेषण किया गया है। इन रचनाओं में स्वास्थ्य, सदाचार, ग्राम्य जीवन, पितृ–स्मरण, सेवा, स्त्री–सशक्तीकरण, वृद्धजन सम्मान और स्वस्थ जीवन–शैली जैसे विविध विषयों को त्रिपदीय संरचना में प्रस्तुत किया गया है।

इन कविताओं का मूल स्वर जीवन को सकारात्मक, संतुलित, संवेदनशील और सामाजिक रूप से उत्तरदायी बनाने का है। कवि ने बड़े सामाजिक प्रश्नों को कठिन दार्शनिक भाषा के स्थान पर लोकप्रचलित शब्दावली, सहज वाक्य–विन्यास, तुकात्मकता और पुनरावृत्ति के माध्यम से सामान्य पाठक तक पहुँचाने का प्रयास किया है। 'त्रिपद' की संरचना प्रत्येक पद में विचार की क्रमिक स्थापना, विस्तार और निष्कर्ष का अवसर प्रदान करती है। इस कारण रचनाएँ काव्यात्मक होने के साथ–साथ संदेशात्मक भी बनती हैं। शोध का निष्कर्ष है कि इन रचनाओं में लोकमंगल, पारिवारिक संस्कार, सामाजिक समरसता, पर्यावरणीय चेतना, नारी सम्मान तथा स्वस्थ जीवन के पक्ष में एक समन्वित मूल्य–दृष्टि विकसित होती है।

बीज शब्द : त्रिपद काव्य, डॉ. भरत मिश्र प्राची, लोकचेतना, जीवन–मूल्य, ग्राम्य संस्कृति, नारी सम्मान, वृद्धजन, स्वास्थ्य चेतना, सामाजिक सरोकार।

1. प्रस्तावना :

हिंदी कविता का विकास केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहा है। भारतीय काव्य–परंपरा में कविता का संबंध लोकजीवन, नैतिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय मूल्यों से भी रहा है। कबीर,

रहीम, तुलसी, सूर और अनेक लोककवियों की परंपरा में ऐसी रचनाएँ मिलती हैं जिनमें सामान्य जन को संबोधित करते हुए जीवन के व्यवहारिक सत्य प्रस्तुत किए गए हैं। आधुनिक समय में भी कविता सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदना की प्रभावी अभिव्यक्ति का माध्यम बनी हुई है।

डॉ. भरत मिश्र प्राची की 'त्रिपद काव्य स्वर' रचनाओं को इसी व्यापक परंपरा के संदर्भ में देखा जा सकता है। इन रचनाओं की विशेषता यह है कि कवि जीवन के सामान्य अनुभवों से विषय ग्रहण करता है और उन्हें तीन पंक्तियों की संरचना में संक्षिप्त तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। प्रत्येक पद में प्रथम पंक्ति विषय का संकेत देती है, दूसरी पंक्ति उसे विस्तार देती है और तीसरी पंक्ति प्रायः निष्कर्ष अथवा केंद्रीय संदेश के रूप में सामने आती है।

'उत्तम है धन' में स्वास्थ्य और सदाचार को वास्तविक संपदा माना गया है। 'अपना गांव' में ग्रामीण जीवन और जन्मभूमि के प्रति लगाव व्यक्त हुआ है। 'पितृपक्ष पर्व है' भारतीय पारिवारिक एवं सांस्कृतिक स्मृति को सामने लाती है। 'तीरथ समान' में परहित, माता–पिता की सेवा, जन्मभूमि और निस्वार्थ सेवा को तीर्थ के समान महत्त्व दिया गया है। 'महाशक्ति है बेटी' नारी के सामर्थ्य और बेटी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण की स्थापना करती है। 'वृद्धजन का करें सम्मान' पीढ़ियों के बीच संबंध और वृद्ध अनुभव की महत्ता पर केंद्रित है। वहीं 'स्वस्थ जीवन शैली, यहीं आधार' शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य को भी जीवन का आधार मानती है।

इस प्रकार सातों रचनाएँ अलग–अलग विषयों को स्पर्श करते हुए अंततः मनुष्य और समाज को बेहतर बनाने वाली एक साझा मूल्य–दृष्टि का निर्माण करती हैं।

2. शोध के उद्देश्य एवं पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य डॉ. भरत मिश्र प्राची की चयनित 'त्रिपद काव्य स्वर' रचनाओं में निहित सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और मानवीय मूल्यों का अध्ययन करना है।

अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं :

1. त्रिपद काव्य की संरचनात्मक विशेषताओं को समझना।
2. चयनित रचनाओं में अभिव्यक्त जीवन–मूल्यों का विश्लेषण करना।
3. लोकजीवन और ग्राम्य संस्कृति के चित्रण को रेखांकित करना।
4. नारी, वृद्धजन और परिवार संबंधी दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
5. स्वास्थ्य एवं पर्यावरण चेतना की अभिव्यक्ति को देखना।
6. भाषा, शैली, लय, तुक और पुनरावृत्ति की भूमिका का विवेचन करना।
7. इन रचनाओं में निहित लोकमंगल की अवधारणा को स्पष्ट करना।

इस शोध में मुख्यतः 'पाठ–विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति' अपनाई गई है। प्रस्तुत सातों रचनाओं को प्राथमिक पाठ मानकर उनके विषय, शिल्प, भाषा, प्रतीक, मूल्य–दृष्टि और सामाजिक संदर्भों का विश्लेषण किया गया है।

3. त्रिपद काव्य की संरचनात्मक विशेषता :

'त्रिपद काव्य स्वर' का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष इसकी त्रिपदीय संरचना है। तीन पंक्तियों में विचार को पूर्णता प्रदान करना रचनाकार के लिए एक चुनौतीपूर्ण काव्य–कौशल है। सामान्यतः पहली पंक्ति में कथ्य का संकेत,

दूसरी में उसका विस्तार तथा तीसरी में निष्कर्षात्मक भाव दिखाई देता है।

उदाहरण के लिए :–

"संतुलित भोजन से, स्वस्थ रहे तन।
सुबह–सुबह योग से, प्रफुल्लित हो मन।
काया निरोग रहे, उत्तम है धन।"

यहाँ पहली पंक्ति शारीरिक स्वास्थ्य की ओर संकेत करती है, दूसरी मानसिक प्रसन्नता को जोड़ती है और तीसरी दोनों को जीवन की वास्तविक संपदा के रूप में स्थापित करती है।

इसी प्रकार :–

"कुशल व्यवहार रखें, हो अपनापन।
क्रोध पर अंकुश हो, ऐसा हो फन।
सहनशक्ति पास हो, उत्तम है धन।"

यहाँ कवि ने धन की परिभाषा को भौतिक संपत्ति से हटाकर व्यवहार, आत्मसंयम और सहनशीलता से जोड़ा है। इस प्रकार त्रिपद संरचना विचार को क्रमिक रूप से विकसित करती है।

कवि की रचनाओं में 'उत्तम है धन', 'अपने गांव', 'तीरथ समान' तथा 'यहीं आधार' जैसे आवर्ती वाक्यांश केंद्रीय भाव को स्मरणीय बनाते हैं। पुनरावृत्ति यहाँ केवल तुकबंदी का साधन नहीं है, बल्कि कथ्य की स्थापना का माध्यम भी है।

4. 'उत्तम है धन' : स्वास्थ्य और सदाचार की जीवन–दृष्टि :

'उत्तम है धन' शीर्षक अपने आप में मूल्य–परिवर्तन का संकेत देता है। सामान्य सामाजिक सोच में धन का संबंध आर्थिक संपन्नता से जोड़ा जाता है, किंतु कवि स्वस्थ शरीर, प्रसन्न मन, अच्छा व्यवहार और सहनशीलता को वास्तविक धन के रूप में प्रस्तुत करता है।

"संतुलित भोजन से, स्वस्थ रहे तन" में संतुलित भोजन की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है। इसके साथ "सुबह–सुबह योग से, प्रफुल्लित हो मन" कहकर शरीर और मन के संतुलन को जोड़ा गया है। इस प्रकार स्वास्थ्य को केवल शारीरिक स्थिति न मानकर समग्र जीवन से जोड़ा गया है।

दूसरे पद में व्यवहारिक जीवन का पक्ष उभरता है। कुशल व्यवहार, अपनापन, क्रोध पर नियंत्रण और सहनशक्ति को व्यक्ति के चरित्र की संपदा माना गया है। तीसरे पद में कटु वचन से बचने और अच्छे आचरण की बात की गई है।

इस रचना की मूल स्थापना यह है कि मनुष्य की वास्तविक समृद्धि उसके स्वस्थ शरीर, शांत मन, संयमित व्यवहार और अच्छे चरित्र में निहित है। आधुनिक उपभोक्तावादी जीवन में यह दृष्टि विशेष महत्त्व रखती है क्योंकि यह सफलता की परिभाषा को केवल भौतिक उपलब्धियों से हटाकर मानवीय गुणों से जोड़ती है।

5. 'अपना गांव' : ग्राम्य स्मृति और जड़ों की चेतना :

'अपना गांव' में ग्रामीण जीवन के प्रति आत्मीयता व्यक्त हुई है। "जैसा भी है प्यारा लगे, अपना गांव" पंक्ति में जन्मभूमि के प्रति भावात्मक संबंध स्पष्ट है। बरगद की छांव, गांव की हवा, बचपन और पैरों की थकान जैसे बिंब ग्रामीण स्मृति को जीवंत करते हैं।

कवि आधुनिकता के कारण गांव से दूर जाने की प्रवृत्ति को भी रेखांकित करता है :

"आधुनिकता के चक्कर में, छोड़े गांव।"

यहाँ आधुनिकता का पूर्ण विरोध नहीं है, बल्कि अपनी जड़ों को विस्मृत करने के प्रति सावधान किया गया है। कवि उस स्थिति को रेखांकित करता है जिसमें व्यक्ति रोजगार और आधुनिक जीवन के कारण गांव छोड़ देता है और लंबे समय बाद अपनी जन्मभूमि की ओर लौटता है।

रचना में शुद्ध जल और वायु का उल्लेख पर्यावरणीय दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। गांव केवल भौगोलिक स्थान नहीं बल्कि स्मृति, संस्कृति, परिवार और पहचान का केंद्र बनकर सामने आता है।

"बच्चों को भी साथ लाएं, अपने गांव" के माध्यम से अगली पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ने की चिंता व्यक्त होती है। इस प्रकार कविता ग्राम्य संस्कृति के संरक्षण को पारिवारिक और सांस्कृतिक निरंतरता से जोड़ती है।

6. 'पितृपक्ष पर्व है' : परंपरा और पारिवारिक स्मृति :

'पितृपक्ष पर्व है' भारतीय सांस्कृतिक जीवन में पूर्वजों के स्मरण की परंपरा को केंद्र में रखती है। कविता में पितरों के प्रति कृतज्ञता, स्मरण और पारिवारिक निरंतरता का भाव दिखाई देता है।

"पितरों की कृपा से, हैं आबाद।
पितृपक्ष में करें, उनको याद।"

इन पंक्तियों में पूर्वजों को परिवार की वर्तमान स्थिति से जोड़ा गया है। पितृपक्ष केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि स्मृति और कृतज्ञता का अवसर बनता है।

जल, तिल, चावल और जौ के तर्पण का उल्लेख भारतीय सांस्कृतिक व्यवहार से जुड़ता है। कवि का उद्देश्य परंपरा को लोकजीवन की सहज भाषा में प्रस्तुत करना है।

इस रचना में परिवार की पहचान और पूर्वजों के योगदान के प्रति सम्मान दिखाई देता है। "इन्हीं से हमारी, है पहचान" पंक्ति पीढ़ियों के बीच संबंध को रेखांकित करती है। इस प्रकार पितृ–स्मरण को सांस्कृतिक स्मृति और पारिवारिक उत्तराधिकार के रूप में देखा जा सकता है।

7. 'तीरथ समान' : परहित और सेवा की अवधारणा

'तीरथ समान' में कवि ने तीर्थ की पारंपरिक धारणा को नैतिक कर्म से जोड़ा है। कविता की केंद्रीय स्थापना यह है कि मनुष्य के अच्छे कर्म स्वयं तीर्थ के समान हो सकते हैं।

"परहित करना सदा, तीरथ समान।"

यह पंक्ति पूरी रचना के मूल्य–दर्शन को स्पष्ट करती है। माता–पिता की सेवा, जन्मस्थान का स्मरण, सहयोग करने वालों के प्रति कृतज्ञता और निस्वार्थ सेवा को जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि माना गया है।

"सेवा मां बाप की, तीरथ समान" में परिवार के प्रति दायित्व को आध्यात्मिक महत्त्व दिया गया है। इसी प्रकार जन्मस्थान को न भूलने की प्रेरणा 'अपना गांव' की भावभूमि से भी जुड़ती है।

रचना का अंतिम पद विशेष रूप से उल्लेखनीय है :–

"गिनाओ कभी नहीं, जो दिया दान।
भुलाएं कभी नहीं जो रखे मान।

निस्वार्थ सेवा हीं, तीरथ समान।''

यहाँ सेवा को प्रदर्शन से अलग किया गया है। दान का प्रचार न करना और सम्मान देने वाले व्यक्ति को न भूलना सामाजिक संबंधों की नैतिकता को रेखांकित करता है।

8. 'महाशक्ति है बेटी' : नारी सम्मान और सामाजिक समानता :

'महाशक्ति है बेटी' में बेटी को परिवार की सक्रिय, समर्थ और रचनात्मक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। "महाशक्ति छिपी है, बेटी भीतर" शीर्षकात्मक पंक्ति स्त्री की अंतर्निहित क्षमता की ओर संकेत करती है।

"नभ में उड़ने लगी, बेटी के पर" आधुनिक स्त्री की आकांक्षाओं और उपलब्धियों का प्रतीकात्मक चित्र प्रस्तुत करती है। बेटी को केवल पारिवारिक भूमिका तक सीमित न रखकर उसे हर क्षेत्र में आगे बढ़ने वाली शक्ति के रूप में देखा गया है।

कविता का सबसे स्पष्ट सामाजिक संदेश है :–

''बेटा-बेटी बीच, न करो अंतर।''

यह पंक्ति लैंगिक समानता की भावना को सीधे व्यक्त करती है। बेटी के घर को पराया मानने की मानसिकता का विरोध भी रचना में मिलता है। संकट के समय बेटी के सहारा बनने का उल्लेख पारंपरिक धारणाओं के पुनर्विचार की ओर संकेत करता है।

कवि बेटी को परिवार की समृद्धि, सेवा, संवेदना और गौरव से जोड़ता है। इस प्रकार कविता नारी को सहानुभूति की पात्र मात्र नहीं बल्कि सक्रिय सामाजिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती है।

9. 'वृद्धजन का करें सम्मान' : पीढ़ियों के बीच संवाद :

वृद्धजन विषयक कविता भारतीय परिवार व्यवस्था में वरिष्ठ पीढ़ी की भूमिका को रेखांकित करती है। "वृद्ध जन है घर की, हमारी शान" के माध्यम से वृद्धों को परिवार की प्रतिष्ठा और पहचान का आधार माना गया है।

कवि वृद्धजनों को अकेलेपन से बचाने तथा उनके निकट रहने की प्रेरणा देता है। "रखिए इन्हें सदा, आस ही पास" में पारिवारिक निकटता की आवश्यकता स्पष्ट होती है।

इस कविता की विशेषता यह है कि वृद्ध सम्मान को केवल नैतिक उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान और अनुभव के संरक्षण से भी जोड़ा गया है :–

''वृद्धजनों के यहां, बहुत से ज्ञान।''

यह विचार पीढ़ियों के बीच ज्ञान के हस्तांतरण की आवश्यकता को सामने लाता है। वृद्धजन परिवार की जीवित स्मृति हैं, उनके अनुभव से नई पीढ़ी जीवन के अनेक पक्ष सीख सकती है।

कविता में बच्चों को भी वृद्धों के सम्मान का संदेश देने की बात कही गई है। इस प्रकार यह रचना पारिवारिक संस्कारों की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतरता की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

10. 'स्वस्थ जीवन शैली, यहीं आधार' : समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा :

इस रचना में स्वास्थ्य को जीवन की आधारभूत आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि केवल भोजन या व्यायाम की चर्चा नहीं करता बल्कि वातावरण, व्यवहार, विचार और आदतों को भी स्वस्थ जीवन का हिस्सा मानता है।

"आसपास बाग हो, खुला दरबार।

ताजी बयार मिले, रक्त संचार।"

इन पंक्तियों में पर्यावरण और स्वास्थ्य के बीच संबंध दिखाई देता है। आगे संतुलित भोजन, शुद्ध आहार और सात्विक विचार की बात आती है।

"मन में आए नहीं, अनुचित विचार।

गलत आदतें कभी, ना करे शिकार।"

यहाँ स्वास्थ्य को नैतिक और मानसिक आयाम भी प्राप्त होता है। कवि के लिए स्वस्थ जीवन का अर्थ केवल रोग से मुक्त शरीर नहीं, बल्कि स्वस्थ वातावरण, सकारात्मक सोच, संयमित आचरण और अच्छी आदतों से निर्मित जीवन है।

इस प्रकार 'उत्तम है धन' और 'स्वस्थ जीवन शैली, यहीं आधार' परस्पर पूरक रचनाएँ बन जाती हैं। पहली में स्वास्थ्य को धन कहा गया है और दूसरी में स्वस्थ जीवन को जीवन का आधार।

11. भाषा और शैली :

इन रचनाओं की भाषा सहज, सरल और जनसामान्य के निकट है। संस्कृतनिष्ठ जटिल शब्दावली के स्थान पर प्रचलित हिंदी शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। 'तन', 'मन', 'गांव', 'छांव', 'दान', 'मान', 'वचन', 'व्यवहार', 'बेटी', 'घर', 'सेवा' आदि शब्द पाठक के दैनिक जीवन से जुड़े हैं।

रचनाओं में तुकांत शब्दों का प्रयोग लय पैदा करता है। 'तन–मन–धन', 'गांव–छांव–पांव', 'आश–आस–पास', 'वचन–घुटन–आचरण' जैसी ध्वन्यात्मक समानताएँ पाठ को स्मरणीय बनाती हैं।

पुनरावृत्ति भी इन रचनाओं की शैलीगत विशेषता है। किसी केंद्रीय पंक्ति को प्रत्येक पद के अंत में दोहराने से कविता का मूल संदेश दृढ़ होता है। इससे पाठ और श्रवण दोनों स्तरों पर प्रभाव उत्पन्न होता है।

इन रचनाओं का कथ्य उपदेशात्मक अवश्य है, किंतु भाषा अत्यधिक जटिल या दुरूह नहीं है। यही संप्रेषणीयता इनका प्रमुख गुण है।

12. लोकचेतना और लोकमंगल :

सातों रचनाओं को समग्रता में देखने पर स्पष्ट होता है कि इनका केंद्रीय लक्ष्य लोकमंगल है। स्वस्थ शरीर, संयमित व्यवहार, गांव से संबंध, पूर्वजों का सम्मान, माता–पिता की सेवा, बेटी का सम्मान, वृद्धजनों की देखभाल और पर्यावरण–संरक्षणकृये सभी विषय व्यक्ति से समाज की ओर बढ़ते हैं।

कवि का दृष्टिकोण व्यक्ति–केंद्रित होकर भी सामाजिक है। वह व्यक्ति को बदलने के माध्यम से परिवार और समाज को बेहतर बनाने की बात करता है। 'अपना गांव' में सामुदायिक स्मृति है, 'वृद्धजन' में पारिवारिक उत्तरदायित्व है, 'बेटी' में लैंगिक समानता है और 'स्वस्थ जीवन शैली' में पर्यावरणीय चेतना है।

इस दृष्टि से 'त्रिपद काव्य स्वर' को लोकमंगलपरक काव्य–परंपरा की समकालीन अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

13. समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता :

वर्तमान समय में तेज गति से बदलते सामाजिक जीवन के बीच परिवार, गांव, पारंपरिक संस्कार और पीढ़ियों के बीच संवाद की भूमिका पर लगातार विचार हो रहा है। ऐसी स्थिति में 'अपना गांव', 'पितृपक्ष पर्व है'

और 'वृद्धजन का करें सम्मान' जैसी रचनाएँ स्मृति और संबंधों के महत्त्व को रेखांकित करती हैं।

इसी प्रकार 'महाशक्ति है बेटी' लैंगिक समानता के सामाजिक विमर्श से जुड़ती है। 'उत्तम है धन' तथा 'स्वस्थ जीवन शैली, यहीं आधार' व्यक्ति को शरीर, मन, व्यवहार और पर्यावरण के संतुलन की ओर ले जाती हैं।

इन रचनाओं की प्रासंगिकता इस बात में है कि वे बड़े विमर्शों को सामान्य जीवन की छोटी–छोटी परिस्थितियों से जोड़ती हैं। परिणामतः पाठक को कोई दूरस्थ सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि अपने जीवन से संबंधित संदेश प्राप्त होता है।

14. निष्कर्ष :

डॉ. भरत मिश्र प्राची की चयनित 'त्रिपद काव्य स्वर' रचनाएँ विषय–विविधता के बावजूद एक साझा जीवन–दृष्टि से जुड़ी हुई हैं। इनका मूल केंद्र मनुष्य, परिवार, समाज, प्रकृति और संस्कृति के बीच संतुलन स्थापित करना है।

'उत्तम है धन' स्वास्थ्य, संयम और सदाचार को जीवन की वास्तविक संपदा मानती है। 'अपना गांव' जन्मभूमि और ग्राम्य संस्कृति के प्रति आत्मीयता व्यक्त करती है। 'पितृपक्ष पर्व है' पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता और सांस्कृतिक स्मृति को सामने लाती है। 'तीरथ समान' सेवा और परहित को आध्यात्मिक मूल्य प्रदान करती है। 'महाशक्ति है बेटी' बेटी के सम्मान और लैंगिक समानता का संदेश देती है। 'वृद्धजन का करें सम्मान' अनुभव और पीढ़ियों के संवाद की आवश्यकता पर बल देती है। 'स्वस्थ जीवन शैली, यहीं आधार' स्वास्थ्य को शरीर, मन, पर्यावरण और आचरण की समग्र अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करती है।

शिल्प की दृष्टि से त्रिपद संरचना इन रचनाओं को संक्षिप्त, लयात्मक और स्मरणीय बनाती है। सरल भाषा, तुकांतता, पुनरावृत्ति और निष्कर्षात्मक तीसरी पंक्ति इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन रचनाओं में जटिल प्रतीक–व्यवस्था की अपेक्षा स्पष्ट कथ्य और सामाजिक संप्रेषण को प्राथमिकता मिली है।

अतः कहा जा सकता है कि 'त्रिपद काव्य स्वर' समकालीन हिंदी की उस काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें कविता केवल सौंदर्याभिव्यक्ति नहीं रहती, बल्कि जीवन–व्यवहार, सामाजिक संस्कार और लोकमंगल की चेतना का माध्यम भी बनती है। इन रचनाओं की शक्ति उनकी सरलता, संक्षिप्तता, विषयगत विविधता और मानवीय सरोकारों में निहित है। त्रिपद की छोटी संरचना में बड़े जीवन–मूल्यों को समेटने का यह प्रयास हिंदी की जनाभिमुख काव्य–परंपरा को समकालीन संदर्भ में आगे बढ़ाता दिखाई देता है।

संदर्भ-सूची :-

1. प्राची, डॉ. भरत मिश्र – ''त्रिपद काव्य स्वर'' की प्रस्तुत चयनित रचनाएँ : 'उत्तम है धन', 'अपना गांव', 'पितृपक्ष पर्व है', 'तीरथ समान', 'महाशक्ति है बेटी', 'वृद्धजन का करें सम्मान' तथा 'स्वस्थ जीवन शैली, यहीं आधार'।
2. प्रस्तुत प्राथमिक पाठों का पाठ–विश्लेषण एवं विषय–वस्तु अध्ययन।
3. हिंदी काव्य–परंपरा में लोकमंगल, नैतिक चेतना एवं सामाजिक सरोकार से संबंधित सामान्य साहित्यिक संदर्भ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 24-29

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

प्रगतिवादी कवि नागार्जुन की कविता में मानवीय संवेदना

दिनेश कुमार गोगलू

(एम.ए हिन्दी) जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.) NET-UGC (हिन्दी)

सारांश :

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रगतिवादी कविता ने साहित्य को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस काव्यधारा ने शोषित, पीड़ित, वंचित, किसान, मजदूर और सामान्य जन को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया। नागार्जुन प्रगतिवादी एवं जनवादी काव्यधारा के ऐसे विशिष्ट कवि हैं, जिनकी रचनात्मक चेतना का मूल आधार आम मनुष्य का जीवन और उसका संघर्ष है। उनकी कविता में भूख, गरीबी, श्रम, शोषण, सामाजिक विषमता, राजनीतिक पाखंड, किसान जीवन, मजदूर जीवन, स्त्री की पीड़ा तथा प्रकृति के प्रति आत्मीय दृष्टि का व्यापक संसार दिखाई देता है। नागार्जुन की मानवीय संवेदना केवल करुणा तक सीमित नहीं है। उनकी कविता में करुणा के साथ संघर्ष, प्रतिरोध, आक्रोश और परिवर्तन की आकांक्षा भी जुड़ी हुई है। वे पीड़ित मनुष्य को दया का पात्र बनाकर प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसके जीवन–संघर्ष को सामाजिक व्यवस्था की वास्तविकताओं से जोड़ते हैं। यही कारण है कि उनका काव्य जनजीवन की सच्ची अनुभूतियों का दस्तावेज बन जाता है।

प्रस्तुत आलेख में नागार्जुन की कविताओं में व्यक्त मानवीय संवेदना के विभिन्न आयामों 'जनपक्षधरता, किसान–मजदूर जीवन, भूख और गरीबी, शोषण–विरोध, राजनीतिक चेतना, स्त्री–संवेदना, प्रकृति–प्रेम, व्यंग्य, लोकभाषा तथा सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा' का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : नागार्जुन, प्रगतिवादी कविता, मानवीय संवेदना, जनचेतना, किसान, मजदूर, शोषण, जनपक्षधरता, सामाजिक विषमता।

नागार्जुन और प्रगतिवादी काव्यधारा :

नागार्जुन का वास्तविक ना वैद्यनाथ मिश्र था। हिंदी में उन्होंने 'नागार्जुन' और मैथिली में 'यात्री' नाम से लेखन किया। उनके काव्य–संग्रहों में युगधारा का विशेष स्थान है। उपलब्ध साहित्यिक स्त्रोतों में युगधारा का प्रथम प्रकाशन 1953 दर्ज है। नागार्जुन के प्रमुख काव्य–संग्रहों की सूची में युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथराई ऑखें, तालाब की मछलियॉ, तुमने कहा था, हजार–हजार बॉहों वाली, पुरानी जूतियों का कोरम, रत्नगर्भ आदि का उल्लेख मिलता है। नागार्जुन की प्रगतिशीलता किसी कृत्रिम वैचारिक आग्रह की परिणति नहीं है। उनके यहाँ सामाजिक यथार्थ प्रत्यक्ष अनुभवों और जनजीवन के निकट संपर्क से निर्मित होता है। उनकी कविता में किसान

केवल 'किसान' नामक अमूर्त वर्ग नहीं है; वह खेत में श्रम करने वाला, मौसम की मार झेलने वाला और आर्थिक संकट से जूझने वाला वास्तविक मनुष्य है। इसी प्रकार मजदूर केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि संवेदनशील जीवन और अधिकारों वाला मनुष्य है।

नागार्जुन के काव्य की विशेषता यह भी है कि वे समाज को ऊपर से देखने के बजाय नीचे से देखते हैं। उनकी दृष्टि सत्ता के केंद्र में अधिक समाज के उन हिस्सों की ओर रहती है जहाँ अभाव और संघर्ष अधिक तीव्र हैं। इसलिए उनके काव्य में मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना एक–दूसरे से अलग नहीं की जा सकती।

मानवीय संवेदना की अवधारणा :

'संवेदना' का अर्थ केवल किसी दूसरे के दुख को देखकर भावुक हो जाना नहीं है। साहित्यिक संदर्भ में संवेदना व्यक्ति, समाज और जीवन की अनुभूतियों को गहराई से समझने तथा उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने की क्षमता है। मानवीय संवेदना में प्रेम, करुणा, सहानुभूति, पीड़ा, संघर्ष, आशा, आक्रोश और न्याय की आकांक्षा सभी सम्मिलित हो सकते हैं। नागार्जुन के काव्य में मानवीय संवेदना का स्वरूप बहुआयामी है। एक ओर वे अभावग्रस्त व्यक्ति की पीड़ा को पहचानते हैं, दूसरी ओर उस पीड़ा को पैदा करने वाली सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न उठाते हैं। इसीलिए उनकी संवेदना निष्क्रिय करुणा नहीं बल्कि सक्रिय सामाजिक चेतना का रूप धारण करती है।

किसान जीवन की संवेदना :

नागार्जुन की कविता में किसान जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय समाज में किसान की भूमिका मूलभूत रही है, किंतु आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में किसान स्वयं अनेक संकटों से घिरा रहा है। नागार्जुन ने किसान के इसी विरोधाभासी जीवन को अभिव्यक्ति दी है। उनके काव्य में खेत, फसल, वर्षा, सूखा, श्रम, ऋतु और ग्रामीण जीवन केवल प्रकृति के सुंदर दृश्य नहीं हैं। इनके पीछे किसान की आर्थिक स्थिति भी दिखाई देती है। खेत में पैदा होने वाली फसल किसान के जीवन की आशा है, किंतु वही फसल अनेक बार उसके लिए आर्थिक सुरक्षा का आश्वासन नहीं बन पाती।

नागार्जुन किसान को दया के पात्र के रूप में नहीं देखते। उनकी दृष्टि में किसान श्रम और जीवन का आधार है। उसकी कठिनाइयों के प्रति कवि की संवेदना सामाजिक न्याय की चेतना से जुड़ती है। इस प्रकार किसान–जीवन का चित्रण उनकी कविता में यथार्थवादी और मानवीय दोनों रूपों में उपस्थित होता है। युगधारा में कृषक और श्रमिक जीवन से संबंधित कविताओं को लेकर किए गए आलोचनात्मक अध्ययन भी यह रेखांकित करते हैं कि संग्रह में सामान्य जन के जीवन और श्रम को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'युगधारा' के यात्री प्रकाशन, दिल्ली के 2008 के संस्करण के संदर्भ में पृष्ठ 13–14, 93 और 104 का उल्लेख शोध–साहित्य में मिलता है।

मजदूर और श्रमिक वर्ग :

नागार्जुन की मानवीय संवेदना का दूसरा प्रमुख केंद्र मजदूर वर्ग है। श्रम करने वाले मनुष्य के प्रति उनकी दृष्टि में गहरी आत्मीयता है। वे श्रमिक के जीवन को केवल आर्थिक समस्या के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसके मानवीय अस्तित्व, सम्मान और अधिकारों से जोड़कर देखते हैं। मजदूर का जीवन श्रम पर आधारित है, किंतु

सामाजिक व्यवस्था में उसके श्रम का उचित मूल्य न मिलना एक बड़ी विडंबना है। नागार्जुन की कविता इस विडंबना को पहचानती है। उनके यहाँ श्रम की गरिमा स्थापित होती है और शोषण के विरुद्ध प्रश्न उठता है। यही कारण है कि उनकी कविता में श्रमिक वर्ग के प्रति महानुभूति के साथ संघर्षशील चेतना भी मिलती है। वे पाठक को केवल दुखी नहीं करते, बल्कि उसे सामाजिक वास्तविकता से परिचित कराते हैं।

भूख और गरीबी :

नागार्जुन के काव्य में भूख सबसे मूलभूत मानवीय प्रश्नों में से एक है। भूख किसी दार्शनिक समस्या से अधिक जीवन की प्रत्यक्ष और कठोर वास्तविकता है। जिस व्यक्ति के सामने भोजन का संकट हो, उसके लिए जीवन की अन्य समस्याएँ गौण हो जाती हैं। नागार्जुन की संवेदना भूख को व्यक्तिगत दुर्भाग्य मानकर समाप्त नहीं करती, वे उसके सामाजिक कारणों की ओर संकेत करते हैं। उनके काव्य में अभावग्रस्त व्यक्ति का जीवन व्यवस्था की विषमता से जुड़ा दिखाई देता है। गरीबी के चित्रण में भी उनकी भाषा अत्यधिक प्रभावशाली है। वे बड़े–बड़े दार्शनिक शब्दों के बजाय सामान्य जीवन के परिचित शब्दों और दृश्यों का उपयोग करते हैं। यही सहजता उनकी कविता को व्यापक पाठक–समुदाय तक पहुँचाती है।

शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध :

मानवीय संवेदना का एक महत्त्वपूर्ण रूप अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध है। नागार्जुन की कविता में शोषण के विरुद्ध आवाज इसी रूप में दिखाई देती है। वे सामंती मानसिकता, आर्थिक असमानता और राजनीतिक अवसरवाद पर व्यंग्य करते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य की गरिमा किसी भी व्यवस्था से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए जब कोई व्यवस्था मनुष्य को शोषित या अपमानित करती है, तब कवि का दायित्व केवल उसका वर्णन करना नहीं, बल्कि उसके विरुद्ध प्रश्न उठाना भी है। नागार्जुन का प्रतिरोध कई बार सीधे राजनीतिक स्वर में आता है, तो कई बार व्यंग्य के माध्यम से। इस बहुरूपता के कारण उनका काव्य एक ही समय में संवेदनात्मक और वैचारिक बन जाता है।

स्त्री जीवन के प्रति संवेदना :

नागार्जुन के काव्य में स्त्री केवल सौंदर्य की वस्तु नहीं है। वह सामाजिक जीवन की सक्रिय इकाई है और अनेक प्रकार के अभावों, सामाजिक बंधनों तथा आर्थिक कठिनाइयों से जूझती है। प्रगतिवादी कविता की व्यापक सामाजिक दृष्टि के अनुरूप नागार्जुन की कविता में स्त्री जीवन को भी मानवीय संदर्भ में देखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। स्त्री की स्थिति को समझने के लिए उसके सामाजिक परिवेश को समझना आवश्यक है। नागार्जुन का काव्य इस संदर्भ में पारंपरिक सौंदर्य–केंद्रित दृष्टि से आगे बढ़ता है। उनकी संवेदना स्त्री को जीवन के वास्तविक संघर्षों से जोड़ती है। इससे उनकी मानवीय दृष्टि का विस्तार होता है।

प्रकृति और मानवीय संवेदना :

नागार्जुन की कविता में प्रकृति का चित्रण भी उल्लेखनीय है। उन्हें केवल सामाजिक और राजनीतिक कवि मानना उनके काव्य की विविधता को सीमित कर देना होगा। ''बादल को घिरते देखा है'' जैसी कविता में प्रकृति के सुंदर रूप के साथ जीवन और लोक–संस्कृति की उपस्थिति भी दिखाई देती है। प्रकृति उनके लिए केवल सौंदर्य का दृश्य नहीं है। वह मनुष्य के जीवन से जुड़ी हुई है। वर्षा किसान के लिए आशा है, बादल

कृषि–जीवन से जुड़े हैं और ऋतुओं का परिवर्तन ग्रामीण जीवन की गति से संबंधित है। इस प्रकार नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण में भी मानवीय संवेदना सक्रिय रहती है। प्रकृति और मनुष्य उनके काव्य में परस्पर संबद्ध दिखाई देते हैं।

'प्रेत का बयान' और सामाजिक यथार्थ :

नागार्जुन की चर्चित कविताओं में '''प्रेत का बयान''' विशेष महत्त्व रखती है। इसमें सामाजिक यथार्थ, गरीबी और व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि दिखाई देती है। कविता का कथ्य सामान्य मनुष्य के जीवन की कठिन परिस्थितियों से जुड़ता है। नागार्जुन की विशेषता यह है कि वे यथार्थ को केवल आँकड़ों या वैचारिक घोषणाओं में प्रस्तुत नहीं करते। वे उसे व्यक्ति के जीवन–अनुभव में बदल देते हैं। इससे पाठक सामाजिक समस्या को भावनात्मक स्तर पर भी अनुभव करता है।

'अकाल और उसके बाद' की संवेदना :

अकाल भारतीय ग्रामीण जीवन की सबसे भयावह सामाजिक–आर्थिक स्थितियों में से एक रहा है। नागार्जुन ने अकाल को केवल प्राकृतिक आपदा के रूप में नहीं देखा। उसके प्रभावों में परिवार, भोजन, श्रम और सामाजिक जीवन की टूटन को पहचानना उनकी मानवीय दृष्टि की विशेषता है। अकाल और उसके बाद जैसी रचना में अभाव का वातावरण मनुष्य के जीवन को केंद्र में रखकर सामने आता है। अकाल के कारण पैदा हुई परिस्थितियाँ केवल खेत और फसल को प्रभावित नहीं करतीं; वे पूरे परिवार और सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार अकाल का चित्रण मानवीय संवेदना का सामाजिक दस्तावेज बन जाता है।

साधारण मनुष्य का असाधारण महत्त्व :

नागार्जुन के काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है साधारण मनुष्य को साहित्य का महत्त्वपूर्ण पात्र बनाना। उनका किसान, मजदूर, गरीब परिवार, ग्रामीण स्त्री और सामान्य नागरिक किसी बड़े नायक से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह दृष्टि साहित्यिक लोकतंत्र की स्थापना करती है। कविता का विषय केवल राजा, नायक, देवता या अभिजात व्यक्ति नहीं रह जाता, बल्कि सामान्य मनुष्य भी कविता का केंद्र बनता है। नागार्जुन की मानवीय संवेदना इसी लोकतांत्रिक दृष्टि से निर्मित होती है। वे जीवन के छोटे–छोटे अनुभवों में भी मानवीय महत्त्व खोजते हैं।

जनपक्षधरता :

नागार्जुन को जनकवि कहे जाने के पीछे उनकी जनपक्षधरता महत्त्वपूर्ण है। उनकी कविता में जनता कोई अमूर्त अवधारणा नहीं है। जनता उनके यहाँ वास्तविक मनुष्यों का समुदाय है। नागार्जुन को जनकवि कहे जाने के पीछे उनकी जनपक्षधरता महत्त्वपूर्ण है। उनकी कविता में जनता कोई अमूर्त अवधारणा नहीं है। जनता उनके यहाँ वास्तविक मनुष्यों का समुदाय है। उनकी कविता में आम आदमी के सुख–दुख, उसकी भाषा, उसकी आकांक्षाएँ और उसके संघर्ष दिखाई देते हैं। उनकी रचनाएँ लोक–संस्कृति के निकट हैं और इसी कारण उनमें जनजीवन की सहजता दिखाई देती है। जनपक्षधरता का अर्थ केवल गरीब के पक्ष में लिखना नहीं है। इसका अर्थ है समाज को उस दृष्टि से देखना जहाँ मनुष्य की गरिमा, श्रम और अधिकार केंद्रीय मूल्य बन जाते हैं। नागार्जुन के काव्य में यही दृष्टि बार–बार दिखाई देती है।

मानवीय संवेदना और सामाजिक परिवर्तन :

नागार्जुन के काव्य में मानवीय संवेदना अंततः सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा से जुड़ी है। वे ऐसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करते हैं जिसमें मनुष्य का श्रम सम्मानित हो, शोषण कम हो और सामान्य व्यक्ति को जीवन की मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त हों। उनकी कविता सीधे किसी राजनीतिक कार्यक्रम का दस्तावेज नहीं है। उसका साहित्यिक महत्त्व इस बात में है कि वह सामाजिक असमानता और मानवीय पीड़ा को संवेदनात्मक अनुभव में बदलती है। यही कारण है कि नागार्जुन की कविता प्रगतिवादी साहित्य की उस मूल चेतना को व्यक्त करती है जिसमें साहित्य और जीवन के बीच की दूरी को कम करने का प्रयास किया गया।

नागार्जुन की संवेदना की विशिष्टता :

प्रगतिवादी कविता में अनेक कवियों ने किसान, मजदूर और शोषित वर्ग को विषय बनाया, किंतु नागार्जुन की विशिष्टता उनकी सहज जनभाषा, व्यापक अनुभव–संसार और व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति में दिखाई देती है। उनकी कविता में एक साथ कई स्तर काम करते हैं 'सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक चेतना, लोक–संस्कृति, प्रकृति, व्यक्तिगत अनुभूति, करुणा और प्रतिरोध। इसलिए उनका काव्य केवल किसी एक विचारधारा की सीमित अभिव्यक्ति नहीं रह जाता। उनकी संवेदना का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष मनुष्य के प्रति गहरी प्रतिबद्धता है। वे मनुष्य को उसकी जाति, वर्ग, आर्थिक स्थिति या सामाजिक प्रतिष्ठा से पहले एक संवेदनशील जीवित अस्तित्व के रूप में देखते हैं।

निष्कर्ष :

समग्रतः कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी कवि नागार्जुन की कविता में मानवीय संवेदना बहुआयामी और व्यापक है। उनकी कविता का केंद्र वह आम मनुष्य है–वह किसान जो खेत में श्रम करता है, वह मजदूर जो अपनी मेहनत से जीवन चलाता है, वह गरीब परिवार जो अभाव से जूझता है, वह ही जो सामाजिक परिस्थितियों का सामना करती है और वह सामान्य नागरिक जो राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियों से प्रभावित होता है। नागार्जुन की संवेदना केवल करुणा नहीं है। उसमें करुणा के साथ सामाजिक चेतना, प्रतिरोध, व्यंग्य और परिवर्तन की आकांक्षा जुड़ी हुई है। वे पीड़ा को व्यक्तिगत घटना से उठाकर सामाजिक प्रश्न बनाते हैं। यही उनकी प्रगतिशील चेतना की मूल शक्ति है। उनकी कविता में किसान और मजदूर का जीवन, भूख और गरीबी, सामाजिक विषमता, राजनीतिक पाखंड तथा शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध प्रमुख रूप से उपस्थित हैं। साथ ही उनकी प्रकृति–कविताएँ यह प्रमाणित करती हैं कि वे केवल राजनीतिक कवि नहीं, बल्कि जीवन के व्यापक अनुभवों के कवि हैं। नागार्जुन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कविता को जनजीवन की वास्तविक धड़कनों से जोड़ा। उनकी भाषा लोक के निकट है, विषय सामान्य मनुष्य के निकट हैं और संवेदना जीवन के संघर्षों से जुड़ी है। इसलिए उनकी कविता हिंदी प्रगतिवादी काव्य में मानवीय सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में देखी जा सकती है। अंततः नागार्जुन की मानवीय संवेदना हमें यह समझने में सहायता करती है कि साहित्य का वास्तविक महत्व केवल सौंदर्य की अनुभूति में नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन, उसकी पीड़ा, संघर्ष, आशा और गरिमा को पहचानने में भी निहित है। उनकी कविता इसी व्यापक मानवीय दृष्टि के कारण आज भी अध्ययन और आलोचना के लिए प्रासंगिक बनी हुई है।

संदर्भ-सूची :

1. नागार्जुन – युगधारा, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1953, कुल 112 पृष्ठ। अध्ययन के लिए उपलब्ध संदर्भ में 2008 के पाठ संस्करण के पृष्ठ 13–14, 93 और 104 का भी उल्लेख मिलता है।
2. अजय तिवारी – नागार्जुन की कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005। उपलब्ध शोध–संदर्भ में पृष्ठ 173 का उल्लेख है।
3. मनेजर पाण्डेय – आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृष्ठ 185–186 का संदर्भ उपलब्ध शोध–सामग्री में दिया गया है।
4. नरेन्द्र सिंह – साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 156।
5. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – समकालीन हिन्दी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 49।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 30-35

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भर्तृहरि के नीतिशतक और आत्मीय–स्वजनों के प्रति कर्तव्य का दार्शनिक आधार : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक सैद्धांतिक विश्लेषण

तारक नाथ नायक, शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद, झारखंड।
डॉ. मीना कुमारी, शोध निर्देशक,
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
एस. एस. एल. एन. टि. महिला महाविद्यालय, धनबाद, झारखंड।

सार-संक्षेप (Abstract)

प्राचीन भारतीय दर्शन और साहित्य के महानतम विचारकों में से एक, महाकवि भर्तृहरि द्वारा रचित 'नीतिशतक' केवल व्यक्तिगत जीवन के नैतिक अनुशासन का संकलन नहीं है, बल्कि यह समाज–निर्माण और मानवीय संबंधों की एक गहरी मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक रूपरेखा है। यह शोध पत्र नीतिशतक के आलोक में आत्मीय–स्वजनों के प्रति कर्तव्यों के दार्शनिक आधार और समकालीन विश्व में उसकी प्रासंगिकता का अन्वेषण करता है। वैश्वीकरण के युग में व्यक्तिवाद, उपयोगितावाद और चरम भौतिकवाद के प्रभाव से जब पारिवारिक और सामाजिक संबंध निरंतर शिथिल होकर केवल औपचारिकता में परिवर्तित हो रहे हैं, तब भर्तृहरि का नीति–दर्शन एक वैकल्पिक नैतिक ढांचे की दृष्टि प्रदान करता है। परोपकार, दया, क्षमा, संयम, न्यायपरायणता और कृतज्ञता– इन केंद्रीय प्रत्ययों का विश्लेषण करते हुए यह दर्शाया गया है कि आत्मीय–स्वजनों के प्रति कर्तव्य–पालन कोई मात्र सामाजिक प्रथा नहीं है, बल्कि यह मानव–सत्ता के आत्म–उत्कर्ष और वृहत्तर समाज–कल्याण की अनिवार्य पूर्वशर्त है। आधुनिक समाज के अलगाव बोध और मूल्यों के संकट से मुक्ति के उपाय के रूप में नीतिशतक की शिक्षाएं किस प्रकार व्यावहारिक भूमिका निभा सकती हैं, यही इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है।

मुख्य शब्द (Keywords) : भर्तृहरि, नीतिशतक, आत्मीयता का दर्शन, परोपकार, नैतिक अवमूल्यन, आधुनिक समाजशास्त्र, भारतीय दर्शन, मूल्यबोध, मनोवैज्ञानिक अंर्तद्वंद्व।

प्रस्तावना : मानवीय संबंध और नीतिशतक की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि :

भारतीय शास्त्रीय साहित्य और दर्शन के इतिहास में भर्तृहरि का 'शतकत्रय' (श्रृंगारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक) मानव जीवन के तीन भिन्न किंतु अविभाज्य चरणों और प्रवृत्तियों का एक असाधारण मनोवैज्ञानिक साक्ष्य है। इनमें से 'नीतिशतक' विशेष रूप से समाज में रहने वाले मनुष्यों की पारस्परिक जवाबदेही और नैतिक

मानदंडों का निर्धारण करता है। विश्वविद्यालय स्तर के समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र और दर्शनशास्त्र के अध्ययन में 'आत्मीयता' केवल रक्त या वैवाहिक संबंधों तक सीमित कोई जैविक अवधारणा नहीं है। यह एक प्रकार का नैतिक दायित्व है, जो मनुष्य के सामाजीकरण का प्रथम चरण है। भारतीय दर्शन में 'आत्मीय' शब्द की उत्पत्ति 'आत्मा' से हुई है, अर्थात् जिनके साथ सत्ता या अस्तित्व का अटूट जुड़ाव है, वे ही आत्मीय हैं। वर्तमान उत्तर–आधुनिक समाज में आधुनिकता के नाम पर जब हम एक यांत्रिक और आत्मकेंद्रित जीवनशैली के अभ्यस्त होते जा रहे हैं, तब आत्मीय–स्वजनों के प्रति कर्तव्य की अवधारणा घोर उपेक्षा का शिकार हो रही है। इस परिप्रेक्ष्य में भर्तृहरि का नीतिशतक हमें पुनः स्मरण कराता है कि अपनी जड़ों के प्रति जवाबदेही के बिना किसी भी मनुष्य के लिए नैतिक पूर्णता प्राप्त करना संभव नहीं है।

परोपकार और आत्मीयता : निःस्वार्थ कर्म की प्राकृतिक और नैतिक उपयोगिता :

भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में प्रकृति के एक असाधारण रूपक के माध्यम से परोपकार और मानव जीवन के उद्देश्यवाद को परिभाषित किया है। उनका सर्वाधिक उद्धृत श्लोक है :

"परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः
परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।"

इस श्लोक में प्रकृति के उद्देश्यवाद और मानव–अस्तित्व के मध्य एक तुलनात्मक सैद्धांतिक ढांचा निर्मित किया गया है। वृक्ष, नदी या गौ– प्रकृति के ये उपादान आत्मसुख के लिए जीवित नहीं रहते, उनका अस्तित्व ही परार्थवाद का प्रमाण है। चूंकि मानव शरीर प्रकृति का ही एक अभिन्न अंग है, इसलिए इसका अंतर्निहित उद्देश्य भी परोपकार होना चाहिए।

आधुनिक समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान युग में हम एक प्रकार की 'पाखंडपूर्ण समाजसेवा' के शिकार हैं। सोशल मीडिया और प्रदर्शनवाद के युग में आधुनिक मनुष्य दूरस्थ किसी अपरिचित समूह के लिए राहत भेजने या स्वयं को समाजसेवी के रूप में प्रचारित करने के लिए तो व्यग्र रहता है, परंतु अपने परिवार, वृद्ध माता–पिता या संकटग्रस्त आत्मीय–स्वजनों के प्रति घोर उदासीनता प्रदर्शित करता है। भर्तृहरि के सिद्धांत में, अपनी जड़ों या आत्मीय–स्वजनों के प्रति न्यूनतम कर्तव्य का पालन किए बिना वृहत्तर समाजसेवा का दावा करना पूर्णतः एक नैतिक विरोधाभास है। आत्मीय–स्वजन परोपकार की प्रथम और निकटतम प्रयोगशाला हैं। परिवार के प्रति निःस्वार्थ सेवा ही मनुष्य को वृहत्तर मानवता की सेवा के लिए मानसिक रूप से तैयार करती है।

दया और करूणा : आत्मीयता का मनोवैज्ञानिक और आत्मिक प्राण :

भर्तृहरि के नीतिदर्शन में दया या करुणा केवल एक क्षणिक आवेग नहीं है, यह आचरण का मूल आधार है : '**दया धर्मस्य मूलम्।**' यहाँ 'धर्म' से तात्पर्य किसी संस्थागत रीति–रिवाज से नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की धारण करने की क्षमता या 'स्वभाव' है। दया और करुणा के बिना मानवधर्म का अस्तित्व नहीं टिक सकता। आत्मीय संबंधों में दया वह योजक शक्ति है, जो दो भिन्न सत्ताओं को एकीकृत करती है।

इक्कीसवीं सदी के आधुनिक यांत्रिक समाज में आत्मीय संबंध निरंतर बाह्य औपचारिकताओं में सिमटते

जा रहे हैं। तकनीकी संचार के युग में हम केवल संदेश या वर्चुअल शुभकामनाएँ भेजकर ही आत्मीयता का कर्तव्य पूर्ण मान लेते हैं। परंतु मानसिक अवसाद, एकाकीपन या आर्थिक संकट के समय आत्मीय–स्वजनों के साथ खड़े होने का हमारा मानसिक दायरा निरंतर संकुचित होता जा रहा है। आधुनिक समाजशास्त्रियों ने इसे 'अलगाव' की संज्ञा दी है। भर्तृहरि इन यांत्रिक और शुष्क संबंधों को कठोरता से अस्वीकार करते हैं। जब कोई आत्मीय कष्ट या दुःख में हो, तो उसके प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं, बल्कि समानुभूति प्रदर्शित करना ही वास्तविक दया है। मनोवैज्ञानिक संबल या दया के अभाव में उस आत्मीयता की कोई नैतिक वैधता नहीं रह जाती।

क्षमा : संबंध संरक्षण और द्वंद्व निवारण का सैद्धांतिक आधार :

पारिवारिक और सामाजिक संरचना का स्थायित्व पारस्परिक सहनशीलता पर निर्भर करता है। भर्तृहरि ने कहा है : '**क्षान्तिर्भूषणम्।**' अर्थात्, क्षमा ही मनुष्य का वास्तविक आभूषण है। जहाँ एकाधिक मनुष्यों का सहअस्तित्व होता है, वहाँ वैचारिक द्वंद्व, स्वार्थों का टकराव और अहंकार का संघर्ष अपरिहार्य है। भर्तृहरि ने अत्यंत प्रज्ञा के साथ यह अनुभव किया था कि आत्मीय संबंधों को दीर्घकाल तक स्थायी रखने का एकमात्र अस्त्र 'क्षमा' है। क्षमा कोई दुर्बलता नहीं है, यह एक प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति और नैतिक आभूषण है।

आधुनिक समाज–व्यवस्था में संयुक्त परिवारों के विघटन और एकल परिवारों के निर्माण के पीछे एक प्रमुख कारण इसी सहनशीलता और क्षमा का अभाव है। पैतृक संपत्ति के मामूली विवाद, अहंकार के टकराव या छोटे मतभेदों के कारण दीर्घकालिक संबंध सदा के लिए छिन्न–भिन्न हो रहे हैं। आधुनिक न्यायालय इस प्रकार के पारिवारिक मुकदमों के भार से दबे हुए हैं। भर्तृहरि का दर्शन हमें सिखाता है कि क्षमा और संयम के बिना किसी भी आत्मीय संबंध को बचाए रखना संभव नहीं है। प्रतिशोध की भावना या अहंकार न केवल संबंधों को नष्ट करता है, बल्कि मनुष्य की आंतरिक मनोवैज्ञानिक शांति को भी भंग करता है। क्षमा के माध्यम से ही खंडित संबंधों का पुनर्निर्माण संभव है।

क्रोध और अहंकार : आत्मीयता के मनोवैज्ञानिक शत्रु :

भारतीय मनोविज्ञान में 'षड्रिपु' के अंतर्गत क्रोध को अत्यंत विनाशकारी प्रवृत्ति माना गया है। भर्तृहरि ने नीतिशतक में इस अवधारणा को सामाजिक और पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में स्थापित किया है : '**क्रोधो हि शत्रुः।**' अर्थात् आत्मीय–स्वजनों के प्रति क्रोध पालना मूलतः अपना ही आत्मिक विनाश आमंत्रित करने के समान है। क्रोध मनुष्य की तर्कशीलता और नैतिक दिशा–बोध दोनों को अस्थायी रूप से पंगु कर देता है।

आधुनिक पारिवारिक विघटन, विवाह–विच्छेद और घरेलू हिंसा के समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इनके मूल में अनियंत्रित क्रोध और उग्र आत्ममोह विद्यमान है। आधुनिक मनुष्य अपने विचारों या व्यक्तिगत स्वार्थों का तनिक भी विरोध सहन नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, अत्यंत तुच्छ कारणों से आत्मीय–स्वजनों के साथ स्थायी शत्रुता उत्पन्न हो जाती है। नीतिशतक की शिक्षाओं के अनुसार, आत्म–नियंत्रण और क्रोध–प्रबंधन के बिना किसी भी स्वस्थ पारिवारिक या सामाजिक संरचना का निर्माण नहीं हो सकता। क्रोधमुक्त मन ही स्वस्थ आत्मीयता की पूर्वशर्त है।

आत्मीयता में न्याय और निष्पक्षता का द्वंद्व : नैतिकता की सूक्ष्म रेखा :

आत्मीय–स्वजनों के प्रति कर्तव्य का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनके सभी अन्यायपूर्ण या अनैतिक कार्यों का अंधाधुंध समर्थन किया जाए। यहीं पर भर्तृहरि का दर्शन आधुनिक न्याय के सिद्धांत के साथ सामंजस्य

स्थापित करता है : '**सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियं।**' यद्यपि यहाँ मुख्य रूप से प्रिय सत्य बोलने की बात कही गई है, किंतु वृहत्तर नीतिदर्शन में इसका अर्थ न्याय के प्रश्न पर अडिग रहना है। भर्तृहरि के मतानुसार, आत्मीयता के नाम पर पक्षपात या भाई–भतीजावाद एक गंभीर अनैतिक अपराध है। एक चरित्रवान मनुष्य का कर्तव्य है कि वह आत्मीयों के प्रति प्रेम और दया बनाए रखने के साथ–साथ न्याय और सत्य के प्रति भी निष्पक्ष रहे।

आज के राजनीतिक, सामाजिक और कॉर्पोरेट जगत में 'भाई–भतीजावाद' एक संस्थागत व्याधि बन चुका है। अपने रिश्तेदारों को अनैतिक लाभ पहुँचाना या उनके अपराधों पर पर्दा डालना कई लोग 'परिवार के प्रति कर्तव्य' मान लेने की भूल करते हैं। महाभारत में धृतराष्ट्र का अंधा पुत्रमोह किस प्रकार संपूर्ण समाज को विनाश के गर्त में धकेल देता है, यह इसी दर्शन का ऐतिहासिक प्रमाण है। नीतिशतक इस भ्रामक धारणा पर तीव्र प्रहार करता है। वास्तविक आत्मीय वही है जो अपने स्वजन के गलत मार्ग पर जाने पर उसे अनुशासित करे और सन्मार्ग पर वापस लाए। न्याय के प्रश्न पर निष्पक्षता बनाए रखना ही आधुनिक सभ्य समाज का आधार है।

कृतज्ञता और आत्मीयता की नैतिकता :

हिंदू दर्शन में 'ऋण' (जैसे– पितृऋण, देवऋण) एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। जन्म से लेकर एक पूर्ण मनुष्य के रूप में विकसित होने तक परिवार और आत्मीय–स्वजन हमारे लिए जो असीम त्याग करते हैं, उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मानव जीवन का एक प्रमुख कर्तव्य है। भर्तृहरि ने कहा है ' '**कृतघ्नः सर्वपापेषु पापीयान्**'। अर्थात् कृतघ्न व्यक्ति सभी पापियों में सर्वश्रेष्ठ पापी है। जो लोग उपकारी के उपकार को भूल जाते हैं, वे नैतिक रूप से पशुओं के समान हैं। कृतज्ञता केवल एक सामाजिक शिष्टाचार नहीं है, यह अस्तित्व के प्रति जवाबदेही है।

वर्तमान समाज में वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या और वरिष्ठ नागरिकों का सीमांतीकरण इस कृतघ्नता का ज्वलंत प्रमाण है। संतान अपने माता–पिता के जीवन भर के त्याग को विस्मृत कर उन्हें उनके जीवन के अंतिम दिनों में असहाय अवस्था में छोड़ जाती है। आत्मीय–स्वजनों के योगदान को अस्वीकार करते हुए आधुनिक मनुष्य स्वयं को आत्मनिर्भर या 'स्व–निर्मित' घोषित करने में गर्व का अनुभव करता है। परंतु समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कोई भी मनुष्य समाज या परिवार की सहायता के बिना विकसित नहीं हो सकता। भर्तृहरि के दर्शन के अनुसार, यह कृतघ्नता चरम नैतिक पतन है, जो संपूर्ण समाज–व्यवस्था के पारस्परिक विश्वास की नींव को समूल नष्ट कर देता है।

आत्मीयता की उपेक्षा के सामाजिक और नैतिक परिणाम :

नीतिशतक में अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि आत्मीय–विमुख व्यक्ति समाज में पूर्णतः एकाकी और नैतिक रूप से शून्य होता है। मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है। उसका आत्म–विकास संबंधों की अंतःक्रिया के माध्यम से होता है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थों के कारण अपने करीबियों का त्याग करता है, वह भौतिक दृष्टि से तो प्रचुर धन–संपत्ति या प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है, परंतु वह कभी चरित्रवान या आत्मिक रूप से संतुष्ट नहीं हो सकता।

आधुनिक विश्व की सबसे बड़ी महामारियों में से एक है 'एकाकीपन'। प्रौद्योगिकी के चरम विकास के युग में ग्लोबल विलेज में बैठकर भी मनुष्य आज सर्वाधिक अकेला है। इसका कारण यह है कि उसने अपने

स्वाभाविक संबंधों या आत्मीयता को उपयोगिता के तराजू पर तौलना आरंभ कर दिया है। 'इस रिश्तेदार से मुझे क्या भौतिक लाभ होगा?' इस पूंजीवादी और उपभोक्तावादी मानसिकता ने आत्मीयता की पवित्रता को नष्ट कर दिया है। आत्मीय–स्वजनों का त्याग करने के परिणामस्वरूप जब आधुनिक मनुष्य संकट में पड़ता है या मानसिक अवसाद से ग्रस्त होता है, तब उसकी बात सुनने या उसे ढांढस बंधाने वाला कोई नहीं होता। यही आत्मीय–उपेक्षा का अंतिम मनोवैज्ञानिक और नैतिक परिणाम है, जिसके प्रति भर्तृहरि ने सदियों पूर्व ही चेतावनी दे दी थी।

आधुनिक समाज में नीतिशतक की व्यावहारिक प्रांसगिकता :

समग्र मूल्यांकन से यह स्पष्ट होता है कि भर्तृहरि का 'नीतिशतक' केवल प्राचीन भारत की एक शास्त्रीय साहित्यिक कृति नहीं है, बल्कि यह मानव आचरण का एक शाश्वत मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक संविधान है। वर्तमान युग में, जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ और चरम उपभोक्तावाद मनुष्य के सभी संबंधों को निगलने के लिए तत्पर हैं, भर्तृहरि की यह शिक्षा समाज को पुनः नैतिक संतुलन प्रदान कर सकती है। उनके दर्शन के आलोक में आत्मीय–स्वजनों के प्रति कर्तव्य केवल एक पारंपरिक सामाजिक शिष्टाचार या दिखावा नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन की एक निरंतर चलने वाली नैतिक परीक्षा है। एक मनुष्य कितना सभ्य, कितना मानवीय और कितना आत्मिक रूप से विकसित है, इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि वह अपने निकटतम आत्मीय–स्वजनों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है। आत्मीयता के माध्यम से ही दया, क्षमा, न्याय, समानुभूति और कृतज्ञता जैसे श्रेष्ठ मानवीय गुणों का वास्तविक स्वरूप प्रस्फुटित होता है। आधुनिक विश्व के जिस गहरे नैतिक संकट को दार्शनिकों ने 'मूल्यों का संकट' कहा है, उससे उबरने के लिए आत्मकेंद्रितता के आवरण को त्यागकर, क्षमा और करुणा को पाथेय बनाकर आत्मीय–परिजनों और वृहत्तर समाज के प्रति समर्पित होना ही इक्कीसवीं सदी में मानव–अस्तित्व की सार्थकता है।

निष्कर्ष :

समग्र मूल्यांकन और तात्विक विवेचन के पश्चात यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट होता है कि महाकवि भर्तृहरि द्वारा रचित 'नीतिशतक' प्राचीन भारत की मात्र एक श्रेष्ठ या ध्रुपद साहित्यिक कृति नहीं है, अपितु यह मानव–आचरण और सामाजिक मनोविज्ञान का एक शाश्वत दार्शनिक संविधान है। वर्तमान इक्कीसवीं सदी के उस संक्रमण काल में, जहाँ चरम व्यक्तिवाद, बेलगाम उपभोक्तावाद और संकीर्ण स्वार्थपरता मनुष्य के समस्त नैसर्गिक संबंधों तथा सामाजिक ताने–बाने को निगलने के लिए तत्पर हैं, वहाँ भर्तृहरि की यह कालजयी शिक्षा आधुनिक समाज को उसका खोया हुआ नैतिक संतुलन पुनः प्रदान करने की अद्वितीय क्षमता रखती है। यह ग्रंथ हमें भौतिक अंधानुकरण की वृत्ति से निकालकर आत्मिक चेतना की उच्चतर अवस्था की ओर ले जाता है।

भर्तृहरि के गहन दर्शन के आलोक में यह सिद्ध होता है कि आत्मीय–स्वजनों (परिजनों और सगे–संबंधियों) के प्रति कर्तव्यों का निर्वहन केवल कोई पारंपरिक सामाजिक शिष्टाचार या समाज को दिखाने के लिए किया जाने वाला खोखला आचरण नहीं है। इसके विपरीत, यह मानव जीवन की एक निरंतर चलने वाली, अत्यंत गूढ़ नैतिक परीक्षा है। एक मनुष्य अपने अंतर्मन से कितना सभ्य, कितना मानवीय और आत्मिक एवं दार्शनिक धरातल पर कितना अधिक विकसित है, इसका सबसे प्रामाणिक मापदंड यही है कि वह अपने निकटतम आत्मीय–स्वजनों के साथ संकट और सामान्य दोनों ही परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है। यह दैनिक व्यवहार ही उसकी

वास्तविक दार्शनिक चेतना का दर्पण है।

आत्मीयता की यही वह पावन परिधि है जिसके माध्यम से मनुष्य के भीतर सुप्त सर्वोच्च मानवीय गुणों 'जैसे असीम दया, निश्छल क्षमा, तटस्थ न्याय, गहरी समानुभूति और अकृत्रिम कृतज्ञता' का वास्तविक और व्यावहारिक स्वरूप प्रस्फुटित होता है। जब मनुष्य अपने परिजनों के प्रति इन सद्‌गुणों का निरंतर अभ्यास करता है, तभी वह वृहत्तर मानवता की निस्वार्थ सेवा के योग्य बन पाता है। जो व्यक्ति अपने रक्त–संबंधियों या आत्मीय जनों के प्रति संवेदनहीन और अकृतघ्न है, उसका बाह्य जगत में किया गया परोपकार मात्र एक पाखंड सिद्ध होता है। अतः परिवार और आत्मीय जन ही सद्‌गुणों की प्रथम और अनिवार्य पाठशाला हैं।

अंततः, आत्मकेंद्रितता के कठोर आवरण को त्यागकर, क्षमा और करुणा को जीवन का पाथेय बनाकर, तथा न्याय के प्रति अडिग रहते हुए अपने आत्मीय–परिजनों एवं वृहत्तर समाज के प्रति पूर्णतः समर्पित होना ही इस इक्कीसवीं सदी में मानव–अस्तित्व की वास्तविक सार्थकता है। भर्तृहरि के नीतिशतक की यह शाश्वत और सार्वभौमिक वाणी इसलिए आज केवल प्रासंगिक ही नहीं है, बल्कि आधुनिक मानव सभ्यता के अस्तित्व की रक्षा, उसके वैचारिक प्रदूषण के शमन और एक स्वस्थ, समरस एवं मानवीय समाज के पुनर्निर्माण के लिए नितांत अपरिहार्य हो चुकी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography) :

१. भर्तृहरि, शतकत्रय (नीतिशतक, श्रृंगारशतक, वैराग्यशतक), अनुवाद एवं संपादनरू श्री गुरुनाथ विद्यानिधि, संस्कृत पुस्तक भंडार, कोलकाता।

२. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, इंडियन फिलॉसफी (Indian Philosophy), खंड १ एवं २, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।

३. सेन, क्षितिमोहन, प्राचीन भारत की संस्कृति और नीतिबोध, विश्वभारती ग्रंथालय, कोलकाता।

४. दासगुप्ता, सुरेंद्रनाथ, ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी (A History of Indian Philosophy), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशंस, दिल्ली।

५. मुखोपाध्याय, गोविंदगोपाल, भारतीय दर्शन एवं नीतिशास्त्र, देज पब्लिशिंग, कोलकाता।

६. बंद्योपाध्याय, सुमिता, प्राचीन भारतीय साहित्य में समाज और नैतिकता, रवींद्र भारती विश्वविद्यालय प्रकाशन।

७. मैकइंटायर, अलास्डेयर (MacIntyre, Alasdair), आफ्टर वर्चू : ए स्टडी इन मोरल थ्योरी (After Virtue : A Study in Moral Theory), यूनिवर्सिटी ऑफ नोट्रे डेम प्रेस, इंडियाना (आधुनिक नीतिशास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन हेतु)।

८. दुर्खीम, एमिल (Durkheim, Émile), द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी (The Division of Labour in Society), द फ्री प्रेस (सामाजिक अलगाव या Alienation की सैद्धांतिक व्याख्या हेतु)।

९. शर्मा, चंद्रमणि, भर्तृहरि : जीवन एवं दर्शन, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

Email ID : taraknathnayak1988@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 36-40
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

हाफिज़ रहमत खान और पीलीभीत नगर की स्थापना

शहनवाज हुसैन, शोधार्थी,
डॉ. तनवीर हुसैन, सहायक प्राध्यापक,
गाँधी फ़ैज़–ए–आम (पी.जी.) कॉलेज, शाहजहाँपुर।
(महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली से सम्बद्ध)

सारांश :

प्राचीनकाल में पीलीभीत का क्षेत्र पांचाल महाजनपद के अंतर्गत आता था। मध्यकाल में इस क्षेत्र को दिल्ली सल्तनत के शासकों तथा उसके बाद मुगल शासकों ने अपने अधीन कर लिया एवं इस काल में यह क्षेत्र कटेहर के नाम से जाना जाता था। 18वीं शताब्दी में मुगल शासन व्यवस्था के दुर्बल हो जाने के कारण रुहेलों ने इसका लाभ उठाते हुए इस क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। रुहेला सरदार हाफिज़ रहमत खान ने इस क्षेत्र को सुव्यवस्थित एवं संगठित किया तथा यहाँ पर एक नवीन नगर पीलीभीत की स्थापना की एवं इसे अपनी राजधानी बनाया। इस शोध पत्र के माध्यम से हाफिज़ रहमत खान और पीलीभीत नगर की स्थापना तथा इसके इतिहास को जानने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द – पीलीभीत, पांचाल, कटेहर, रुहेला, हाफिज़ रहमत खान।

हाफिज़ रहमत खान मूल रूप से अफगानिस्तान के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शाह आलम खान था जो रुहेला सरदार दाउद खान के स्वामी थे। जब दाउद खान अफगानिस्तान से आकर रुहेलखण्ड क्षेत्र में बस गए और एक प्रमुख रुहेला सरदार बन गए तो इसकी सूचना जब हाफिज़ रहमत खान के पिता शाह आलम खान को मिली। वे रुहेलखण्ड आए और अपने साथ वापस अफगानिस्तान चलने के लिए दाउद खान से कहा लेकिन दाउद खान ने वापस जाने से मना कर दिया। शाह आलम खान के द्वारा बार–बार वापस जाने के लिए कहने पर दाउद खान ने एक षड्यन्त्र के द्वारा उनकी हत्या करवा दी। जब दाउद खान की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी अली मोहम्मद खान रुहेलखण्ड के शासक बने तो उन्होंने स्वयं हाफिज़ रहमत खान को रुहेलखण्ड आने एवं यहाँ पर रहने के लिए आमंत्रित किया।

इस निमंत्रण के कारण हाफिज़ रहमत खान 18वीं शताब्दी में अपने मूल देश अफगानिस्तान से आकर भारत के रुहेलखण्ड क्षेत्र में बस गए। इन्होंने शीघ्र ही अपने श्रेष्ठ व्यक्तित्व, ईमानदारी, स्वामिभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा और सैनिक गुणों के कारण नवाब अली मोहम्मद खान का विश्वास पात्र बनकर स्वयं को एक प्रमुख रुहेला सरदार के रूप में स्थापित कर लिया।[1] नवाब अली मोहम्मद खान ने अपनी मृत्यु से पूर्व हाफिज़ रहमत खान की स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर इन्हें अपने बेटों का संरक्षक नियुक्त कर दिया। इन्होंने नवाब के बेटों के

सरंक्षक के रूप में रुहेलखण्ड के वास्तविक शासक के रूप में 1774 ई0 तक शासन किया।

18वीं शताब्दी में हाफिज़ रहमत खान ने पीलीभीत शहर को अपनी राजधानी के रूप में बसाया। अपनी राजधानी पीलीभीत में इन्होंने उलेमाओं, सूफी संतों तथा विद्वानों को आश्रय प्रदान किया एवं यहाँ पर मस्जिदों तथा मदरसों का निर्माण करवाया।[2] यह एक धर्म सहिष्णु शासक थे जब 18वीं शताब्दी में राजस्थान में अकाल पड़ा तो वहाँ से मेवाती तथा बिश्नोई समाज के लोग पलायन कर रुहेलखण्ड क्षेत्र में आ गए। हाफिज़ रहमत खान ने इन लोगों को पीलीभीत में संरक्षण प्रदान किया तथा इनके रोजगार की व्यवस्था के लिए एवं नगर की सुरक्षा के उद्देश्य से पीलीभीत के चारों ओर दीवार निर्माण का कार्य शुरू करवाया। प्रारम्भ में इस दीवार को मिट्टी से बनवाया गया लेकिन बाद में इसको तुड़वाकर इसे पक्की ईंटों से निर्मित किया गया।[3] अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देते हुए इन्होंने पीलीभीत में गौरीशंकर मंदिर के भव्य गेट का निर्माण कराया। हाफिज़ रहमत खान ने वस्तुओं की खरीद–बिक्री के लिए पीलीभीत में एक व्यापारिक मण्डी का भी निर्माण करवाया। प्रथम रुहेला युद्ध में अवध एवं ईस्ट इण्डिया कंपनी की संयुक्त सेना से लड़ते हुए शाहजहाँपुर जनपद की तिलहर तहसील में स्थित मीरानपुर कटरा नामक स्थान पर इनकी मृत्यु हो गई।

प्राचीन काल में पीलीभीत क्षेत्र में घने वन थे और यह तराई प्रदेश का हिस्सा था। वैदिक काल में इस क्षेत्र में विभिन्न जनजातियाँ निवास करती थीं। इस क्षेत्र के घने वन उनके निवास के लिए उपयुक्त स्थान के रूप में विद्यमान थे। महाजनपद काल में पीलीभीत का क्षेत्र पांचाल महाजनपद के अन्तर्गत आता था।

मध्य काल में इस क्षेत्र पर दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने अपना आधिपत्य स्थापित कर इस क्षेत्र को अपने अधीन रखा। दिल्ली सल्तनत के पतन के बाद मुगल शासकों ने इस क्षेत्र को अपने अधीन कर इसे अपने शासन क्षेत्र के अंतर्गत शामिल कर लिया। इस काल में यहाँ पर कृषि एवं व्यापार का विकास हुआ।

18वीं शताब्दी में मुगल सत्ता के कमजोर होने पर रुहेलों ने इस क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और प्रमुख रुहेला सरदार हाफिज़ रहमत खान ने इस क्षेत्र को संगठित कर एक नवीन नगर पीलीभीत की स्थापना की। इस शहर को उन्होंने अपनी राजधानी के रूप में सुसज्जित एवं स्थापित किया।

पीलीभीत नाम की उत्पत्ति से सम्बन्धित स्थानीय लोक कथाओं और इतिहासकारों के कुछ प्रमुख मत मिलते हैं। सबसे प्रचलित मत है कि मुख्य रूप से पीलीभीत नाम यहाँ पर बनी पीले रंग की दीवार के कारण इस शहर को पीलीभीत के नाम से जाना जाने लगा। पीलीभीत शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है पीली + भीत अर्थात पीली = पीला तथा भीत = दीवार जिसका संयुक्त रूप से अर्थ है पीली दीवार। यह स्थान तराई प्रवेश का हिस्सा था तथा यहाँ पर पीले रंग की मिट्टी प्रचुर मात्रा में पायी जाती थी। इसी पीली मिट्टी से स्थानीय लोग अपने घर एवं दीवारें बनाते थे जिससे उनके घर तथा दीवारें पीले रंग की दिखाई देती थीं। इस विशेषता के कारण यह क्षेत्र पीलीभीत नाम से प्रसिद्ध हो गया।[4] एक अन्य मत के अनुसार इस शहर में पुराना पीलीभीत नाम से एक गाँव था। समय के साथ–साथ धीरे–धीरे यहाँ के पुराने गाँव के नाम के कारण इस पूरे शहर को पीलीभीत के नाम से पुकारा जाने लगा।[5]

एक अन्य मत के अनुसार इस शहर के चारों ओर पीली मिट्टी की दीवार बनी होने के कारण यह पीले रंग की दिखाई देती थी। इस कारण यहाँ पर आने वाले व्यापारियों तथा यात्रियों ने इस शहर को पहचानने के लिए पीलीभीत कहना शुरू कर दिया एवं धीरे–धीरे यह शहर पीलीभीत के नाम से प्रसिद्ध हो गया।[6]

एक अन्य लोक कथा के अनुसार इस शहर में किसी साधु अथवा संत का आश्रम था। साधु के आश्रम की दीवारें पीली मिट्टी से बनी थीं जिस कारण लोग उसे पीलीभीत वाला आश्रम के नाम से पुकारते थे तथा समय के साथ–साथ यह नाम पूरे शहर के लिए प्रचलित हो गया।

18वीं शताब्दी में रुहेला शासक हाफिज़ रहमत खान ने इस क्षेत्र को अपने अधीन कर यहाँ पर हाफिज़ाबाद नामक एक नवीन शहर की स्थापना की लेकिन इस इलाके के लोग स्थानीय पुराने नाम पीलीभीत से जुड़े रहे तथा धीरे–धीरे यही नाम पुनः इस पूरे शहर के लिए स्थायी रूप से प्रचलित हो गया।

18वीं शताब्दी में हाफिज़ रहमत खात ने पीलीभीत शहर में एक सुव्यवस्थित एवं संगठित शासन व्यवस्था को स्थापित किया। हाफिज़ रहमत खान यहाँ के सर्वोच्च शासक थे। वे यहाँ पर सैनिक, न्यायिक एवं राजस्व इन सभी शक्तियों के केन्द्र थे। इन्होंने पीलीभीत में सैन्य एवं कानून व्यवस्था के लिए फौजदार, राजस्व की वसूली के लिए आमिल तथा न्यायिक कार्यों के लिए काजी नामक स्थानीय अधिकारियों की नियुक्ति की।

नेपाल की तराई और कुमाऊँ क्षेत्र के निकट स्थित होने के कारण पीलीभीत क्षेत्र सीमावर्ती चौकी के रूप में कार्य करता था। इस स्थिति के कारण यह क्षेत्र बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा तथा उनकी रोकथाम के लिए महत्वपूर्ण बन गया। इस क्षेत्र से बरेली, शाहजहाँपुर और तराई इलाकों की निगरानी करना आसान था।[7] यहाँ की उपजाऊ भूमि, कृषि और वन संसाधन सेना की रसद आपूर्ति के लिए सहायक थे। यहाँ से उत्तर भारत से कुमाऊँ–तराई की ओर जाने वाले मार्गों पर नियन्त्रण तथा आवागमन, व्यापार और सैनिक गतिविधियों पर निगरानी करना संभव था। इस प्रकार रणनीतिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र रक्षात्मक ढाल की भूमिका के रूप में कार्य करता था।

हाफिज़ रहमत खान के शासन काल में पीलीभीत का समाज रुहेला अफगानों, कारीगरों, व्यापारियों तथा स्थानीय हिन्दू किसानों में वर्गीकृत था। इस समय यहाँ के शासक रुहेला थे एवं यहाँ के शासन की शक्ति उनके हाथों में थी। यहाँ जमींदारी व्यवस्था भी प्रचलित थी तथा यहाँ पर विभिन्न जातियों और समुदायों के लोगों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध थे। यहाँ के शासक धर्म सहिष्णु थे एवं यहाँ पर इस्लाम धर्म के त्यौहारों के साथ–साथ हिन्दू धर्म के त्यौहारों, रीति–रिवाजों तथा परंपराओं को समान रूप से मनाया जाता था।[8] इस समय यहाँ पर हाफिज़ रहमत खान ने मस्जिदों तथा मदरसों का निर्माण करवाया। इसके साथ ही यहाँ पर मन्दिर भी विद्यमान थे एवं हिन्दू धर्म के लोगों को वहाँ पर पूजा करने की स्वतन्त्रता थी।

यहाँ के लोगों पर सूफी संतों तथा दरगाहों का विशेष प्रभाव था।[9] पीलीभीत के रुहेला शासक हाफिज़ रहमत खान का भी सूफी विचारधारा के प्रति काफी झुकाव था। इन्होंने अपने शासन क्षेत्र में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों समुदायों को समान रूप से संरक्षण दिया एवं मस्जिदों तथा धार्मिक स्थलों का निर्माण करवाया। जरूरतमन्दों की सहायता, गरीबों की मदद करना, सादगी पूर्ण जीवन, न्यायप्रियता तथा धार्मिक सहिष्णुता इनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ थीं, जो सूफी संतों के विचारों से मिलती हैं।

हजरत शाह मोहम्मद अली मियां, हजरत बाबा गुलाब शाह तथा हजरत शाह बदरुद्दीन पीलीभीत के प्रमुख सूफी संत थे। हजरत शाह मोहम्मद अली मियां इस शहर के सबसे प्रसिद्ध सूफी संतों में से एक थे तथा इन्होंने इस क्षेत्र में इंसानियत, प्रेम तथा शांति का उपदेश दिया। इस शहर के सूफी संत हजरत बाबा गुलाब शाह अपनी सादगी और सेवा भावना के लिए प्रसिद्ध थे एवं इन्होंने गरीबों की सहायता तथा मानव सेवा पर जोर

दिया। इसी शहर के सूफी संत हजरत शाह बदरुद्दीन शांति और आध्यात्मिक विचारों के लिए प्रसिद्ध थे। इन सूफी संतों ने इस शहर में आपसी भाईचारा, मानवता, दया तथा साम्प्रदायिक एकता के विचारों को प्रोत्साहन दिया।

पीलीभीत की संस्कृति रुहेला एवं भारतीय शैली का मिश्रण थी। यहाँ के खान–पान, वेशभूषा, भाषा पर यह मिश्रण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता था। यहाँ की राजकीय भाषा फारसी थी एवं यहाँ की आम प्रजा हिन्दी और उर्दू भाषा का भी प्रयोग करती थी।

हाफिज़ रहमत खान के शासन काल में पीलीभीत की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित थी तथा कृषि के साथ–साथ पशुपालन, व्यापार, कुटीर उद्योग एवं स्थानीय कारीगरी भी अर्थव्यवस्था के आधार थे। इस क्षेत्र की उपजाऊ भूमि और नदियों से सिंचाई के लिए जल प्राप्त हो जाने के कारण यहाँ पर अच्छी कृषि पैदावर होती थी। यहाँ पर मुख्य फसलों के रूप में गेहूँ, धान, जौ, बाजरा एवं दालें उगाई जाती थीं। कुछ क्षेत्रों में गन्ना और तिलहन की फसलें भी उगाई जाती थीं। कृषि फसलों की सिंचाई के लिए नदियों, नहरों तथा तालाबों का प्रयोग किया जाता था। कृषकों से भूमि लगान कर वसूल किया जाता था एवं पीलीभीत क्षेत्र से प्राप्त कर का प्रयोग स्थानीय प्रशासन तथा सेना के खर्च के लिए किया जाता था। कुछ क्षेत्रों में स्थानीय मुखिया और जमींदार शासक को कर वसूलने में मदद करते थे। कृषकों से प्राप्त होने वाला लगान (भूमि कर) राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत था तथा व्यापार कर और बाजार कर भी राज्य की आय के स्त्रोत थे।

हाफिज़ रहमत खान के शासन काल में पीलीभीत का प्रशासनिक महत्व बढ़ने के साथ–साथ इसका एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र के रूप में भी विकास हुआ।[10] इन्होंने इस नगर में आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने के लिए पीलीभीत में एक बड़ी व्यापारिक मण्डी की स्थापना की तथा स्थानीय बाजारों को भी प्रोत्साहन दिया। पीलीभीत की मण्डी में प्रमुख रूप से गेहूँ, धान, बाजरा, जौ, गन्ना, गुड़, दुग्ध उत्पाद, घी, वन उत्पाद, लकड़ी, पशु आदि का व्यापार होता था। इस मण्डी में व्यापारियों के आवागमन से नगर की आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ीं तथा किसानों को अपनी कृषि उपज बेचने के लिए एक स्थायी बाजार मिल गया। धीरे–धीरे यह मण्डी एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित हो गई एवं इससे स्थानीय व्यापारियों, किसानों एवं स्थानीय लोगों को आर्थिक लाभ हासिल हुआ।[11]

हाफिज़ रहमत खान ने अपने शासन काल में पीलीभीत में यहाँ के लोगों के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की एवं इसे प्रोत्साहन दिया। इस समय यहाँ पर मुस्लिम समाज के लोग मकतबों में प्रारम्भिक शिक्षा तथा मदरसों में उच्च शिक्षा ग्रहण करते थे। मदरसों में धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ गणित, तर्कशास्त्र एवं खगोलशास्त्र जैसे आधुनिक विषयों की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। हिन्दू समाज के लोग पाठशालाओं और गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण करते थे। पाठशालाओं में छात्रों को बुनियादी शिक्षा जैसे– भाषा, गणित आदि से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुलों में छात्र वेद, पुराण, भारतीय संस्कृति आदि से सम्बन्धित शिक्षा प्राप्त करते थे।

सन्दर्भ :

(1) बरेलवी, सैयद अल्ताफ अली, हयात–ए–हाफिज़ रहमत खान, करांची : एकेडमी एजुकेशनल रिसर्च, अल पाकिस्तान, 1966, पृष्ठ 331–344

(2) वही, पृष्ठ 342–344

(3) वही, पृष्ठ 325–330

(4) यह तथ्य पीलीभीत की स्थानीय लोक कथाओं में प्रचलित है लेकिन किसी ऐतिहासिक प्रमाण से इस बारे में जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

(5) यह मान्यता पीलीभीत नगर में प्रचलित है किन्तु किसी ऐतिहासिक स्त्रोत से इस प्रकार की पुष्टि नहीं होती है।

(6) यह किंवदंती पीलीभीत की स्थानीय लोक परम्पराओं में प्रचलित है परन्तु इसका कोई लिखित ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त नहीं होता है।

(7) बरेलवी, सैयद अल्ताफ अली, हयात–ए–हाफिज़ रहमत खान, पृष्ठ 41–42

(8) वही, पृष्ठ 325–330

(9) बहादुर, मुस्तजाब खान, गुलिस्तान–ए–रहमत, 1792 (अनु.) चार्ल्स इलियट, लंदन : ओरियन्टल ट्रांसलेशन फंड, 1831, पृष्ठ 226

(10) बरेलवी, सैयद अल्ताफ अली, हयात–ए–हाफिज़ रहमत खान, पृष्ठ 325–327

(11) बहादुर, मुस्तजाब खान, गुलिस्तान–ए–रहमत, पृष्ठ 115

E-mail : husainshahnawaz740@gmail.com

E-mail : tanveerpasha2013@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 41-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

जेन जी और वैश्विक भारत

आलोक कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

'जेन जी' का शाब्दिक अर्थ : जेनेरेशन जी (z) या 'z' पीढ़ी है। इस शब्द का प्रयोग उन युवा वर्ग के लिए किया जाता है, जिनका जन्म वर्ष 1997 से 2012 के मध्य हुआ था। यद्यपि भारतीय सन्दर्भ में 'जेन जी' की कोई वैधानिक परिभाषा नही है, परन्तु वर्तमान समय में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में श्जेन जी' सबसे अधिक चर्चित शब्द है। इक्कीसवीं सदी का समय मानव विकास के इतिहास में सबसे अधिक तीव्र परिवर्तन का काल है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंटरनेट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सोशल मीडिया, वैश्वीकरण और डिजिटल अर्थव्यवस्था ने दुनिया के विभिन्न देशों के बीच की भौगोलिक दूरियों को बहुत कम कर दिया है। आज एक देश में घटित घटना का प्रभाव कुछ ही क्षणों में दूसरे देश के लोगों तक पहुँच जाता है। इंटरनेट, सोशल मीडिया और डिजिटल तकनीक के व्यापक प्रयोग करने के कारण इस परिवर्तन के केंद्र में नई युवा पीढ़ी विशेष रूप से 'जेन जी' खड़ी है।

'जेन जी' नये विचारों को लेकर निरंतर सक्रिय तथा तत्पर रहते हैं। वे डिजिटल तकनीक से निकट परिचय, सूचनाओं तक तत्काल पहुँच, वैश्विक संस्कृति के संपर्क में वृद्धि, पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के बीच संवाद, कैरियर के नए विकल्पों के प्रति रुचि, उद्यमिता और स्वतंत्र कार्य की संभावनाओं में रुचि, सामाजिक एवं पर्यावरणीय विषयों के प्रति जागरूकता, दृश्य एवं छोटे डिजिटल कंटेंट की लोकप्रियता, ऑनलाइन नेटवर्क और समुदायों का विस्तार तथा व्यक्तिगत पहचान और अभिव्यक्ति के नए माध्यम इत्यादि को लेकर सजग रहते हैं।

भारत के संदर्भ में जेन जी का महत्व और भी बढ़ जाता है। विदित है कि 21वीं सदी का भारत विश्व का सबसे अधिक युवा जनसँख्या (विशेष रूप से 'जेन जी') वाला देश है, जहाँ जेन जी की संख्या लगभग 32–35 करोड़ है। विश्व में सबसे अधिक जेन जी जनसंख्या के साथ भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था, तकनीक, शिक्षा, अंतरिक्ष, स्टार्टअप, डिजिटल सेवाओं और वैश्विक कूटनीति में अपनी सक्रिय भूमिका बढ़ा रहा है। ऐसे समय में भारत की यह युवा पीढ़ी वैश्विक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यदि वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों, लोकतांत्रिक मूल्यों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैश्विक दृष्टि के साथ आगे बढ़ती है, तो वह भारत को विश्व मंच पर प्रभावशाली बनाने में योगदान दे सकती है। भारत की आर्थिक प्रगति में युवा शक्ति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। जेन जी का बड़ा हिस्सा आने वाले वर्षों में कार्यबल का महत्वपूर्ण हिस्सा बनेगा। इस पीढ़ी के

सामने रोजगार का स्वरूप भी बदल रहा है। पारंपरिक सरकारी या निजी नौकरियों के साथ–साथ स्टार्टअप, फ्रीलांसिंग, गिग इकॉनमी, डिजिटल सेवाएँ, कंटेंट क्रिएशन, ई–कॉमर्स और रिमोट वर्क जैसे विकल्प सामने आए हैं। जेन जी में उद्यमिता की रुचि भारत की स्टार्टअप संस्कृति को गति दे सकती है। युवा नई समस्याओं के समाधान के लिए तकनीक का उपयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए– कृषि तकनीक, स्वास्थ्य तकनीक, शिक्षा तकनीक, वित्तीय तकनीक, स्वच्छ ऊर्जा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, साइबर सुरक्षा, डिजिटल वाणिज्य जैसे क्षेत्रों में युवा उद्यमिता के लिए व्यापक संभावनाएँ हैं। वैश्वीकरण के दौर में संस्कृति का स्वरूप भी तेजी से बदल रहा है। जेन जी एक साथ भारतीय और वैश्विक सांस्कृतिक प्रभावों से परिचित है। भारतीय युवा हॉलीवुड, कोरियाई संस्कृति, जापानी एनीमे, पश्चिमी संगीत और वैश्विक डिजिटल संस्कृति से प्रभावित हो सकता है, वहीं दूसरी ओर भारतीय त्योहारों, योग, शास्त्रीय संगीत, लोक परंपराओं और भारतीय भोजन से भी जुड़ा रह सकता है। इस स्थिति को केवल सांस्कृतिक संघर्ष के रूप में देखने के बजाय सांस्कृतिक संवाद के रूप में भी समझा जा सकता है। भारतीय युवा अपनी संस्कृति को आधुनिक डिजिटल माध्यमों से दुनिया तक पहुँचा सकता है। भारतीय भाषाओं में वीडियो, पॉडकास्ट, ब्लॉग, संगीत और डिजिटल साहित्य वैश्विक दर्शकों तक पहुँच सकते हैं। इस प्रकार जेन जी भारत के सॉफ्ट पावर को वैश्विक स्तर पर सुदृढ़ करने में योगदान दे सकती है।

'वैश्विक भारत' से आशय ऐसे भारत से है जो आर्थिक, तकनीकी, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और कूटनीतिक स्तर पर विश्व समुदाय में सक्रिय एवं प्रभावशाली भूमिका निभाता है। वैश्विक भारत की अवधारणा के कई आयाम हैं, जिनमें आर्थिक आयाम, तकनीकी आयाम, सांस्कृतिक आयाम, कूटनीतिक आयाम तथा मानवीय आयाम प्रमुख हैं। भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था में पांचवें स्थान पर है। विनिर्माण, सेवाएँ, सूचना प्रौद्योगिकी, डिजिटल अर्थव्यवस्था, स्टार्टअप और उद्यमिता इसके महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। भारत की डिजिटल क्षमता, सूचना प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष कार्यक्रम, डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना और उभरती तकनीकों में बढ़ती भागीदारी वैश्विक स्तर पर भारत की भूमिका को प्रभावित करती है। योग, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन, संगीत, नृत्य, सिनेमा, साहित्य, भोजन और भारतीय प्रवासी समुदाय भारत की सांस्कृतिक उपस्थिति को विश्व स्तर पर बढ़ाते हैं। साथ ही भारत विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और बहुपक्षीय मंचों पर अपनी भूमिका निभाता है। वैश्विक समस्याओं, जैसे – जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, आतंकवाद, स्वास्थ्य और तकनीकी शासन पर भारत की भागीदारी बढ़ी है। ऐसे में भारत के जेन जी वैश्विक अर्थव्यवस्था तथा ज्ञान–आधारित समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट आज वैश्विक चुनौतियाँ हैं। युवा पीढ़ी इन समस्याओं से सीधे प्रभावित होने वाली पीढ़ियों में शामिल है। भारत जैसे देश में पर्यावरण संरक्षण का संबंध जल, कृषि, स्वास्थ्य, ऊर्जा और रोजगार से भी जुड़ा है। जेन जी पर्यावरण संरक्षण के लिए– ऊर्जा की बचत, जल संरक्षण, प्लास्टिक के कम उपयोग, सार्वजनिक परिवहन, पुनर्चक्रण, वृक्षारोपण, टिकाऊ उपभोग जैसे उपायों को बढ़ावा दे सकती है। इसके अतिरिक्त युवा पर्यावरण–आधारित नवाचार और हरित उद्यमिता में भी योगदान कर सकते हैं। वैश्विक भारत की पहचान केवल आर्थिक शक्ति से नहीं बल्कि सतत विकास के प्रति प्रतिबद्धता से भी निर्धारित होगी। भारत की वैश्विक भूमिका को मजबूत करने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विशेष महत्व है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता,

रोबोटिक्स, जैव प्रौद्योगिकी, क्वांटम कंप्यूटिंग, अंतरिक्ष विज्ञान और साइबर सुरक्षा जैसे क्षेत्र तेजी से बदल रहे हैं। जेन जी के सामने इन क्षेत्रों में सीखने और काम करने के अवसर हैं।

भारत के युवा यदि वैज्ञानिक अनुसंधान, नवाचार और तकनीकी उद्यमिता में आगे बढ़ते हैं, तो वे भारत की वैश्विक तकनीकी क्षमता को मजबूत कर सकते हैं। लेकिन तकनीक के साथ नैतिकता भी जरूरी है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीकों के उपयोग में गोपनीयता, निष्पक्षता, रोजगार, गलत सूचना और मानव अधिकारों जैसे प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। इसलिए जेन जी को केवल तकनीक का उपभोक्ता नहीं बल्कि जिम्मेदार तकनीक–निर्माता बनने की दिशा में भी आगे बढ़ना चाहिए।

विश्व के विभिन्न देशों में भारतीय मूल के लोग रहते हैं। भारतीय प्रवासी समुदाय भारत और विश्व के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु का कार्य करता है। जेन जी की डिजिटल कनेक्टिविटी इस संबंध को और मजबूत कर सकती है। भारत में रहने वाला युवा विदेश में रहने वाले भारतीय युवाओं के साथ शिक्षा, संस्कृति, व्यवसाय और सामाजिक गतिविधियों में सहयोग कर सकता है। भारतीय मूल के युवा वैश्विक संस्थानों में कार्य करते हुए भारत की संस्कृति और उपलब्धियों का परिचय भी करा सकते हैं। इस प्रकार वैश्विक भारतीय पहचान केवल भारत की सीमाओं के भीतर रहने वाले लोगों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि दुनिया के विभिन्न हिस्सों में फैले भारतीय समुदाय से भी जुड़ती है। किसी देश की वैश्विक छवि केवल सरकार या राजनयिक संस्थाओं से नहीं बनती।

नागरिक, विद्यार्थी, वैज्ञानिक, कलाकार, खिलाड़ी, उद्यमी और डिजिटल कंटेंट निर्माता भी उस छवि को प्रभावित करते हैं। भारत के जेन जी सोशल मीडिया के माध्यम से भारत की सकारात्मक उपलब्धियों को दुनिया तक पहुँचा सकती है। भारत की समृद्ध ज्ञान परंपरा, अंतरिक्ष कार्यक्रम, डिजिटल नवाचार, योग, कला, संगीत, साहित्य, पर्यटन, भोजन, स्टार्टअप से संबंधित सामग्री वैश्विक दर्शकों तक पहुँच सकती है।

आधुनिकता और वैश्विकता के बीच भारतीय मूल्यों की प्रासंगिकता बनी हुई है। भारतीय चिंतन में "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसी अवधारणाएँ व्यापक मानव समुदाय को एक परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा देती हैं। इसी प्रकार सत्य, अहिंसा, सह–अस्तित्व, करुणा, कर्तव्य और प्रकृति के प्रति सम्मान जैसे मूल्य आधुनिक वैश्विक समस्याओं के समाधान में उपयोगी हो सकते हैं। जेन जी इन मूल्यों को आधुनिक संदर्भ में समझकर वैश्विक समाज में योगदान दे सकती है। भारतीयता का अर्थ केवल परंपराओं का अनुकरण नहीं बल्कि उन मूल्यों को वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुसार रचनात्मक रूप से अपनाना भी है।

इस प्रकार जेन जी और वैश्विक भारत का संबंध भारत के भविष्य से जुड़ा हुआ विषय है। इस पीढ़ी ने डिजिटल तकनीक, इंटरनेट और वैश्वीकरण के दौर में जीवन का अनुभव किया है। उसके सामने विश्व से जुड़ने के पहले से कहीं अधिक अवसर हैं। भारत आज आर्थिक, तकनीकी, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक स्तर पर वैश्विक भूमिका को विस्तार देने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। ऐसे समय में जेन जी भारत की मानव पूंजी की महत्वपूर्ण शक्ति बन सकती है। इस पीढ़ी की सबसे बड़ी ताकत उसकी डिजिटल क्षमता, सीखने की संभावना, रचनात्मकता और वैश्विक संपर्क हो सकती है। लेकिन इसके साथ डिजिटल निर्भरता, गलत सूचना, कौशल–अंतर, साइबर सुरक्षा और सांस्कृतिक संतुलन जैसी चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। वैश्विक भारत के निर्माण

के लिए आवश्यक है कि जेन जी आधुनिक तकनीक और भारतीय मूल्यों के बीच संतुलन स्थापित करे। वह विश्व की श्रेष्ठ उपलब्धियों से सीखे, लेकिन अपनी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पहचान को भी समझे। वह वैश्विक नागरिक बने, लेकिन सामाजिक जिम्मेदारियों से विमुख न हो। वह तकनीक का उपयोग करे, लेकिन तकनीक को मानव मूल्यों के अधीन रखे। अंततः भारत की जेन जी वैश्विक भारत की इस यात्रा के महत्वपूर्ण सहभागी हैं। यदि उसे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कौशल, अवसर, स्वतंत्र चिंतन और जिम्मेदार नागरिकता का वातावरण मिलता है, तो वह भारत को एक अधिक नवाचारी, आत्मविश्वासी, समावेशी और विश्व से जुड़ा हुआ राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। इस प्रकार जेन जी ही 'वैश्विक भारत' का मूल निर्माता है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 45-50

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

रजनी गुप्त का उपन्यास 'कुल जमा बीस' और उसमें निहित जीवन मूल्य

रितिक गुप्ता (पीएच.डी. शोधार्थी)
डॉ. प्रतिभा सोलंकी, शोध निर्देशक
माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर।

शोध सार :

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य में रजनी गुप्त का उपन्यास 'कुल जमा बीस' एक महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में सामने आता है, जो वर्चुअल दुनिया में डूबती जा रही युवा पीढ़ी को जीवन–मूल्यों और आदर्शों से पुनः जोड़ने का प्रयास करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस उपन्यास का गहन अध्ययन करते हुए इसमें निहित पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की पड़ताल की गई है। उपन्यास की कथा मुख्यतः दो पीढ़ियों 'डॉ. अनिल कुमार–रोजी की पीढ़ी और उनके पुत्र आशु की पीढ़ी' के माध्यम से आगे बढ़ती है, जिसमें कुसंगति, तकनीकी दुष्प्रभाव, पारिवारिक विघटन, प्रेम–छल, सामाजिक वर्ग–भेद और अंततः आत्मबोध व मूल्यों की पुनर्वापसी जैसे विषय बड़ी संवेदनशीलता से उकेरे गए हैं। शोध पत्र यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि यह उपन्यास केवल एक पारिवारिक गाथा नहीं, बल्कि आज के डिजिटल युग में मूल्य–शिक्षा की अनिवार्यता को रेखांकित करने वाला एक सशक्त सामाजिक दस्तावेज भी है।

बीज शब्द : जीवन मूल्य, कुल जमा बीस, रजनी गुप्त, पारिवारिक विघटन, वर्चुअल दुनिया, कुसंगति, स्त्री–मनोविज्ञान, नैतिक क्षरण।

1. प्रस्तावना :

हिंदी उपन्यास साहित्य सदैव से समाज के बदलते यथार्थ को प्रतिबिंबित करता रहा है। इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में जब सूचना–प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया ने मानव–जीवन के हर पहलू को अपनी गिरफ्त में ले लिया है, तब पारिवारिक मूल्यों, नैतिक आचरण और मानवीय संवेदनाओं के क्षरण की समस्या पहले से कहीं अधिक गंभीर होती जा रही है। ऐसे समय में रजनी गुप्त का उपन्यास 'कुल जमा बीस' एक सार्थक साहित्यिक हस्तक्षेप के रूप में सामने आता है।

उपन्यास के आमुख में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह कृति 'वर्चुअल दुनिया में डूबी युवा पीढ़ी को जीवन मूल्यों एवं आदर्शों से परिचित कराने' के उद्देश्य से रची गई है (गुप्त, आमुख)। यह वाक्य ही मानो संपूर्ण उपन्यास की वस्तु–योजना की कुंजी है, और यही कारण है कि प्रस्तुत शोध पत्र में उपन्यास के कथानक, चरित्रों और प्रसंगों के माध्यम से उभरने वाले विविध जीवन–मूल्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया

है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि लेखिका ने किन–किन आयामों से मूल्य–संकट और मूल्य–पुर्नस्थापना को अपनी कथा में गूंथा है।

2. उपन्यासकार एवं उपन्यास का परिचय :

रजनी गुप्त का जन्म 2 अप्रैल, 1963 को चिरगाँव, झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे.एन.यू.), नई दिल्ली से एम.फिल. एवं पीएच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। रजनी गुप्त समकालीन हिंदी कथा–साहित्य की एक सशक्त एवं संवेदनशील हस्ताक्षर हैं, जिनका रचना–संसार सामाजिक यथार्थ, स्त्री–मनोविज्ञान और पारिवारिक जीवन के जटिल अंतर्द्वंद्वों की गहरी पड़ताल के लिए जाना जाता है। इक्कीसवी सदी के प्रारम्भिक दो दशक में इन्होंने महत्वपूर्ण उपन्यासों के माध्यम से हिंदी उपन्यास–परंपरा को समृद्ध किया है – कहीं कुछ और (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002), कुल जमा बीस (सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012), कितने कठघरे (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015), नए समय का कोरस (भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2018) और तिराहे पर तीन (राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2021)। इन कृतियों का देश के प्रतिष्ठित प्रकाशन–गृहों से प्रकाशित होना स्वयं इस बात का प्रमाण है कि लेखिका का रचनात्मक कद हिंदी साहित्य–जगत में सुस्थापित है।

रजनी गुप्त के साहित्य की केंद्रीय विशेषता स्त्री–पात्रों के माध्यम से समाज के अंतर्विरोधों को उभारना है। 'कुल जमा बीस' में भी यही प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है, जहाँ रोजी, दादी और रत्ना जैसी स्त्री–पात्र कथा की संवेदनात्मक रीढ़ बनती हैं और उपन्यास के मूल्य–बोध को गहराई प्रदान करती हैं। 'कुल जमा बीस' उनकी महत्वाकांक्षी कृति है।

उपन्यास का शीर्षक अपने आप में गहन प्रतीकात्मकता समेटे हुए है। 'कुल जमा बीस' मानो जीवन के उस लेखे–जोखे की ओर संकेत करता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों, संबंधों और मूल्यों का 'जमा–खर्च' जोड़ता चलता है। कथा में यह शीर्षक–भाव कई स्तरों पर मुखर होता है– कभी नायक आशु के जन्मदिन (बीस दिसंबर) के प्रसंग से, तो कभी उपन्यास के अंत में उभरने वाले जीवन की नश्वरता और सीमितता के गहन बोध से, जहां आशु की उम्र लगभग बीस वर्ष होती है। शीर्षक पाठक को यह सोचने पर विवश करता है कि जीवन की इस सीमित 'जमा–पूंजी' का सदुपयोग अंततः किस प्रकार किया जाए।

3. कथानक का संक्षिप्त परिचय :

उपन्यास की कथा एक अस्पताल के मार्मिक दृश्य से आरंभ होती है, जहाँ संवेदनशील चिकित्सक डॉ. अनिल कुमार निर्धन एवं असहाय मरीजों की पीड़ा से गहरे स्तर पर जुड़ जाते हैं। इसी क्रम में उनका परिचय रोजी नामक युवती से होता है, और परिस्थितियां दोनों को विवाह–सूत्र में बांध देती हैं– एक ऐसा संबंध, जिसे परिवार और समाज सहज स्वीकृति नहीं देते। विवाह के उपरांत रोजी के मन में व्याप्त शंका, असुरक्षा और ईर्ष्या दांपत्य जीवन में निरंतर कटुता घोलती रहती है, जबकि घर की वृद्धा (दादी/अम्मा) अपने धैर्य और आस्था से परिवार को संभालने का सतत प्रयास करती हैं।

कालांतर में कथा आगे बढ़ती है और केंद्र में आ जाते हैं अनिल–रोजी के पुत्र आशु तथा पुत्री कुन्नू। पिता की अनुपस्थिति में आशु कम उम्र में ही परिवार की जिम्मेदारी उठाना सीख जाता है, किंतु किशोरावस्था में छात्रावासीय जीवन, बुरी संगति, इंटरनेट और मोबाइल की चकाचौंध भरी दुनिया उसे धीरे–धीरे नैतिक भटकाव

की ओर धकेल देती है। वह छल–प्रपंच, बहु–प्रेम–संबंधों और सतही चमक–दमक में उलझता चला जाता है, यहाँ तक कि उसका एक निकट मित्र साइबर अपराध और चोरी के रैकेट में लिप्त पाया जाता है। कथा के उत्तरार्ध में आशु को अपनी भूलों का बोध होता है, वह दादी से क्षमा–याचना करता है और पारिवारिक इच्छा के अनुरूप रत्ना नामक युवती से विवाह कर स्थिरता की ओर लौटता प्रतीत होता है। किंतु उपन्यास का अंत अत्यंत करुण एवं मार्मिक है – एक सड़क दुर्घटना में आशु गंभीर रूप से घायल होकर मृत्यु–शय्या पर पहुंच जाता है, दादी अर्धचेतन अवस्था में उसे बार–बार पुकारती रहती हैं, जबकि पत्नी रत्ना जीवन की आस किसी भी परिस्थिति में नहीं छोड़ती। यह अंत जीवन की नश्वरता के साथ–साथ आस्था और आशा के शाश्वत सत्य को भी गहनता से रेखांकित करता है।

4. उपन्यास में निहित जीवन-मूल्य : विस्तृत विश्लेषण :

4.1 मानवीय संवेदना एवं व्यावसायिक कर्तव्यनिष्ठा :

उपन्यास के आरंभिक प्रसंगों में डॉ. अनिल कुमार का चरित्र मानवीय संवेदना और चिकित्सकीय कर्तव्यनिष्ठा के आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। अस्पताल के वार्ड में बेसहारा मरीजों और उनके व्याकुल परिजनों की पीड़ा देखकर उनकी आंखें बार–बार नम हो उठती हैं। यह स्पष्ट करता है कि लेखिका के लिए संवेदनशीलता किसी भी वृत्ति अथवा पेशे की सार्थकता की पहली शर्त है। एक चिकित्सक का अपने मरीजों के प्रति यह गहन भावनात्मक जुड़ाव पाठक के समक्ष सेवा–भाव और करुणा जैसे शाश्वत मूल्यों को सहज ही प्रतिष्ठित कर देता है।

4.2 पारिवारिक मूल्य और वृद्धजनों का मार्गदर्शन :

उपन्यास में दादी/अम्मा का चरित्र पारंपरिक भारतीय पारिवारिक मूल्यों की जीवंत मिसाल के रूप में उभरता है। रोजी के मन में व्याप्त शंका और अविश्वास को शांत करने के लिए वे धैर्य, सकारात्मक चिंतन और आस्था का निरंतर संदेश देती रहती हैं तथा यह समझाने का प्रयास करती हैं कि नकारात्मक विचार स्वयं ही व्यक्ति के जीवन को विषाक्त बना देते हैं। इसी प्रकार, आगे चलकर जब आशु भटकाव के मार्ग पर चला जाता है, तब भी वही दादी उसे संभालने, समझाने और अंततः क्षमा करने का दायित्व निभाती हैं। परिवार का यह वयोवृद्ध चरित्र उपन्यास में स्थायित्व, सहनशीलता और अनुशासन की धुरी के रूप में उभरता है, जो यह संदेश देता है कि पारिवारिक जड़ों से जुड़ाव ही व्यक्ति को जीवन के तूफानों में संतुलन प्रदान करता है।

4.3 स्त्री-मन का द्वंद्व : शंका, असुरक्षा और मनोवैज्ञानिक जटिलता :

रोजी का चरित्र उपन्यास में स्त्री–मनोविज्ञान की एक जटिल एवं यथार्थपरक प्रस्तुति है। सामाजिक विषमता और आंशिक अस्वीकृति के बीच हुए विवाह के कारण उसके मन में गहरी असुरक्षा घर कर जाती है, जो कालांतर में शंका, ईर्ष्या और कटु व्यवहार का रूप ले लेती है। लेखिका ने इस चरित्र–चित्रण के माध्यम से यह प्रश्न भी उठाया है कि सामाजिक असमानता और भावनात्मक असुरक्षा किस प्रकार एक संवेदनशील स्त्री को मानसिक अस्थिरता की ओर धकेल सकती है। यह चित्रण स्त्री के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए भी उसके व्यवहार के दूरगामी पारिवारिक दुष्परिणामों को रेखांकित करता है, जो परोक्ष रूप से पारस्परिक विश्वास और खुले संवाद जैसे मूल्यों के महत्त्व को स्थापित करता है।

4.4 वर्चुअल दुनिया और युवा पीढ़ी का नैतिक क्षरण :

उपन्यास का सर्वाधिक प्रासंगिक एवं मार्मिक पक्ष आशु के माध्यम से चित्रित युवा पीढ़ी की नैतिक यात्रा है। छात्रावास में साथियों के दबाव में आशु धीरे–धीरे अश्लील सामग्री, मद्यपान और साइबर कैफे की दुनिया में प्रवेश करता है। इंटरनेट और मोबाइल के माध्यम से मिलने वाली सतही जानकारी तथा कुंठित वरिष्ठों द्वारा दी गई विषाक्त 'सलाह' उसके मन में स्त्रियों के प्रति अविश्वास और संबंधों के प्रति छद्म व्यावहारिकता भर देती है। लेखिका ने इस प्रसंग के माध्यम से बड़ी बारीकी से यह दिखाया है कि किस प्रकार अधकचरा ज्ञान और अनियंत्रित तकनीकी पहुंच एक संवेदनशील किशोर मन को स्वार्थी, संशयी और चरित्रहीन बना सकती है। छात्रावास में एकाकीपन, अस्तित्व–बोध की उलझन और साथियों द्वारा किया जाने वाला उपहास आशु को भीतर से और अधिक अस्थिर बना देते हैं। यही वह केंद्रीय चिंता प्रतीत होती है, जो संपूर्ण उपन्यास की रचना का मूल प्रयोजन बनती है।

4.5 कुसंगति का दुष्प्रभाव :

उपन्यास में कुसंगति अर्थात बुरी संगति के दुष्परिणामों को अत्यंत यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया गया है। आशु का मित्र आलोक साइबर अपराध और मोबाइल–चोरी के रैकेट में संलिप्त पाया जाता है, जिसके पश्चात उसकी असहाय मां पुलिस के समक्ष यह स्वीकार करने पर विवश हो जाती है कि बुरी संगति ने ही उसके होनहार पुत्र को बिगाड़ दिया। यह भारतीय समाज में प्रचलित इस पारंपरिक मान्यता को पुनः स्थापित करता है कि संगति व्यक्ति के चरित्र–निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है। आशु स्वयं भी इस अपराध–जगत की परिधि में आने से बाल–बाल बच पाता है, जो पाठक के मन में सचेतनता और सतर्कता का भाव जगाता है।

4.6 छल-प्रपंच बनाम सच्चा प्रेम :

आशु और उसकी कई प्रेमिकाओं (अमीषा, रिनी आदि) से जुड़े प्रसंगों के माध्यम से उपन्यास आधुनिक प्रेम–संबंधों में व्याप्त छल, बहुसंबंधी प्रवृत्ति और भावनात्मक शोषण को बेबाकी से उजागर करता है। सीखी–सिखाई चतुराई और मोहक शब्दजाल के सहारे संबंध बनाना तथा एक साथ कई युवतियों को धोखा देना यह प्रवृत्ति समकालीन युवा–संस्कृति में बढ़ती जा रही सतहीपन और प्रामाणिकता के अभाव की ओर संकेत करती है। लेखिका इसके प्रतिकूल परिणामों को उजागर कर परोक्ष रूप से सच्चाई, निष्ठा और पारदर्शिता जैसे मूल्यों की अनिवार्यता को रेखांकित करती हैं।

4.7 सामाजिक असमानता, वर्ग-भेद और पीढ़ीगत पुनरावृत्ति :

उपन्यास का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आयाम सामाजिक वर्ग–भेद और उससे उपजे पारिवारिक द्वंद्व का है। डॉ. अनिल कुमार और रोजी के विवाह को परिवार एवं समाज सहज स्वीकृति नहीं देते, क्योंकि यह संबंध पारंपरिक सामाजिक ढांचे और अपेक्षाओं के विपरीत होता है। रिश्तेदारों और परिचितों के कटु प्रश्न तथा संदेह इस बात के प्रतीक हैं कि समाज आज भी असमान पृष्ठभूमि के विवाहों को पूर्ण मन से स्वीकार करने में संकोच करता है। रोचक बात यह है कि वर्षों बाद जब आशु के विवाह का प्रसंग आता है, तो परिवार में लगभग वही प्रश्न, वही आशंकाएं और वही विरोध पुनः सिर उठाते प्रतीत होते हैं, मानो इतिहास स्वयं को दोहरा रहा हो। इस पीढ़ीगत पुनरावृत्ति के माध्यम से लेखिका यह सूक्ष्म किंतु सशक्त संदेश देती हैं कि सामाजिक पूर्वाग्रह पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं, जब तक कि परिवार सचेत रूप से इनसे मुक्त होने का प्रयास न करे।

4.8 अपराध-बोध, पश्चाताप और मूल्यों की पुनर्वापसी :

उपन्यास का सर्वाधिक आशावादी पक्ष आशु के हृदय–परिवर्तन में निहित है। भटकाव के चरम पर पहुंचकर भी जब आशु को अपनी भूलों का एहसास होता है, तो वह दादी से क्षमा–याचना करता है और परिवार की इच्छानुसार जीवन को नई दिशा देने का संकल्प लेता है (गुप्त, पृ. 227)। यह प्रसंग भारतीय संस्कृति में रचे–बसे इस विश्वास को पुष्ट करता है कि चाहे मनुष्य कितना भी भटक जाए, आत्मबोध और पश्चाताप के माध्यम से वह पुनः सही मार्ग पर लौट सकता है। यहीं पर उपन्यास की शीर्षक–भावना भी अत्यंत मुखर हो उठती है– जीवन के 'खाते' में जो भी भूलें दर्ज हो चुकी हैं, उन्हें सुधारने का अवसर अंत तक बना रहता है।

4.9 आस्था, धैर्य और जिजीविषा :

उपन्यास की स्त्री–पात्रकृचाहे वह दादी हों या रत्ना – धैर्य, आस्था और जिजीविषा अर्थात जीने की अदम्य इच्छा की प्रतिमूर्ति के रूप में सामने आती हैं। कथा के अंतिम और अत्यंत मार्मिक प्रसंग में, जब आशु दुर्घटनाग्रस्त होकर मृत्यु–शय्या जैसी स्थिति पर होता है (गुप्त, पृ. 232), तब भी रत्ना आशा का दामन नहीं छोड़ती (गुप्त, पृ. 238)। यह प्रसंग जीवन की सबसे कठिन परिस्थितियों में भी आस्था और सकारात्मकता बनाए रखने के मूल्य को अत्यंत प्रभावी ढंग से स्थापित करता है।

4.10 जीवन की नश्वरता और शीर्षक की सार्थकता :

उपन्यास का अंत जीवन की क्षणभंगुरता और नश्वरता के गहन बोध के साथ होता है। दुर्घटना, अचेतावस्था और दादी की अर्धचेतन मनःस्थिति (गुप्त, पृ. 237–240) के माध्यम से लेखिका यह संदेश देती हैं कि मनुष्य का जीवन सीमित है और इस सीमित समय में सही मूल्यों को आत्मसात करना ही सच्ची उपलब्धि है। 'कुल जमा बीस' शीर्षक इस अर्थ में एक गहन दार्शनिक प्रतीक बनकर उभरता है– मानो जीवन एक ऐसा लेखा–खाता हो, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों, संबंधों और मूल्यों का 'कुल जमा' अंकित होता चले, और अंतिम क्षण में यही जमा–पूंजी उसके जीवन के सही अर्थ को निर्धारित करती है।

5. उपन्यास की समकालीन प्रासंगिकता :

वर्तमान डिजिटल युग में, जब किशोर एवं युवा पीढ़ी सोशल मीडिया, मोबाइल और इंटरनेट की अबाध पहुंच के बीच बड़ी हो रही है, 'कुल जमा बीस' जैसी कृतियां विशेष महत्त्व रखती हैं। यह उपन्यास अभिभावकों, शिक्षकों और स्वयं युवाओं के समक्ष यह प्रश्न रखता है कि तकनीकी प्रगति के साथ–साथ मूल्य–शिक्षा को किस प्रकार जीवंत रखा जाए। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उपन्यास किसी उपदेशात्मक अथवा आरोपित स्वर में नहीं, बल्कि यथार्थवादी कथा–प्रवाह और विश्वसनीय चरित्र–चित्रण के माध्यम से यह संदेश देता है, जिससे इसकी सम्प्रेषणीयता और प्रभावशीलता कहीं अधिक बढ़ जाती है।

6. निष्कर्ष :

समग्र रूप से देखा जाए तो रजनी गुप्त का उपन्यास 'कुल जमा बीस' पारिवारिक विघटन, कुसंगति, तकनीकी दुष्प्रभाव, सामाजिक वर्ग–भेद और नैतिक भटकाव जैसी समकालीन समस्याओं को गहराई से उकेरते हुए भी अंततः आस्था, पश्चाताप और मूल्यों की पुर्नस्थापना का सशक्त संदेश देने वाला उपन्यास सिद्ध होता है। यह कृति स्पष्ट करती है कि चाहे बाहरी परिस्थितियां कितनी भी विपरीत क्यों न हों, मानवीय संवेदना, पारिवारिक स्नेह, धैर्य और आत्मबोध जैसे शाश्वत मूल्य ही व्यक्ति और समाज को सही दिशा प्रदान कर सकते हैं। इस दृष्टि

से 'कुल जमा बीस' को वर्चुअल दुनिया में भटकती वर्तमान पीढ़ी के लिए एक सार्थक दिशा–सूचक उपन्यास के रूप में देखा जाना चाहिए, जो हिंदी उपन्यास साहित्य में मूल्य–केंद्रित रचनाओं की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाने वाली एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में रेखांकित किए जाने योग्य है।

संदर्भ सूची :

1. गुप्त, रजनी – कुल जमा बीस (उपन्यास), सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012। (मूल कृति, प्रस्तुत शोध–पत्र का आधार–ग्रंथ)
2. गुप्त, रजनी – कहीं कुछ और (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002।
3. गुप्त, रजनी – नए समय का कोरस (उपन्यास), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018।
4. गुप्त, रजनी – कितने कठघरे (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015।
5. गुप्त, रजनी – तिराहे पर तीन (उपन्यास), राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021।
6. हस्ताक्षर – हिंदी साहित्यिक वेब पत्रिका, hastaksher.com

पता : 294, संत नगर, खंडवा नाका, इंदौर (म.प्र.) – 452020

मोबाइल नं. 6265198470

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 51-60

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त : शिल्पगत नवीनता और अभिव्यक्ति के नए क्षितिज

प्रशान्त कुमार शुक्ल

शोधार्थी असिस्टेंट प्रोफेसर, विभाग हिन्दी, आर. पी. पी. जी. कॉलेज कमालगंज, फर्रुखाबाद, उ. प्र.।

डॉ. आलोक विहारी लाल

शोध निर्देशक असिस्टेंट प्रोफेसर, विभाग हिन्दी भारतीय महाविद्यालय, फर्रुखाबाद, उ. प्र.।

सारांश :

मनुष्य और यात्रा का सम्बन्ध उतना ही पुराना है जितना स्वयं मनुष्य का अस्तित्व। जब से उसने अपने घर की देहरी लाँघी, तब से वह केवल स्थान नहीं बदलता – वह अपने भीतर भी कुछ बदलता चलता है। हिन्दी साहित्य में यात्रा–वृत्तान्त इसी बदलाव की जीवन्त अभिव्यक्ति है। राहुल सांकृत्यायन से आरम्भ होकर निर्मल वर्मा और अज्ञेय तक जो परम्परा बनी, वह आज समकालीन लेखन में एक नए रूप में साँस ले रही है। समकालीन हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त अब केवल किसी स्थान का भौगोलिक विवरण नहीं रहा। वह इतिहास, संस्कृति, राजनीति, पर्यावरण और मनुष्य के आन्तरिक संघर्ष को एक साथ अपने भीतर समेटने लगा है। शिल्प के स्तर पर भी इस विधा ने जो नवीनता अर्जित की है, वह उल्लेखनीय है – विधा–संकरण, अरेखीय आख्यान, अन्तर्पाठीयता, बहुस्वरता और भाषिक प्रयोगशीलता ने इसे एक नई पहचान दी है।

स्त्री–यात्रा–लेखन का उभार, पर्यावरण–चेतना, उत्तर–औपनिवेशिक दृष्टि और हाशिये की आवाजें – ये सब मिलकर इस विधा को अभिव्यक्ति के सर्वथा नए क्षितिजों तक ले जा रहे हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र इन्हीं परिवर्तनों को रेखांकित करने का एक विनम्र प्रयास है। यह दिखाने की कोशिश है कि यात्रा–वृत्तान्त जैसी विधा 'जिसे कभी गौण माना जाता था' आज हिन्दी साहित्य की सबसे जीवन्त और संभावनाशील विधाओं में से एक बन चुकी है।

बीज शब्द : यात्रा–वृत्तान्त, शिल्पगत नवीनता, समकालीन हिन्दी, विधा–संकरण, स्त्री–यात्रा–लेखन, पर्यावरण–चेतना, अन्तर्पाठीयता, बहुस्वरता।

1. प्रस्तावना :

कोई भी यात्रा केवल पैरों से नहीं होती 'वह मन से, स्मृति से, जिज्ञासा से और कभी–कभी बेचैनी से भी होती है। जब कोई लेखक घर से निकलता है, तो वह अपने साथ केवल बस्ता नहीं उठाता' अपनी भाषा, अपनी संवेदना और अपना समय भी साथ ले जाता है। यही कारण है कि यात्रा–वृत्तान्त को साहित्य की किसी भी अन्य विधा से अलग नहीं किया जा सकता। वह उपन्यास जितना कथात्मक हो सकता है, निबन्ध जितना विचारशील और कविता जितना भावप्रवण। हिन्दी में यात्रा–साहित्य की एक गौरवशाली परम्परा रही है।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने जब तिब्बत, श्रीलंका, रूस और यूरोप की यात्राएँ कीं और उन्हें शब्दों में उतारा, तो हिन्दी पाठक को पहली बार अनुभव हुआ कि यात्रा–वृत्तान्त भी साहित्य की उसी ऊँचाई पर खड़ा हो सकता है जहाँ कविता और कहानी खड़ी होती है। फिर अज्ञेय की संवेदनशील भाषा आई, निर्मल वर्मा का काव्यात्मक गद्य आया और मोहन राकेश की बेचैन दृष्टि आई – इन सबने मिलकर हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त को एक समृद्ध परम्परा दी। किन्तु परम्परा कभी स्थिर नहीं रहती। समय बदलता है, दुनिया बदलती है और उसके साथ लेखक की दृष्टि भी बदलती है। समकालीन युग में वैश्वीकरण, डिजिटल क्रान्ति, पर्यावरणीय संकट और सामाजिक जागरण ने यात्रा–वृत्तान्त को नई चुनौतियाँ भी दीं और नई सम्भावनाएँ भी। आज का यात्रा–लेखक जब किसी पहाड़ पर चढ़ता है, तो वह केवल सौन्दर्य नहीं देखता – वह ग्लेशियरों के पिघलने की त्रासदी भी देखता है। जब वह किसी गाँव में जाता है, तो वह मेहमाननवाजी के साथ–साथ पलायन की पीड़ा भी महसूस करता है। समकालीन यात्रा–वृत्तान्त की शिल्पगत नवीनताओं और अभिव्यक्ति की नई सम्भावनाओं का विश्लेषण करने का प्रयास है – इस विश्वास के साथ कि यह विधा आज भी उतनी ही जरूरी है जितनी राहुल जी के जमाने में थी, बल्कि शायद उससे भी अधिक।

2. यात्रा-वृत्तान्त : स्वरूप और परिभाषा :

यात्रा–वृत्तान्त को परिभाषित करना उतना सरल नहीं जितना प्रतीत होता है। यह विधा अपनी प्रकृति में ही बहुआयामी और लचीली है। डॉ. कुसुम खेमानी के अनुसार – 'यात्रा–वृत्तान्त वह विधा है जिसमें लेखक अपनी यात्रा के माध्यम से एक विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक और मानसिक अनुभव को पाठक तक सम्प्रेषित करता है।' इसमें तथ्य और कल्पना, वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता, वर्णन और विश्लेषण – सभी का समन्वय होता है।

परम्परागत रूप से यात्रा-वृत्तान्त के तीन मूलभूत तत्त्व माने जाते हैं :

- **प्रथम, स्थान** – यात्रा का गन्तव्य और उसका भौगोलिक–सांस्कृतिक परिवेश।
- **द्वितीय, यात्री** – लेखक की उपस्थिति, उसकी दृष्टि और उसका व्यक्तित्व।
- **तृतीय, आख्यान** – अनुभव को प्रस्तुत करने का तरीका।

किन्तु समकालीन यात्रा–लेखन में ये तत्त्व पारम्परिक सीमाओं को तोड़ते हुए नई संरचनाएँ निर्मित करते हैं।

3. हिन्दी यात्रा-वृत्तान्त की विकास-परम्परा :

किसी भी साहित्यिक विधा को समझने के लिए उसकी जड़ों तक जाना जरूरी होता है। हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त की यात्रा भी एक लम्बे और रोचक रास्ते से गुजरी है। यह विधा एकाएक नहीं बनी 'इसने अपना रूप धीरे–धीरे गढ़ा, परम्परा से सीखा और समय के साथ बदलती रही। इस विकास–यात्रा को समझे बिना समकालीन यात्रा–वृत्तान्त की नवीनता को पूरी तरह नहीं पहचाना जा सकता। जो नया है, वह हमेशा पुराने की जमीन पर खड़ा होता है' कभी उसे आगे बढ़ाते हुए, कभी उससे विद्रोह करते हुए।

3.1 आरम्भिक काल (1900–1930)

बीसवीं सदी के आरम्भ में हिन्दी यात्रा–लेखन अभी अपनी पहचान बना रहा था। यह वह समय था जब देश अंग्रेजी शासन की छाया में साँस ले रहा था और हिन्दी गद्य स्वयं अपनी भाषा और शैली की तलाश में था।

इस काल में यात्रा–विवरण प्रायः धार्मिक तीर्थाटन, प्रशासनिक दौरों अथवा समाज–सुधार की यात्राओं से जुड़े हुए थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लेखन में यात्रा के प्रसंग मिलते हैं जहाँ वे सामाजिक विडम्बनाओं पर तीखी नजर डालते हैं। बालमुकुन्द गुप्त और प्रताप नारायण मिश्र के निबन्धों में भी यात्रा–अनुभवों की झलक मिलती है।

किन्तु इस काल की एक सीमा थी 'यात्रा–विवरण प्रायः किसी बड़े लेखन का हिस्सा होते थे, स्वतन्त्र विधा के रूप में नहीं। लेखक स्थान का वर्णन करता था, किन्तु उसमें अपनी आत्मा नहीं उँडेलता था। दृष्टि वस्तुनिष्ठ थी, भावनात्मक गहराई सीमित थी। फिर भी इस काल ने वह जमीन तैयार की जिस पर आगे की इमारत खड़ी होनी थी। यात्रा को लिखने योग्य विषय मानने की शुरुआत यहीं से हुई' यही इस काल की सबसे बड़ी देन है।

3.2 राहुल–युग (1930–1950)

हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त के इतिहास में यदि कोई एक नाम सबसे ऊँचा है, तो वह महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का है। उन्होंने न केवल यात्राएँ कीं, बल्कि यात्रा को एक जीवन–दर्शन बनाया। तिब्बत, श्रीलंका, रूस, ईरान, यूरोप – कहाँ नहीं गए वे? और जहाँ भी गए, वहाँ से लौटकर ऐसा लिखा कि पाठक को लगे जैसे वह स्वयं वहाँ हो आया। 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'किन्नर देश में', 'यूरोप यात्रा', 'रूस में पच्चीस मास' – ये केवल यात्रा–पुस्तकें नहीं हैं, ये ज्ञान, साहस और मानवीय जिज्ञासा के महाकोश हैं। राहुल जी की भाषा सरल थी किन्तु उनकी दृष्टि असाधारण। वे जहाँ जाते, वहाँ के इतिहास, भाषा, संस्कृति, धर्म और राजनीति – सब को एक साथ देखते और लिखते। राहुल जी ने यह सिद्ध किया कि यात्रा–वृत्तान्त उपन्यास या कविता से किसी भी तरह कमतर नहीं है। उन्होंने 'घुमक्कड़–शास्त्र' जैसी पुस्तक लिखकर यात्रा को एक दर्शन का दर्जा दिया। इस युग में यात्रा–वृत्तान्त हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा में आया और उसने अपनी एक स्वतन्त्र पहचान बनाई।

3.3 आधुनिक काल (1950–1980)

स्वतन्त्रता के बाद के भारत में एक नई चेतना जागी। देश के नागरिक अब केवल भारत को नहीं, पूरी दुनिया को देखना–समझना चाहते थे। इसी माहौल में हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त का अगला अध्याय लिखा गया। इस काल के लेखकों ने यात्रा को केवल सूचना का माध्यम नहीं रखा – वे उसे आत्मान्वेषण का साधन बनाने लगे। निर्मल वर्मा की 'चीड़ों पर चाँदनी' और 'हर बारिश में' पढ़ते हुए पाठक को लगता है जैसे भाषा स्वयं यात्रा कर रही है। उनका गद्य इतना काव्यात्मक है कि दृश्य आँखों के सामने जीवन्त हो उठता है। अज्ञेय ने यात्रा–लेखन में बौद्धिकता और सौन्दर्यबोध का अनूठा संयोग किया। मोहन राकेश की यात्राओं में एक बेचैनी है – वे स्थान खोजते–खोजते असल में अपने आप को खोजते हैं। इस काल में यात्रा–वृत्तान्त ने परिपक्वता प्राप्त की। भाषा परिष्कृत हुई, दृष्टि गहरी हुई और विषय–वस्तु का विस्तार हुआ। यात्रा अब केवल बाहर की नहीं, भीतर की भी होने लगी। यह वह काल था जब इस विधा ने अपनी आत्मा खोजी।

3.4 समकालीन काल (1980 के बाद से अब तक)

1980 के बाद का भारत तेजी से बदला। उदारीकरण, वैश्वीकरण, डिजिटल क्रान्ति और सामाजिक आन्दोलनों ने मिलकर एक ऐसा परिवेश बनाया जिसमें यात्रा–वृत्तान्त को भी नए रूप में ढलना पड़ा। अब यात्रा करना पहले से आसान हो गया – किन्तु यात्रा–अनुभव की जटिलता और गहराई पहले से अधिक हो गई। इस

काल में अनिल यादव, ओम थानवी, नासिरा शर्मा और अनेक नए लेखकों ने यात्रा–वृत्तान्त को नई दिशा दी। अनिल यादव का 'वह भी कोई देस है महाराज' उत्तर–पूर्व भारत की वह तस्वीर दिखाता है जो मुख्यधारा के मीडिया में कभी नहीं आती। ओम थानवी का 'मुअनजो–दड़ो' पुरातत्त्व और संवेदना का अद्‌भुत मेल है। इस काल की यात्रा–लेखन की सबसे बड़ी विशेषता है – उसकी बहुलता। अब एक तरह का यात्रा–लेखन नहीं है। स्त्रियाँ लिख रही हैं, दलित लिख रहे हैं, पत्रकार लिख रहे हैं, ब्लॉगर लिख रहे हैं। यह बहुलता इस विधा की जीवन्तता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

4. समकालीन हिन्दी यात्रा-वृत्तान्त की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

जब हम समकालीन हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त को ध्यान से पढ़ते हैं, तो कुछ धाराएँ बार–बार दिखाई देती हैं। ये धाराएँ उस समय की, उस समाज की और उस लेखक की मनःस्थिति की उपज हैं। ये प्रवृत्तियाँ न केवल इस विधा की दिशा बताती हैं, बल्कि यह भी बताती हैं कि हमारा समाज किन प्रश्नों से जूझ रहा है और साहित्य उन प्रश्नों से कैसे मुठभेड़ करता है :–

4.1 आत्मकथात्मकता और आत्मान्वेषण :

समकालीन यात्रा–वृत्तान्त में सबसे बड़ा बदलाव यह आया है कि लेखक का 'स्व' अब केन्द्र में आ गया है। पहले यात्री स्थान को देखता था, अब वह स्थान के माध्यम से स्वयं को देखता है। यात्रा अब केवल बाहर की नहीं, भीतर की भी है 'और कभी–कभी तो यह भीतरी यात्रा बाहरी यात्रा से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। जब कोई लेखक अपने पुराने गाँव लौटता है, तो वह केवल उस गाँव का विवरण नहीं देता' वह अपने बचपन को, अपनी जड़ों को और उन सवालों को भी सामने रखता है जो वर्षों से उसके भीतर दबे थे। इस प्रकार यात्रा–वृत्तान्त एक प्रकार की आत्मकथा बन जाता है 'जिसमें स्थान और व्यक्ति दोनों एक–दूसरे को परिभाषित करते हैं। निर्मल वर्मा ने इस शैली को जो गहराई दी, वह आज के लेखकों के लिए प्रेरणा बनी है। उनके लेखन में यूरोप के शहर केवल शहर नहीं हैं' वे एक एकाकी मन के आईने हैं। यही प्रवृत्ति समकालीन लेखन में और भी प्रखर हुई है। आत्मकथात्मकता ने यात्रा–वृत्तान्त को मानवीय और विश्वसनीय बनाया है 'पाठक जब पढ़ता है, तो उसे लगता है कि यह केवल किसी और की यात्रा नहीं, कहीं न कहीं उसकी अपनी भी यात्रा है।

4.2 स्त्री यात्रा-लेखन का उभार :

समकालीन हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त में सबसे क्रान्तिकारी परिवर्तन है – स्त्री का यात्री बनना। यह केवल साहित्यिक घटना नहीं, एक सामाजिक घटना भी है। जब स्त्री स्वयं निकलती है 'अकेले, अपनी शर्तों पर, अपनी दृष्टि से' तो उसकी यात्रा का अर्थ बदल जाता है। वह न केवल स्थान देखती है, बल्कि उन संरचनाओं को भी देखती है जो उसे हर जगह घेरती हैं। नासिरा शर्मा जब ईरान और अफगानिस्तान की यात्रा करती हैं, तो वे वहाँ की स्त्रियों की आँखों से उस दुनिया को देखती हैं। उनका लेखन बताता है कि एक ही स्थान पुरुष और स्त्री को कितने अलग–अलग रूप में दिखता है। प्रभा खेतान और मैत्रेयी पुष्पा के यात्रा–विवरणों में यही स्त्री–दृष्टि अपनी पूरी शक्ति के साथ उपस्थित है। स्त्री यात्रा–लेखन ने यह सिद्ध किया कि यात्रा करना और उसे लिखना केवल पुरुष का अधिकार नहीं है। एकल यात्री के रूप में स्त्री की यात्रा अपने–आप में एक प्रतिरोध है – उन सामाजिक वर्जनाओं के विरुद्ध जो उसे घर की चारदीवारी तक सीमित रखना चाहती हैं। यह

लेखन इसीलिए इतना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें यात्रा और स्वतन्त्रता एक–दूसरे के पर्याय बन जाते हैं।

4.3 पर्यावरण–चेतना और पारिस्थितिक संवेदना :

कुछ दशक पहले तक जब कोई लेखक हिमालय जाता था, तो वह उसकी ऊँचाई, उसकी सुन्दरता और उसकी रहस्यमयता का वर्णन करता था। आज भी वह यही करता है – किन्तु अब वह यह भी लिखता है कि वह ग्लेशियर जो पिछली बार था, अब नहीं है। वह नदी जो कभी जीवन्त थी, अब मैली और सिकुड़ी हुई है। यही पर्यावरण–चेतना समकालीन यात्रा–वृत्तान्त की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति बन गई है। आज का यात्रा–लेखक जानता है कि प्रकृति केवल सौन्दर्य का विषय नहीं है 'वह एक संकट में है और उस संकट का जिम्मेदार कहीं न कहीं हम स्वयं भी हैं। इसलिए जब वह किसी वन में जाता है और वहाँ पेड़ों की कटाई देखता है, जब वह किसी नदी के किनारे बैठता है और उसमें फैक्टरियों का कचरा देखता है, तो वह चुप नहीं रहता। यह पारिस्थितिक संवेदना यात्रा–वृत्तान्त को एक नैतिक आयाम देती है। लेखक अब केवल यात्री नहीं, एक साक्षी भी है' उस विनाश का साक्षी जो हमारी आँखों के सामने हो रहा है। यह चेतना यात्रा–वृत्तान्त को साहित्य की सीमाओं से निकालकर एक जरूरी सामाजिक दस्तावेज बना देती है।

4.4 राजनीतिक और सांस्कृतिक आलोचना :

समकालीन यात्रा–वृत्तान्त राजनीतिक रूप से पहले से कहीं अधिक सजग है। जब कोई लेखक कश्मीर जाता है, उत्तर–पूर्व भारत जाता है, बस्तर जाता है या किसी विदेशी भूमि पर कदम रखता है 'तो वह केवल भूगोल नहीं देखता, वह वहाँ की राजनीति, सत्ता की प्रक्रियाएँ और आम आदमी की जिन्दगी भी देखता है। अनिल यादव का 'वह भी कोई देस है महाराज' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। उत्तर–पूर्व भारत की यात्रा करते हुए वे वहाँ के विद्रोह, सेना की उपस्थिति, आदिवासी समुदायों के संघर्ष और राज्य की क्रूरता को इतनी बेबाकी से लिखते हैं कि पाठक असहज हो जाता है और यही असहजता इस लेखन की सफलता है।

यात्रा–वृत्तान्त में यह राजनीतिक आलोचना इसलिए प्रभावी होती है क्योंकि वह अमूर्त नहीं होती। लेखक जो देखता है, जिनसे मिलता है, जो सुनता है 'वह सब इतना ठोस और जीवन्त होता है कि पाठक उसे नकार नहीं सकता। साथ ही यात्रा–वृत्तान्त सांस्कृतिक विविधता का भी उत्सव मनाता है' वह दिखाता है कि भारत एक नहीं, अनेक है और यही अनेकता उसकी शक्ति है।

4.5 डिजिटल और ब्लॉग यात्रा–लेखन :

इक्कीसवीं सदी ने यात्रा–लेखन को वह जगह दी जो पहले कभी नहीं मिली थी 'इन्टरनेट की असीमित दुनिया। अब यात्रा–वृत्तान्त लिखने के लिए किसी प्रकाशक का इन्तजार नहीं करना पड़ता। कोई भी व्यक्ति यात्रा कर सकता है, लिख सकता है और पल भर में लाखों पाठकों तक पहुँच सकता है। ब्लॉग, सोशल मीडिया और यूट्यूब ने यात्रा–लेखन को जनतान्त्रिक बना दिया है। इस डिजिटल यात्रा–लेखन की सबसे बड़ी शक्ति है – उसकी तात्कालिकता और विविधता। वे आवाजें जो कभी प्रकाशन की दुनिया में जगह नहीं पा सकती थीं, आज डिजिटल माध्यमों से पाठकों तक पहुँच रही हैं। एक युवा पहाड़ी छात्र जो अपनी घाटी के बारे में लिखता है, एक दलित यात्री जो अपने अनुभव साझा करता है 'ये सब डिजिटल यात्रा–लेखन की देन हैं। किन्तु इसकी सीमाएँ भी हैं। अनेक ब्लॉग सतही हैं, उपभोक्तावादी हैं और भाषायी दृष्टि से कमजोर हैं। फिर भी, इस माध्यम

को नकारना उचित नहीं। आज के कुछ श्रेष्ठ हिन्दी ब्लॉग यात्रा–वृत्तान्त की उस परम्परा को डिजिटल युग में आगे ले जा रहे हैं जो राहुल सांकृत्यायन ने शुरू की थी' बस माध्यम बदला है, जिज्ञासा वही है।

5. शिल्पगत नवीनता : विश्लेषण :

5.1 विधा-संकरण :

समकालीन यात्रा–वृत्तान्त की सबसे उल्लेखनीय शिल्पगत विशेषता है – विधाओं का परस्पर मिश्रण। आज का यात्रा–वृत्तान्त केवल एक विधा नहीं रहाय वह एक साथ आत्मकथा, डायरी, इतिहास, उपन्यास, कविता और निबन्ध का समुच्चय बन गया है। निर्मल वर्मा के यात्रा–वृत्तान्त इसके आरम्भिक उदाहरण हैं, जहाँ कथात्मकता और दार्शनिक चिन्तन का अद्‌भुत समन्वय है। अनिल यादव की 'वह भी कोई देस है महाराज' में यात्रा, पत्रकारिता और उपन्यास के तत्त्व इस प्रकार घुल–मिल गए हैं कि उन्हें अलग करना कठिन है। यह विधा–संकरण एक साहित्यिक रणनीति के रूप में कार्य करता है। इससे लेखक अपने अनुभवों को अधिक समग्रता से प्रस्तुत कर सकता है और पाठक को बहुस्तरीय पठन–अनुभव प्राप्त होता है।

5.2 खण्डित और अरेखीय आख्यान :

परम्परागत यात्रा–वृत्तान्त की संरचना प्रायः रेखीय होती थी 'प्रस्थान, यात्रा, आगमन, वर्णन, वापसी। किन्तु समकालीन लेखन ने इस संरचना को तोड़ा है। फ्लैशबैक, स्मृति–खण्ड, काल्पनिक प्रसंग और वर्तमान–भूत–भविष्य के बीच आवागमन अब यात्रा–वृत्तान्त की सामान्य विशेषता बन गई है। यह अरेखीयता आधुनिक मनुष्य की चेतना की अरेखीयता का प्रतिबिम्ब है। जब कोई लेखक राजस्थान के किसी गाँव में बैठकर अचानक अपने बचपन की किसी स्मृति में चला जाता है और फिर उस स्मृति से वर्तमान यात्रा को जोड़ता है' तो यह शिल्प–प्रयोग पाठक को एक विशेष प्रकार का सौन्दर्यबोध प्रदान करता है।

5.3 अन्तर्पाठीयता :

समकालीन यात्रा–वृत्तान्त में अन्य ग्रन्थों, काव्य–पंक्तियों, मिथकों, लोककथाओं और इतिहास–ग्रन्थों के सन्दर्भ बहुतायत से आते हैं। लेखक जब किसी स्थान पर पहुँचता है, तो वह उससे जुड़े साहित्यिक, ऐतिहासिक और पौराणिक सन्दर्भों को भी अपने आख्यान में बुनता है। यह अन्तर्पाठीयता यात्रा–वृत्तान्त को एक बहुस्तरीय बनावट प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, जब कोई लेखक काशी की यात्रा करता है तो वह तुलसीदास, कबीर, प्रेमचन्द, भारतेन्दु और हजारीप्रसाद द्विवेदी के माध्यम से भी काशी को देखता है। यह बहुलायित दृष्टि यात्रा–वृत्तान्त को साहित्यिक गहराई प्रदान करती है।

5.4 बहुस्वरता :

समकालीन यात्रा–वृत्तान्त में अब केवल लेखक की एकमात्र आवाज नहीं सुनाई देती। स्थानीय लोगों की आवाजें, उनकी कहानियाँ, उनके दुःख–सुख और उनके संघर्ष भी कथा में समाहित होते हैं। यह बहुस्वरता यात्रा–वृत्तान्त को एक लोकतान्त्रिक स्वरूप देती है। लेखक अपने को केन्द्र में रखते हुए भी अन्य आवाजों को समुचित स्थान देता है। यह बदलाव उस औपनिवेशिक दृष्टि की आलोचना भी है, जिसमें यात्री सदा 'अन्य' को एक वस्तु की तरह देखता था। समकालीन लेखक 'अन्य' को सुनता है, उसके साथ संवाद करता है और उसकी सत्ता को स्वीकार करता है।

5.5 भाषिक प्रयोगशीलता :

भाषा के स्तर पर भी समकालीन यात्रा–वृत्तान्त ने नवीन प्रयोग किए हैं। स्थानीय बोलियों, अंग्रेजी शब्दों, देशज मुहावरों और आंचलिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग पाठ को जीवन्त और प्रामाणिक बनाता है। यह बहुभाषिक रंग यात्रा के अनुभव की विविधता को अभिव्यक्त करने का सटीक माध्यम है। कुछ लेखकों ने काव्यात्मक गद्य का प्रयोग किया है जिसमें लय, बिम्ब और प्रतीक की प्रधानता होती है। निर्मल वर्मा की गद्य–शैली इसका सर्वोत्तम उदाहरण है जहाँ एक–एक वाक्य अपने आप में एक काव्य–अनुभव बन जाता है।

5.6 छोटे-बड़े खण्डों की संरचना :

समकालीन यात्रा–वृत्तान्त में एकात्म लम्बे आख्यान की जगह छोटे–छोटे खण्डों या प्रकरणों की संरचना आई है। ये खण्ड अपने में पूर्ण भी होते हैं और एक बड़े आख्यान के अंग भी। इस संरचना ने यात्रा–वृत्तान्त को अधिक सुपाठ्य और आधुनिक संवेदना के अनुरूप बनाया है।

6. अभिव्यक्ति के नए क्षितिज :

6.1 उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टि :

जब कोई समकालीन भारतीय लेखक यूरोप या अमेरिका की यात्रा करता है, तो उसकी दृष्टि न उपनिवेशवादी श्रेष्ठता–बोध से ग्रस्त होती है, न हीनभावना से। वह एक स्वतन्त्र, आत्मविश्वासी और आलोचनात्मक दृष्टि से पश्चिम को देखता है। यह उत्तर–औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य हिन्दी यात्रा–लेखन को एक नई वैचारिक ऊर्जा प्रदान करता है। इसी प्रकार जब कोई लेखक भारत के हाशिये पर स्थित क्षेत्रों 'दण्डकारण्य, बुन्देलखण्ड, उत्तर–पूर्व भारत, लक्षद्वीप' की यात्रा करता है, तो वह इन क्षेत्रों को केन्द्र की दृष्टि से नहीं, बल्कि उनकी अपनी सत्ता और स्वायत्तता के साथ प्रस्तुत करता है।

6.2 आध्यात्मिक और दार्शनिक अन्वेषण :

यात्रा का आध्यात्मिक आयाम समकालीन लेखन में नए रूप में उपस्थित है। यह आध्यात्मिकता परम्परागत धार्मिक तीर्थाटन से भिन्न है। अब लेखक स्थानों में अर्थ खोजता है, प्रकृति में दार्शनिक सत्य देखता है और यात्रा को एक आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में अनुभव करता है। यह भाव उपनिषदों की 'आत्म–यात्रा' की परम्परा से जुड़ता है, किन्तु एक आधुनिक और सेकुलर रूप में।

6.3 हाशिये की आवाजें :

समकालीन यात्रा–वृत्तान्त अब उन क्षेत्रों और समुदायों तक भी पहुँच रहा है जो अब तक उपेक्षित रहे थे। दलित यात्रा–लेखन, आदिवासी क्षेत्रों का लेखन और अल्पसंख्यक समुदायों की यात्राएँ अभिव्यक्ति के नए क्षितिज खोल रही हैं। ये आवाजें सिद्ध करती हैं कि यात्रा करने का अधिकार और उसे लिखने की क्षमता अब केवल सुविधा सम्पन्न वर्ग तक सीमित नहीं है।

6.4 स्मृति, स्थान और पहचान :

स्मृति और स्थान के सम्बन्ध की खोज समकालीन यात्रा–वृत्तान्त का एक महत्त्वपूर्ण नया आयाम है। जब लेखक किसी ऐसे स्थान पर जाता है जहाँ उसने बचपन बिताया था, या जो उसके पूर्वजों से जुड़ा है, तो वह स्थान केवल भौगोलिक इकाई नहीं रहताय वह स्मृतियों, भावनाओं और पहचान का संग्रहागार बन जाता है। यह

'भावनात्मक भूगोल' समकालीन यात्रा–लेखन की एक विशिष्ट देन है।

6.5 वैश्विक और स्थानीय का द्वन्द्व :

वैश्वीकरण के युग में स्थानीयता और वैश्विकता के बीच का तनाव यात्रा–वृत्तान्त में नए रूप में उपस्थित होता है। जब लेखक किसी दूरदराज गाँव में कोका–कोला की बोतल देखता है या हिमालय की किसी घाटी में मोबाइल टॉवर, तो वह वैश्वीकरण की शक्ति और उसके विरोधाभासों को एक साथ अनुभव करता है। यह द्वन्द्व आधुनिक यात्रा–साहित्य की महत्त्वपूर्ण विषय–वस्तु बन गया है।

7. प्रमुख समकालीन यात्रा-वृत्तान्तकार और उनकी रचनाएँ :

7.1 अनिल यादव :

अनिल यादव का 'वह भी कोई देस है महाराज' (2012) समकालीन हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त की एक मील का पत्थर रचना है। उत्तर–पूर्व भारत की यात्रा पर आधारित यह पुस्तक पत्रकारिता, यात्रा–लेखन और उपन्यास का दुर्लभ संगम है। लेखक वहाँ के विद्रोही समुदायों, सेना के अत्याचारों, प्राकृतिक सौन्दर्य और आदिवासी संस्कृति को इस प्रकार एक साथ उपस्थित करता है कि पाठक एक सर्वथा नई दुनिया में प्रवेश करता है।

7.2 नासिरा शर्मा :

नासिरा शर्मा के यात्रा–वृत्तान्त 'विशेषतः ईरान और अफगानिस्तान पर केन्द्रित उनके लेखन' में एक स्त्री की दृष्टि, एक इस्लाम की सूक्ष्म जानकार की दृष्टि और एक संवेदनशील साहित्यकार की दृष्टि का अद्‌भुत मेल है। वे इस्लामी दुनिया को भारतीय पाठकों के सामने जीवन्त और त्रिआयामी रूप में प्रस्तुत करती हैं।

7.3 विमल मिश्र :

विमल मिश्र के यात्रा–वृत्तान्तों में देशज संस्कृति, लोक–परम्परा और आंचलिक जीवन की समृद्ध तस्वीर उभरती है। उनका लेखन भाषिक प्रयोगशीलता और स्थानीय रंग के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

7.4 पंकज सिंह और सुधीर विद्यार्थी :

इन दोनों लेखकों के यात्रा–विवरण राजनीतिक सजगता और सामाजिक आलोचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके लेखन में यात्रा एक सामाजिक–राजनीतिक अन्वेषण बन जाती है।

7.5 कुछ अन्य उल्लेखनीय नाम :

ओम थानवी का 'मुअनजो–दड़ो', पुण्यप्रसून वाजपेयी का पत्रकारीय यात्रा–लेखन, कृष्ण बलदेव वैद और कृष्णा सोबती की डायरी–नुमा यात्रा–टिप्पणियाँ, तथा शिवप्रसाद सिंह के तीर्थ–यात्रा वृत्तान्त – ये सभी समकालीन हिन्दी यात्रा–साहित्य की विविधता को रेखांकित करते हैं।

8. चुनौतियाँ और सीमाएँ :

8.1 व्यावसायिकता का दबाव :

डिजिटल युग में यात्रा–लेखन तेजी से एक व्यावसायिक उत्पाद में बदल रहा है। पर्यटन कम्पनियाँ, होटल श्रृंखलाएँ और एयरलाइन्स प्रायोजित यात्राओं का आयोजन करती हैं और लेखक से अनुकूल विवरण की अपेक्षा रखती हैं। यह प्रवृत्ति यात्रा–लेखन की आलोचनात्मक दृष्टि को कुण्ठित कर सकती है।

8.2 सतहीपन का खतरा :

सोशल मीडिया पर यात्रा–लेखन के लोकप्रिय होने से सतही, तस्वीर–केन्द्रित और उपभोक्तावादी यात्रा–आख्यान की बाढ़ आ गई है। 'देखा, खाया, फोटो खींची और चले गए' – यह मानसिकता गहरे यात्रा–अनुभव को बाधित करती है।

8.3 पाठक-वर्ग की सीमा :

हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त का पाठक–वर्ग अभी भी अपेक्षाकृत सीमित है। इस विधा को अभी भी वह लोकप्रियता नहीं मिली जो उपन्यास या कविता को प्राप्त है। प्रकाशकों की उदासीनता और पाठकों की विधा–विशेष की रुचि का अभाव इस विधा के विकास में बाधा है।

9. निष्कर्ष :

समकालीन हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त एक जीवन्त, विकासमान और बहुआयामी विधा के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। शिल्प के स्तर पर विधा–संकरण, अरेखीय आख्यान, अन्तर्पाठीयता और भाषिक प्रयोगशीलता ने इसे एक नई ऊर्जा दी है। विषय–वस्तु के स्तर पर स्त्री–यात्रा–लेखन, पर्यावरण–चेतना, उत्तर–औपनिवेशिक दृष्टि और हाशिये की आवाजों को स्थान मिलने से यह विधा अभिव्यक्ति के सर्वथा नए क्षितिजों तक पहुँच रही है। यात्रा–वृत्तान्त का यह समकालीन स्वरूप इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी साहित्य की यह विधा केवल परम्परा का निर्वाह नहीं कर रही, बल्कि अपने समय के प्रश्नों से टकरा रही है, नई संरचनाएँ निर्मित कर रही है और भविष्य की सम्भावनाओं को खोल रही है। आवश्यकता इस बात की है कि आलोचना–जगत इस विधा पर अधिक ध्यान दे और उसके समुचित मूल्यांकन के लिए नए मानदण्ड विकसित करे।

अन्त में, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का वह कथन स्मरणीय है जिसमें उन्होंने कहा था – 'जिसे घुमक्कड़ी का रोग लग जाए, वह साहित्यकार हो जाता है।' समकालीन हिन्दी यात्रा–वृत्तान्त सिद्ध करता है कि यह 'रोग' आज भी हिन्दी–मानस में जीवित और सक्रिय है – और इस रोग से ही साहित्य का सर्वश्रेष्ठ सृजन होता है।

सन्दर्भ-सूची :

1. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद?, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण 1953)
2. अज्ञेय, एक बूँद सहसा उछली, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण 1960)
3. अनिल यादव, वह भी कोई देस है महराज, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद (2012)
4. अनुराधा बेनीवाल, आजादी मेरा ब्रांड, सार्थक (राजकमल प्रकाशन), नई दिल्ली (2016)
5. अनुराधा बेनीवाल, लोग जो मुझमें रह गए, सार्थक (राजकमल प्रकाशन), नई दिल्ली (2020)
6. अमृतलाल वेगड़, सौन्दर्य की नदी नर्मदा, (प्रथम संस्करण 1992)
7. असगर वजाहत, चलते तो अच्छा था, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. अजय सोडानी, दरकते हिमालय पर दर–ब–दर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

9. ओम थानवी, मुअनजोदड़ो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2011)
10. कृष्णनाथ, स्पीति में बारिश।
11. कृष्णनाथ, लद्दाख में राग–विराग।
12. निर्मल वर्मा, चीड़ों पर चाँदनी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण 1963)
13. निर्मल वर्मा, हर बारिश में, (प्रथम संस्करण 1970)
14. निर्मल वर्मा, धुंध से उठती धुन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली (1997)
15. मोहन राकेश, आखिरी चट्टान तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
16. यशपाल, लोहे की दीवार के दोनों ओर, (प्रथम संस्करण 1953)
17. रामवृक्ष बेनीपुरी, पैरों में पंख बाँधकर, (प्रथम संस्करण 1952)
18. राहुल सांकृत्यायन, घुमक्कड़ शास्त्र, किताब महल, इलाहाबाद (प्रथम संस्करण 1949)
19. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, (प्रथम संस्करण 1939)
20. राहुल सांकृत्यायन, किन्नर देश में, (प्रथम संस्करण 1948)
21. कमलेश्वर, खण्डित यात्राएँ।
22. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, मेरी जर्मन यात्रा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 61-66

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

डिजिटल युग में निजता का अधिकार और मानवाधिकार : भारत के संदर्भ में अध्ययन

शाजिया नसीब

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक।

सारांश :

डिजिटल तकनीक के तीव्र विस्तार ने मानव जीवन को सुविधाजनक बनाने के साथ–साथ निजता के अधिकार के समक्ष नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया, डिजिटल भुगतान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ऑनलाइन सेवाओं के बढ़ते उपयोग से व्यक्तियों के व्यक्तिगत डेटा का व्यापक स्तर पर संग्रह एवं प्रसंस्करण हो रहा है। ऐसे में निजता का अधिकार व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और मानवाधिकारों की रक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ (2017) के निर्णय द्वारा निजता को संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी। यह शोध भारत में डिजिटल निजता की चुनौतियों, कानूनी संरक्षण, डेटा सुरक्षा तथा राज्य और निजी संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण करता है।

प्रमुख शब्द : निजता का अधिकार, मानवाधिकार, डिजिटल युग, व्यक्तिगत डेटा, साइबर सुरक्षा, डिजिटल निगरानी, भारतीय संविधान।

प्रस्तावना :

मानवाधिकार वे मूलभूत अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानजनक और स्वतंत्र जीवन जीने के लिए प्राप्त होते हैं। निजता का अधिकार व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत जानकारी, विचारों और निजी गतिविधियों पर नियंत्रण प्रदान करता है। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानव गरिमा से गहराई से जुड़ा है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति की निजी बातचीत, फोटो या स्वास्थ्य संबंधी जानकारी को उसकी अनुमति के बिना सार्वजनिक करना उसकी निजता का उल्लंघन हो सकता है। डिजिटल निजता का अर्थ इंटरनेट और डिजिटल माध्यमों में व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा से है। जैसे, ऑनलाइन बैंकिंग में पासवर्ड, मोबाइल नंबर और बैंक विवरण की सुरक्षा डिजिटल निजता का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

इक्कीसवीं सदी में डिजिटल क्रांति ने मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। भारत में डिजिटल तकनीक ने शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, व्यापार, प्रशासन और संचार को अधिक सरल एवं सुलभ बनाया है। डिजिटल इंडिया जैसी पहलों के माध्यम से सरकारी सेवाएँ भी तेजी से ऑनलाइन हुई हैं। आज नागरिक

मोबाइल फोन और इंटरनेट के माध्यम से घर बैठे बैंकिंग, खरीदारी, टिकट बुकिंग, शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यूपीआई (UPI) के माध्यम से होने वाले डिजिटल भुगतान ने आर्थिक लेन–देन को अत्यंत सुविधाजनक बनाया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के विस्तार ने संचार के नए अवसर प्रदान किए हैं। फेसबुक, इन्सटाग्राम, यूटूब और व्हाट्सअप्प जैसे प्लेटफॉर्म पर लोग अपनी व्यक्तिगत जानकारी, फोटो, स्थान और दैनिक गतिविधियाँ साझा करते हैं। इसके साथ ही डिजिटल सेवाओं का उपयोग करते समय नाम, मोबाइल नंबर, ई–मेल, आधार संबंधी जानकारी, बैंक विवरण और बायोमेट्रिक डेटा जैसी संवेदनशील सूचनाएँ भी विभिन्न संस्थाओं के पास एकत्रित होती हैं। उदाहरण के लिए, किसी ऑनलाइन शॉपिंग वेबसाइट द्वारा ग्राहक की खरीदारी की आदतों का विश्लेषण करके उसे उसकी पसंद के अनुसार विज्ञापन दिखाया जा सकता है। इससे डेटा के व्यावसायिक उपयोग और निजता के संरक्षण से जुड़े प्रश्न उत्पन्न होते हैं। निजता केवल व्यक्तिगत जानकारी को छिपाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और व्यक्तिगत निर्णय लेने के अधिकार से भी जुड़ी हुई है। यदि किसी व्यक्ति की निजी गतिविधियों पर अनावश्यक निगरानी रखी जाए या उसकी जानकारी बिना सहमति के उपयोग की जाए, तो उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानव गरिमा प्रभावित हो सकती है।

इसी संदर्भ में भारत में डिजिटल निजता का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ (2017) के ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने निजता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी। अतः यह शोध डिजिटल युग में निजता के अधिकार, व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा, डिजिटल निगरानी तथा मानवाधिकारों के बीच संबंध को समझने का प्रयास करता है।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य हैं– निजता के अधिकार की अवधारणा को समझना तथा इसके मानवाधिकारों से संबंध का अध्ययन करना, भारत में निजता के अधिकार के संवैधानिक विकास का विश्लेषण करना, डिजिटल युग में व्यक्तिगत डेटा से जुड़ी प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना, भारत के डेटा संरक्षण संबंधी कानूनी प्रावधानों का अध्ययन करना तथा डिजिटल निगरानी और नागरिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन का विश्लेषण करना।

भारत में निजता के अधिकार का संवैधानिक विकास :

भारत में निजता के अधिकार का संवैधानिक विकास मौलिक अधिकारों और न्यायपालिका की व्याख्या से जुड़ा हुआ है। भारतीय संविधान में 'निजता' शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। समय के साथ सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की व्यापक व्याख्या करते हुए निजता को व्यक्ति के सम्मानपूर्ण जीवन का आवश्यक हिस्सा माना।

प्रारंभिक दौर में न्यायपालिका का दृष्टिकोण निजता के अधिकार के प्रति सीमित था। M. P. Sharma बनाम सतीश चंद्र (1954) और Kharak Singh बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1962) जैसे मामलों में निजता के संवैधानिक स्वरूप पर अलग–अलग दृष्टिकोण सामने आए। बाद में न्यायिक दृष्टिकोण अधिक व्यापक हुआ और निजता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा गरिमा से जोड़ा गया। उदाहरण के लिए, R. Rajagopal बनाम तमिलनाडु राज्य (1994) में व्यक्ति के निजी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप के विरुद्ध निजता के महत्व को स्वीकार किया गया। निजता के अधिकार के संवैधानिक विकास में सबसे महत्वपूर्ण निर्णय K. S. Puttaswamy बनाम भारत संघ

(2017) है। सर्वोच्च न्यायालय की नौ–न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से माना कि निजता भारतीय संविधान द्वारा संरक्षित मौलिक अधिकार है। न्यायालय ने निजता को अनुच्छेद 21 के साथ–साथ संविधान में निहित स्वतंत्रता, गरिमा और अन्य मौलिक अधिकारों से जोड़ा। उदाहरण के लिए, व्यक्ति की व्यक्तिगत पहचान, पारिवारिक जीवन, शारीरिक स्वायत्तता और डिजिटल जानकारी को निजता के विभिन्न पहलुओं के रूप में देखा जा सकता है।

हालाँकि निजता का अधिकार पूर्ण और निरपेक्ष अधिकार नहीं है। राज्य द्वारा निजता में हस्तक्षेप तभी उचित माना जा सकता है जब उसके पीछे वैध कानून हो, उसका उद्देश्य उचित हो तथा हस्तक्षेप आवश्यक और आनुपातिक हो। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय सुरक्षा, अपराध की जाँच या सार्वजनिक हित से संबंधित परिस्थितियों में कानून के अनुसार सीमित डेटा प्राप्त किया जा सकता है। किंतु व्यापक या अनावश्यक निगरानी व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा को प्रभावित कर सकती है। इस प्रकार भारतीय न्यायपालिका ने निजता को केवल व्यक्तिगत गोपनीयता न मानकर मानव गरिमा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता का महत्वपूर्ण आधार बनाया है। डिजिटल युग में यह संवैधानिक संरक्षण व्यक्तिगत डेटा और ऑनलाइन गतिविधियों की सुरक्षा के लिए विशेष महत्व रखता है।

डिजिटल युग में निजता के प्रमुख खतरे :

डिजिटल तकनीक के विस्तार ने जीवन को सुविधाजनक बनाया है, लेकिन इसके साथ व्यक्तिगत निजता के लिए अनेक खतरे भी उत्पन्न हुए हैं। व्यक्तिगत डेटा का अनधिकृत संग्रह एक प्रमुख समस्या है। कई ऑनलाइन प्लेटफॉर्म उपयोगकर्ता का नाम, मोबाइल नंबर, ई–मेल, पसंद और ऑनलाइन गतिविधियों से संबंधित जानकारी एकत्र करते हैं। उदाहरण के लिए, किसी शॉपिंग वेबसाइट द्वारा उपयोगकर्ता की खरीदारी की आदतों का रिकॉर्ड रखना उसकी डेटा निजता से जुड़ा प्रश्न है।

डेटा लीक और साइबर अपराध भी गंभीर खतरे हैं। यदि किसी बैंक, अस्पताल या सरकारी संस्था का डेटाबेस हैक हो जाए, तो नागरिकों की व्यक्तिगत एवं संवेदनशील जानकारी अपराधियों तक पहुँच सकती है। इसी प्रकार सोशल मीडिया पर लोग फोटो, लोकेशन और निजी गतिविधियाँ साझा करते हैं, जिसका दुरुपयोग फर्जी खातों या धोखाधड़ी में हो सकता है। डिजिटल निगरानी निजता के लिए एक अन्य चुनौती है। इंटरनेट गतिविधियों, मोबाइल लोकेशन या ऑनलाइन संचार की लगातार निगरानी व्यक्ति की स्वतंत्रता और निजी जीवन को प्रभावित कर सकती है। वहीं, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा प्रोफाइलिंग के माध्यम से बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण करके व्यक्ति की रुचियों, व्यवहार और पसंद का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म उपयोगकर्ता की पिछली गतिविधियों के आधार पर व्यक्तिगत विज्ञापन प्रदर्शित करते हैं।

फेशियल रिकग्निशन तकनीक चेहरे की पहचान करके व्यक्तियों की पहचान और निगरानी में उपयोग की जा सकती है। इसी प्रकार लोकेशन और बायोमेट्रिक डेटा के अनधिकृत उपयोग से व्यक्ति की गतिविधियों और पहचान संबंधी जानकारी उजागर हो सकती है। अंततः फेक प्रोफाइल और ऑनलाइन पहचान की चोरी के माध्यम से अपराधी किसी अन्य व्यक्ति के नाम और फोटो का दुरुपयोग कर सकते हैं। अतः डिजिटल युग में प्रभावी डेटा सुरक्षा और निजता संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

भारत का कानूनी एवं संस्थागत ढाँचा :

भारत में डिजिटल निजता की सुरक्षा के लिए संवैधानिक, कानूनी और संस्थागत व्यवस्था विकसित की

गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में निजता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय के K. S. Puttaswamy बनाम भारत संघ (2017) निर्णय ने इस अधिकार को स्पष्ट संवैधानिक आधार प्रदान किया।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 इलेक्ट्रॉनिक संचार और डिजिटल गतिविधियों के लिए प्रमुख कानूनी ढाँचा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम, 2023 (DPDP Act) का उद्देश्य डिजिटल व्यक्तिगत डेटा के प्रसंस्करण को विनियमित करते हुए व्यक्तियों के व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा और वैध डेटा–प्रसंस्करण के बीच संतुलन स्थापित करना है। 2025 में इसके नियम अधिसूचित किए गए और डाटा प्रोटेक्शन बोर्ड ऑफ इंडिया की स्थापना भी की गई। उदाहरण के लिए, यदि किसी ऑनलाइन संस्था के पास नागरिकों के मोबाइल नंबर या अन्य व्यक्तिगत डेटा हैं, तो डेटा–सुरक्षा संबंधी दायित्व महत्वपूर्ण हो जाते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा और निजता के बीच संतुलन लोकतांत्रिक शासन की महत्वपूर्ण चुनौती है। आतंकवाद, साइबर अपराध और गंभीर आपराधिक गतिविधियों की रोकथाम के लिए राज्य को कुछ परिस्थितियों में डिजिटल संचार या डेटा तक पहुँच की आवश्यकता हो सकती है। उदाहरण के लिए, किसी गंभीर साइबर अपराध की जाँच में डिजिटल रिकॉर्ड प्राप्त करना आवश्यक हो सकता है।

हालाँकि, राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर असीमित निगरानी नागरिक स्वतंत्रता और निजता को प्रभावित कर सकती है। इसलिए राज्य की निगरानी कानून सम्मत, आवश्यक और आनुपातिक होनी चाहिए। किसी व्यक्ति की सभी ऑनलाइन गतिविधियों पर बिना उचित आधार के निगरानी रखना निजता के अधिकार के विरुद्ध हो सकता है। न्यायपालिका इस संदर्भ में राज्य की शक्तियों पर संवैधानिक नियंत्रण बनाए रखती है और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती है कि सुरक्षा के उद्देश्य से किया गया हस्तक्षेप मनमाना न हो। इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा और नागरिक निजता के बीच संतुलन लोकतांत्रिक एवं मानवाधिकार–आधारित शासन की आवश्यक शर्त है।

प्रमुख चुनौतियाँ :

डिजिटल युग में निजता के अधिकार के संरक्षण के सामने अनेक महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। सबसे पहली चुनौती कानून और तकनीकी विकास के बीच अंतर है। तकनीक तेजी से बदल रही है, जबकि कानूनी व्यवस्था को नए तकनीकी जोखिमों के अनुरूप विकसित होने में समय लगता है। उदाहरण के लिए, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और चेहरे की पहचान जैसी तकनीकों के बढ़ते उपयोग ने निजता से जुड़े नए प्रश्न उत्पन्न किए हैं।

दूसरी चुनौती नागरिकों में डिजिटल जागरूकता की कमी है। अनेक लोग बिना नियम और शर्तें पढ़े मोबाइल ऐप या वेबसाइट को व्यक्तिगत जानकारी की अनुमति दे देते हैं। इससे डेटा के अनावश्यक संग्रह और दुरुपयोग का खतरा बढ़ जाता है। निजी कंपनियों द्वारा डेटा का व्यावसायिक उपयोग भी गंभीर समस्या है। उदाहरण के लिए, किसी सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म द्वारा उपयोगकर्ता की पसंद, खोज और ऑनलाइन गतिविधियों का विश्लेषण करके लक्षित विज्ञापन दिखाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त सरकारी निगरानी और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। अत्यधिक या बिना पर्याप्त कानूनी आधार की निगरानी नागरिकों की स्वतंत्रता और निजता को प्रभावित कर सकती है। डेटा सुरक्षा की कमजोरियाँ, जैसे कमजोर पासवर्ड, साइबर हमले और डेटा लीक, व्यक्तिगत जानकारी को जोखिम में डालती हैं। उदाहरण के लिए, किसी संस्था का डेटाबेस हैक होने पर लाखों लोगों की जानकारी सार्वजनिक हो

सकती है।

अंततः प्रभावी शिकायत निवारण व्यवस्था आवश्यक है, ताकि डेटा के दुरुपयोग या निजता के उल्लंघन की स्थिति में नागरिकों को शीघ्र न्याय, क्षतिपूर्ति और प्रभावी कानूनी सहायता मिल सके।

सुझाव :

डिजिटल युग में व्यक्तिगत निजता की सुरक्षा मानव अधिकारों के संरक्षण का एक महत्वपूर्ण आधार बन गई है। तकनीकी विकास और डिजिटल सेवाओं के विस्तार के साथ यह आवश्यक है कि नवाचार को व्यक्ति की मौलिक स्वतंत्रता, गरिमा और निजता के अधिकार के अनुरूप विकसित किया जाए। इसके लिए नागरिकों में डिजिटल स्वच्छता एवं डेटा सुरक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाना भी आवश्यक है। भारत में डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन अधिनियम, 2023 सहित विभिन्न कानूनी प्रावधान लागू किए गए हैं, फिर भी डिजिटल माध्यमों पर व्यक्तिगत जानकारी के दुरुपयोग, अनधिकृत पहुँच और डेटा उल्लंघन जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत डेटा का संग्रह, भंडारण और प्रसंस्करण करने वाली संस्थाओं पर उसके सुरक्षित एवं जिम्मेदार उपयोग की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। उदाहरण के लिए, बैंकिंग और स्वास्थ्य संबंधी संवेदनशील डेटा को मजबूत एन्क्रिप्शन और सुरक्षा उपायों के माध्यम से सुरक्षित रखा जाना चाहिए। ऐसी संस्थाएँ डेटा को एक प्रकार की 'ट्रस्टी' की भूमिका में रखती हैं। अतः डेटा ट्रस्टी द्वारा व्यक्तिगत जानकारी की गोपनीयता बनाए रखना, पारदर्शिता सुनिश्चित करना तथा डेटा का दुरुपयोग रोकना डिजिटल मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक है।

दूसरा, नागरिकों में डिजिटल एवं डेटा–साक्षरता बढ़ाई जानी चाहिए। लोगों को यह जानकारी होनी चाहिए कि वे अपनी व्यक्तिगत जानकारी कहाँ और किस उद्देश्य से साझा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, किसी मोबाइल ऐप को अनावश्यक रूप से संपर्क या लोकेशन की अनुमति देने से बचना चाहिए। डेटा संग्रह में न्यूनतमता के सिद्धांत को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, अर्थात संस्था केवल उतना ही डेटा एकत्र करे जितना किसी निश्चित सेवा के लिए आवश्यक हो। साथ ही, सरकारी डिजिटल निगरानी व्यवस्था में पारदर्शिता, वैधता और जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिए। एक स्वतंत्र एवं प्रभावी नियामक तंत्र नागरिकों की शिकायतों का शीघ्र समाधान कर सके। डेटा उल्लंघन की स्थिति में दोषी संस्थाओं पर प्रभावी दंड तथा प्रभावित व्यक्तियों को उचित क्षतिपूर्ति प्रदान की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी संस्था की लापरवाही से नागरिकों का व्यक्तिगत डेटा लीक होने पर जवाबदेही तय होनी चाहिए।

डिजिटल व्यक्तिगत डेटा सुरक्षा नियम, 2025 के मसौदे में गैर–अनुपालन के लिए स्पष्ट दंड प्रावधान और नाबालिगों के लिए सत्यापन योग्य माता–पिता की सहमति प्राप्त करने के लिए दिशानिर्देश शामिल होने चाहिए।

अंततः न्यायपालिका और मानवाधिकार संस्थाओं की भूमिका को मजबूत करना आवश्यक है, ताकि निजता के अधिकार पर होने वाले अनुचित हस्तक्षेप की प्रभावी समीक्षा हो सके और डिजिटल विकास के साथ नागरिक स्वतंत्रता एवं मानव गरिमा की रक्षा सुनिश्चित की जा सके।

निष्कर्ष :

डिजिटल युग में निजता का अधिकार व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और मानवाधिकारों की रक्षा का महत्वपूर्ण आधार बन गया है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निजता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दिए जाने से इसके संवैधानिक महत्व को मजबूती मिली है। डिजिटल सेवाओं के विस्तार के साथ व्यक्तिगत डेटा

के संग्रह, साइबर अपराध, डेटा लीक, डिजिटल निगरानी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी नई चुनौतियाँ सामने आई हैं। अतः केवल कानूनी प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि प्रभावी डेटा सुरक्षा, पारदर्शिता, नागरिक जागरूकता और जवाबदेही भी आवश्यक है। राष्ट्रीय सुरक्षा और निजता के बीच संतुलन बनाए रखते हुए नागरिकों की डिजिटल स्वतंत्रता और मानव गरिमा की रक्षा करना भारतीय लोकतंत्र की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :

1. भारत सरकार (2000) : सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000, नई दिल्ली : विधि एवं न्याय मंत्रालय।
2. भारत सरकार (2023) : डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम, 2023, नई दिल्ली : इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय।
3. भारत का सर्वोच्च न्यायालय (2017) : के. एस. पुट्टस्वामी (सेवानिवृत्त) एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, नई दिल्ली : सर्वोच्च न्यायालय।
4. भारत का सर्वोच्च न्यायालय (1994) : आर. राजगोपाल बनाम तमिलनाडु राज्य, नई दिल्ली : सर्वोच्च न्यायालय।
5. भारत का सर्वोच्च न्यायालय (1962) : खड़क सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, नई दिल्ली : सर्वोच्च न्यायालय।
6. भारत का सर्वोच्च न्यायालय (1954) : एम. पी. शर्मा बनाम सतीश चंद्र, नई दिल्ली : सर्वोच्च न्यायालय।
7. इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (2025) : डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण नियम, 2025, भारत सरकार।
8. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (2023) : भारत में मानवाधिकारों की स्थिति पर वार्षिक रिपोर्ट, नई दिल्ली : राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग।
9. नासकॉम (2022) : भारत में डिजिटल परिवर्तन और डेटा संरक्षण, नई दिल्ली : नासकॉम।
10. संयुक्त राष्ट्र (1948) : मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, संयुक्त राष्ट्र।
11. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद (2013) : डिजिटल युग में निजता का अधिकार, संयुक्त राष्ट्र।
12. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त कार्यालय (2018) : डिजिटल युग में निजता का अधिकार, जिनेवा : संयुक्त राष्ट्र।
13. मिश्रा, एस. (2021) : साइबर कानून एवं डिजिटल निजता, नई दिल्ली : यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग।
14. वर्मा, ए. (2022) : सूचना प्रौद्योगिकी, डेटा संरक्षण और निजता का अधिकार। नई दिल्ली : दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स।
15. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2104653&reg=48&lang=2

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 67-74

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय नागरिक समाज का विकास : सैद्धांतिक विमर्श से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तक

प्रियांशु प्रियदर्शनी, शोधार्थी
डॉ. नीरज कुमार, सहायक प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. सी. वी. रमन यूनिवर्सिटी, वैशाली, बिहार।

सार :

भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन में नागरिक समाज की अवधारणा के विकास और उसके ऐतिहासिक रूपांतरण को समझने का प्रयास करता है। नागरिक समाज राज्य और व्यक्ति के मध्य सक्रिय सामाजिक क्षेत्र के रूप में नागरिक सहभागिता, सामूहिक हित, सामाजिक उत्तरदायित्व, अधिकार–बोध तथा लोकतांत्रिक चेतना को अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य नागरिक समाज की सैद्धांतिक अवधारणा तथा भारतीय संदर्भ में उसके ऐतिहासिक विकास के बीच अंतर्संबंध का विश्लेषण करना है।

अध्ययन में नागरिक समाज से संबंधित प्रमुख वैचारिक दृष्टिकोणों को आधार बनाते हुए भारतीय समाज में इसकी ऐतिहासिक उपस्थिति और परिवर्तनशील स्वरूप का विवेचन किया गया है। भारतीय संदर्भ में नागरिक समाज को केवल आधुनिक पश्चिमी अवधारणा के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। प्राचीन एवं मध्यकालीन सामाजिक संस्थाओं, स्थानीय समुदायों, सभा–समिति, ग्राम–व्यवस्था, श्रेणियों तथा विभिन्न धार्मिक–सामाजिक संगठनों में सामूहिक सहभागिता और सामाजिक उत्तरदायित्व के तत्व दिखाई देते हैं। औपनिवेशिक काल में सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलनों, प्रेस, शिक्षा, सार्वजनिक संस्थाओं और राष्ट्रीय आंदोलन ने नागरिक चेतना के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के पश्चात संविधान, लोकतांत्रिक संस्थाओं, पंचायती राज, स्वैच्छिक संगठनों और सामाजिक आंदोलनों ने नागरिक समाज के स्वरूप को और व्यापक बनाया।

प्रस्तुत शोध ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से नागरिक समाज की अवधारणा, विकास और सामाजिक–राजनीतिक भूमिका का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय नागरिक समाज एक स्थिर संस्था नहीं, बल्कि बदलती सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के साथ विकसित होने वाली गतिशील प्रक्रिया है। यह लोकतांत्रिक सहभागिता, सामाजिक न्याय, अधिकार–संरक्षण, पारदर्शिता और सार्वजनिक उत्तरदायित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस दृष्टि से भारतीय नागरिक समाज का ऐतिहासिक विकास समकालीन लोकतंत्र की प्रकृति और उसकी सामाजिक आधारभूमि को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

कुंजी शब्द :

नागरिक समाज, सैद्धांतिक विमर्श, ऐतिहासिक विकास, नागरिक सहभागिता, लोकतंत्र, भारतीय समाज।

प्रस्तावना :

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास को समझने के लिए राज्य और राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन के साथ–साथ उन सामाजिक शक्तियों और संस्थाओं का अध्ययन भी आवश्यक है, जिनके माध्यम से नागरिक सार्वजनिक जीवन में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। इसी संदर्भ में नागरिक समाज की अवधारणा विशेष महत्त्व प्राप्त करती है। नागरिक समाज व्यक्ति और राज्य के मध्य स्थित उस व्यापक सामाजिक क्षेत्र को अभिव्यक्त करता है, जिसमें स्वैच्छिक संगठन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ, सामुदायिक समूह, पेशागत संगठन, सामाजिक आंदोलन, गैर–सरकारी संस्थाएँ तथा विभिन्न जनमंच सक्रिय रहते हैं। इन संस्थाओं के माध्यम से व्यक्ति केवल निजी हितों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामूहिक हित, सामाजिक न्याय, अधिकार, उत्तरदायित्व और सार्वजनिक सरोकारों से जुड़ता है।

इसलिए नागरिक समाज को लोकतांत्रिक संस्कृति के निर्माण और उसके सामाजिक आधार को समझने की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा माना जाता है।

नागरिक समाज की अवधारणा आधुनिक राजनीतिक चिंतन में विकसित हुई, किंतु इसकी बौद्धिक यात्रा सरल और एकरेखीय नहीं रही है। विभिन्न कालखंडों और विचारकों ने इसे अलग–अलग अर्थों में परिभाषित किया। कहीं यह राज्य के बाहर स्थित सामाजिक संगठन का क्षेत्र है, तो कहीं आर्थिक संबंधों, वर्गीय संरचना, सामाजिक शक्ति और वैचारिक वर्चस्व को समझने का माध्यम। उदारवादी चिंतन में नागरिक समाज को व्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वैच्छिक संगठन से जोड़ा गया, जबकि हेगेल ने इसे परिवार और राज्य के मध्य स्थित एक विशिष्ट सामाजिक क्षेत्र के रूप में देखा। मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने इसे आर्थिक संरचना और वर्गीय संबंधों से संबद्ध किया। ग्राम्शी ने नागरिक समाज को सहमति निर्माण, विचारधारा और सांस्कृतिक वर्चस्व के संदर्भ में विश्लेषित किया। इस प्रकार नागरिक समाज की अवधारणा समय के साथ केवल संस्थागत परिभाषा तक सीमित न रहकर सत्ता, समाज, विचार और नागरिक सहभागिता के व्यापक प्रश्नों से जुड़ती गई।

भारतीय संदर्भ में नागरिक समाज का अध्ययन एक अलग ऐतिहासिक दृष्टिकोण की अपेक्षा करता है। भारत में सामुदायिक जीवन, स्थानीय संस्थाओं, सामाजिक संगठनों और सामूहिक उत्तरदायित्व की परंपराएँ आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था से बहुत पहले विद्यमान थीं। प्राचीन भारतीय समाज में सभा, समिति, गण–संघ, ग्राम–व्यवस्था तथा विभिन्न श्रेणियों जैसी संस्थाओं में सामूहिक जीवन और सामाजिक संगठन के तत्व दिखाई देते हैं। बाद के काल में भी स्थानीय समुदायों, धार्मिक संस्थाओं, सामाजिक संगठनों और पेशागत समूहों ने सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने में भूमिका निभाई। हालांकि इन संस्थाओं को आधुनिक अर्थ में 'नागरिक समाज' कहना ऐतिहासिक रूप से सावधानी की माँग करता है, फिर भी इनके अध्ययन से भारतीय समाज में सामूहिक सहभागिता और सामाजिक संगठन की दीर्घ परंपरा को समझा जा सकता है।

भारतीय नागरिक समाज के आधुनिक स्वरूप को समझने के लिए औपनिवेशिक काल निर्णायक चरण के रूप में सामने आता है। औपनिवेशिक शासन के दौरान आधुनिक शिक्षा, मुद्रण, समाचार–पत्र, सार्वजनिक संस्थाओं तथा नए सामाजिक वर्गों का उदय हुआ। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक प्रश्नों पर सार्वजनिक चर्चा

का विस्तार हुआ। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती और अन्य सुधारकों की गतिविधियों ने सामाजिक रूढ़ियों, शिक्षा, महिला प्रश्न और सामाजिक समानता को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया। इन प्रयासों ने यह स्थापित किया कि सामाजिक परिवर्तन केवल राज्य के माध्यम से नहीं, बल्कि समाज के भीतर संगठित प्रयासों से भी संभव है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में समाचार–पत्रों, साहित्यिक संस्थाओं, सामाजिक संगठनों तथा राजनीतिक सभाओं का विस्तार हुआ। इससे सार्वजनिक मत निर्माण की प्रक्रिया मजबूत हुई। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने इस प्रक्रिया को और व्यापक बनाया। राष्ट्रीय आंदोलन की विशेषता यह थी कि उसने राजनीतिक स्वतंत्रता के प्रश्न को सामाजिक सहभागिता से जोड़ दिया। असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन तथा विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों में विद्यार्थियों, महिलाओं, किसानों, श्रमिकों और सामान्य नागरिकों की भागीदारी ने राजनीतिक चेतना को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया। महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में ग्राम विकास, स्वदेशी, शिक्षा, सामाजिक सुधार और अस्पृश्यता–विरोध जैसे प्रश्नों का समावेश इस बात को स्पष्ट करता है कि राष्ट्रीय आंदोलन में राजनीतिक संघर्ष और सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रश्न परस्पर जुड़े हुए थे।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विकसित सार्वजनिक सहभागिता ने स्वतंत्र भारत के नागरिक समाज के लिए एक महत्वपूर्ण आधार तैयार किया। स्वतंत्रता के बाद संविधान ने नागरिक स्वतंत्रता, समानता, न्याय और संगठन की स्वतंत्रता को संस्थागत आधार प्रदान किया। भारतीय संविधान ने नागरिकों को केवल राजनीतिक अधिकार ही नहीं दिए, बल्कि ऐसी सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था की आधारभूमि भी निर्मित की जिसमें नागरिक सार्वजनिक जीवन में अपनी भूमिका निभा सकें। मौलिक अधिकारों, स्वतंत्र न्यायपालिका, प्रतिनिधि संस्थाओं और लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था ने नागरिक सहभागिता के लिए आवश्यक संवैधानिक वातावरण तैयार किया।

स्वतंत्रता के पश्चात नागरिक समाज की भूमिका धीरे–धीरे अनेक नए क्षेत्रों तक विस्तृत हुई। प्रारंभिक दशकों में सहकारी संस्थाओं, श्रमिक संगठनों, छात्र संगठनों, महिला संगठनों, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं तथा विभिन्न स्वैच्छिक संगठनों ने सामाजिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभाई। समय के साथ ग्रामीण विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, मानवाधिकार, महिला सशक्तीकरण और सामाजिक न्याय से संबंधित संगठनों का विस्तार हुआ। इस प्रक्रिया ने नागरिक समाज को केवल राजनीतिक विरोध या राजनीतिक संगठन के रूप में देखने के बजाय सामाजिक विकास और सार्वजनिक नीति से संबंधित एक व्यापक क्षेत्र के रूप में स्थापित किया।

भारतीय नागरिक समाज के विकास में सामाजिक आंदोलनों का विशेष महत्त्व है। विभिन्न आंदोलनों ने ऐसे प्रश्नों को सार्वजनिक विमर्श में स्थान दिया, जो लंबे समय तक सीमित सामाजिक या स्थानीय मुद्दे माने जाते थे। पर्यावरण संरक्षण, विस्थापन, भूमि अधिकार, महिला अधिकार, सामाजिक न्याय, जनजातीय अधिकार तथा भ्रष्टाचार जैसे विषयों पर संगठित नागरिक सक्रियता ने राज्य और समाज के बीच संवाद को प्रभावित किया। इन आंदोलनों की प्रकृति और विचारधारा अलग–अलग रही है, किंतु इनके माध्यम से नागरिकों की सामूहिक कार्रवाई लोकतांत्रिक विमर्श का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनी।

भारतीय नागरिक समाज का स्वरूप सामाजिक विविधता से भी गहराई से प्रभावित है। जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, क्षेत्र और लिंग जैसी सामाजिक संरचनाएँ नागरिक सहभागिता के अवसरों और उसकी दिशा को प्रभावित

करती हैं। भारतीय लोकतंत्र ने समान नागरिकता के संवैधानिक आदर्श को स्वीकार किया, लेकिन सामाजिक जीवन में ऐतिहासिक असमानताओं का प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। इस कारण नागरिक समाज के भीतर भी प्रतिनिधित्व और सहभागिता की असमानताएँ दिखाई देती हैं। दलित आंदोलन, पिछड़े वर्गों के संगठन, महिला आंदोलन तथा आदिवासी अधिकारों से जुड़े प्रयासों ने नागरिक समाज की संरचना को अधिक बहुलतापूर्ण बनाया और सामाजिक न्याय के प्रश्नों को सार्वजनिक विमर्श में स्थापित किया।

यहाँ नागरिक समाज के अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक प्रश्न सामने आता है—क्या नागरिक समाज वास्तव में समाज के सभी वर्गों की समान रूप से अभिव्यक्ति करता है? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। एक ओर नागरिक समाज वंचित समूहों को अपनी आवाज संगठित करने का अवसर देता है, दूसरी ओर संसाधनों, शिक्षा, संगठनात्मक क्षमता और सामाजिक शक्ति में असमानता के कारण सभी समूहों की भागीदारी समान नहीं हो सकती। अतः भारतीय नागरिक समाज का अध्ययन केवल संगठनों की संख्या या उनकी सक्रियता के आधार पर नहीं, बल्कि उनके सामाजिक आधार, प्रतिनिधित्व, संसाधनों और प्रभाव की प्रकृति के आधार पर भी किया जाना आवश्यक है।

इसी प्रकार नागरिक समाज और राज्य के संबंध को भी केवल विरोध के रूप में देखना उचित नहीं होगा। लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिक समाज राज्य की नीतियों की आलोचना करने के साथ–साथ नीति–निर्माण और सामाजिक विकास में सहयोग भी कर सकता है। कई स्वैच्छिक संस्थाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास, महिला सशक्तीकरण और सामाजिक कल्याण के क्षेत्रों में सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर कार्य करती हैं। दूसरी ओर नागरिक संगठन सरकारी नीतियों के प्रभाव का परीक्षण करते हुए पारदर्शिता और उत्तरदायित्व की माँग भी करते हैं। इसलिए राज्य और नागरिक समाज के संबंधों में संघर्ष, संवाद, सहयोग और निगरानी सभी तत्व एक साथ मौजूद हो सकते हैं।

नागरिक समाज और लोकतंत्र के संबंध का प्रश्न इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण आयाम है। लोकतंत्र को केवल निर्वाचन प्रक्रिया या प्रतिनिधि संस्थाओं तक सीमित करने से उसकी सामाजिक प्रकृति का पूर्ण आकलन नहीं हो सकता। लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थायित्व और प्रभावशीलता नागरिकों की सार्वजनिक सहभागिता, स्वतंत्र अभिव्यक्ति, संगठन निर्माण, संवाद और असहमति की स्वीकृति से भी जुड़ी होती है। नागरिक समाज इन प्रक्रियाओं के लिए सामाजिक आधार उपलब्ध कराता है। नागरिकों को अपने हितों और समस्याओं को संगठित रूप में प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है तथा शासन की नीतियों पर सार्वजनिक विमर्श विकसित होता है।

इक्कीसवीं शताब्दी में तकनीकी परिवर्तन ने नागरिक समाज के स्वरूप को एक नया आयाम दिया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया ने सार्वजनिक संवाद की संरचना को परिवर्तित किया है। डिजिटल मंचों के माध्यम से नागरिक किसी मुद्दे पर तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकते हैं, अभियान चला सकते हैं और व्यापक जनसमूह से जुड़ सकते हैं। इससे नागरिक सहभागिता के पारंपरिक स्वरूपों के साथ डिजिटल नागरिक समाज का एक नया क्षेत्र विकसित हुआ है। हालांकि इसके साथ सूचना की विश्वसनीयता, डिजिटल असमानता, गलत सूचना और सार्वजनिक विमर्श की गुणवत्ता से संबंधित प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं। अतः समकालीन नागरिक समाज का अध्ययन करते समय पारंपरिक संस्थाओं और डिजिटल माध्यमों दोनों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

इस व्यापक ऐतिहासिक और सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध का पहला उद्देश्य भारतीय नागरिक समाज की सैद्धांतिक अवधारणा एवं वैचारिक आधार का अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत नागरिक समाज की अवधारणा के विकास, उसके प्रमुख सैद्धांतिक प्रतिमानों और भारतीय संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण किया जाएगा। इससे यह स्पष्ट करने का प्रयास होगा कि भारतीय नागरिक समाज को किस वैचारिक ढाँचे के माध्यम से समझा जा सकता है और उसकी व्याख्या में पश्चिमी सिद्धांतों की उपयोगिता तथा सीमाएँ क्या हैं।

शोध का दूसरा उद्देश्य भारतीय नागरिक समाज के ऐतिहासिक विकास और उसके विभिन्न चरणों का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत भारतीय सामाजिक परंपराओं, औपनिवेशिक काल के सामाजिक सुधार आंदोलनों, राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वतंत्रता के बाद लोकतांत्रिक संस्थाओं और सामाजिक संगठनों के विकास को क्रमबद्ध रूप से समझने का प्रयास किया जाएगा। इसका उद्देश्य नागरिक समाज को किसी एक कालखंड की उपज मानने के बजाय उसके दीर्घकालिक ऐतिहासिक विकास को रेखांकित करना है।

शोध का तीसरा उद्देश्य भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन में नागरिक समाज की भूमिका का अध्ययन करना है। सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक न्याय, महिला अधिकार, पर्यावरण, ग्रामीण विकास और विभिन्न जनआंदोलनों के माध्यम से नागरिक समाज ने जिन सामाजिक प्रश्नों को सार्वजनिक विमर्श में स्थान दिया, उनका विश्लेषण इस उद्देश्य के अंतर्गत किया जाएगा। इससे नागरिक सक्रियता और सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंध को अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकेगा।

शोध का चौथा उद्देश्य भारतीय लोकतंत्र में नागरिक समाज की सहभागिता, उत्तरदायित्व एवं प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिक समाज की भूमिका को नागरिक भागीदारी, सार्वजनिक संवाद, सामाजिक उत्तरदायित्व, पारदर्शिता और शासन की जवाबदेही के संदर्भ में देखा जाएगा। साथ ही यह भी समझने का प्रयास किया जाएगा कि बदलती सामाजिक और तकनीकी परिस्थितियों में नागरिक समाज के सामने कौन–सी नई चुनौतियाँ और संभावनाएँ उपस्थित हुई हैं।

इस प्रकार यह अध्ययन नागरिक समाज को केवल एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अनुभव, सामाजिक संरचना और लोकतांत्रिक संस्कृति के अंतर्संबंध के रूप में देखने का प्रयास करता है। भारतीय नागरिक समाज का विकास विभिन्न ऐतिहासिक चरणों में बदलती सामाजिक आवश्यकताओं, राजनीतिक परिस्थितियों और नागरिक चेतना के साथ हुआ है। इसकी संरचना में परंपरा और आधुनिकता, स्थानीयता और व्यापक सार्वजनिक क्षेत्र, सहयोग और प्रतिरोध तथा अधिकार और उत्तरदायित्व जैसे अनेक आयाम एक साथ दिखाई देते हैं।

अतः भारतीय नागरिक समाज के विकास का अध्ययन भारतीय लोकतंत्र के सामाजिक आधार को समझने के लिए आवश्यक है। सैद्धांतिक विमर्श नागरिक समाज की अवधारणा को वैचारिक आधार प्रदान करता है, जबकि ऐतिहासिक अध्ययन उसके वास्तविक विकास, परिवर्तन और सामाजिक प्रभाव को समझने का अवसर देता है। इन दोनों दृष्टियों को एक साथ रखकर ही भारतीय नागरिक समाज की प्रकृति और भूमिका का अधिक संतुलित अध्ययन संभव है। प्रस्तुत शोध इसी समन्वित दृष्टिकोण के माध्यम से यह समझने का प्रयास करता है कि भारतीय नागरिक समाज किस प्रकार ऐतिहासिक अनुभवों से निर्मित हुआ, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन में उसकी क्या भूमिका रही और लोकतांत्रिक भारत में उसकी प्रासंगिकता किन रूपों में निरंतर विकसित

हो रही है।

साहित्य समीक्षा :

1. **नेरा चंडोक (1995)** ने State and Civil Society में नागरिक समाज की सैद्धांतिक अवधारणा तथा राज्य–समाज संबंधों का विश्लेषण किया। अध्ययन मुख्यतः राजनीतिक सिद्धांत पर केंद्रित है।
2. **सविता भाखरी (2002)** ने नागरिक समाज की वैचारिक पृष्ठभूमि और भारतीय संदर्भ में उसके स्वरूप का अध्ययन किया। इसमें भारतीय सामाजिक संस्थाओं और राज्य के संबंधों पर बल दिया गया है।
3. **टी. के. ऊमेन (2001, 2004)** ने नागरिक समाज को जाति, धर्म, भाषा, सामाजिक पहचान और सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में समझाया। उनका अध्ययन भारतीय नागरिक समाज की विविधतापूर्ण प्रकृति को स्पष्ट करता है।
4. **नेरा चंडोक (2012)** ने भारतीय नागरिक समाज के ऐतिहासिक एवं संस्थागत विकास का विश्लेषण किया तथा विभिन्न सामाजिक समूहों और संगठनों की भूमिका को रेखांकित किया।
5. **सरबेश्वर साहू एवं पॉल चेनी (2021)** ने नागरिक समाज, नागरिकता, सामाजिक आंदोलनों और लोकतांत्रिक सहभागिता के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया।

शोध–अंतर :

उपलब्ध साहित्य में नागरिक समाज के सैद्धांतिक, सामाजिक और समकालीन पक्षों पर पर्याप्त अध्ययन मिलता है, लेकिन इसके सैद्धांतिक विमर्श, ऐतिहासिक विकास और भारतीय लोकतंत्र में भूमिका को एकीकृत दृष्टि से देखने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत कम हैं। प्रस्तुत शोध इसी अंतर को संबोधित करता है।

शोध–पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक शोध–पद्धति पर आधारित है। इसमें नागरिक समाज के सैद्धांतिक स्वरूप और ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया गया है।

प्राथमिक स्रोत : ऐतिहासिक दस्तावेज, संवैधानिक प्रावधान, सरकारी अभिलेख एवं समकालीन स्रोत।

द्वितीयक स्रोत : पुस्तकें, शोध–पत्र, शोध–प्रबंध, पत्रिकाएँ एवं प्रकाशित साहित्य।

विश्लेषण : प्राप्त सामग्री का ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाएगा।

परिणाम एवं विश्लेषण :

शोध से स्पष्ट होता है कि भारतीय नागरिक समाज की जड़ें सामाजिक सहभागिता और सामुदायिक परंपराओं में रही हैं। औपनिवेशिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलन ने नागरिक चेतना को व्यापक बनाया। स्वतंत्रता के बाद संविधान, लोकतांत्रिक संस्थाओं, सामाजिक आंदोलनों और स्वैच्छिक संगठनों ने इसकी भूमिका को और विस्तृत किया।

विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि नागरिक समाज लोकतांत्रिक सहभागिता, सामाजिक न्याय, अधिकार–संरक्षण और सार्वजनिक उत्तरदायित्व को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ ही, सामाजिक असमानता, संसाधनों की असमान उपलब्धता और प्रतिनिधित्व की सीमाएँ इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं।

निष्कर्ष :

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय नागरिक समाज का विकास एक निरंतर परिवर्तनशील ऐतिहासिक

प्रक्रिया रही है। इसकी वैचारिक पृष्ठभूमि सामाजिक सहभागिता और सामुदायिक जीवन की परंपराओं से जुड़ती है तथा आधुनिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों, राष्ट्रीय आंदोलन, संविधान, लोकतांत्रिक संस्थाओं और सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से इसका विस्तार हुआ। नागरिक समाज ने लोकतांत्रिक सहभागिता, सामाजिक न्याय, अधिकार–बोध और सार्वजनिक उत्तरदायित्व को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही, सामाजिक असमानता, सीमित प्रतिनिधित्व और संसाधनों की असमानता जैसी चुनौतियाँ इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं।

सुझाव :

1. नागरिक समाज की संस्थाओं में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को मजबूत किया जाना चाहिए।
2. महिलाओं, वंचित वर्गों और ग्रामीण समुदायों की सार्थक भागीदारी बढ़ाई जानी चाहिए।
3. नागरिकों में संवैधानिक मूल्यों एवं लोकतांत्रिक चेतना के विकास के लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।
4. राज्य और नागरिक समाज के बीच संवाद एवं सहयोग की संस्थागत व्यवस्था को मजबूत किया जाना चाहिए।
5. डिजिटल माध्यमों के उपयोग के साथ विश्वसनीय सूचना और जिम्मेदार नागरिक संवाद को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. भाखरी, सविता (2002), नागरिक समाज : वैचारिक आधार एवं भारतीय संदर्भ, सोशल चेंज, 32(1–2), 117–134।
2. चंडोक, नेरा (1995), राज्य और नागरिक समाज : राजनीतिक सिद्धांत की पड़ताल, सेज पब्लिकेशन्स।
3. चंडोक, नेरा (2003), नागरिक समाज की अवधारणाएँ, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. चंडोक, नेरा (2012), भारत में नागरिक समाज, एम. एडवर्ड्स (सं.), द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ सिविल सोसाइटी (पृ. 171–182), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. चंडोक, नेरा (2013), नागरिक समाज में प्रतिनिधित्व का अभाव, भारतीय लोकतंत्र (खण्ड 2), पृ. 253–274। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. ऊमेन, टी. के. (2004), राष्ट्र, नागरिक समाज और सामाजिक आंदोलन : राजनीतिक समाजशास्त्र के निबंध, सेज पब्लिकेशन्स।
7. साहू, सरबेश्वर एवं चेनी, पॉल (सं.) (2021), भारत और बांग्लादेश में नागरिक समाज एवं नागरिकता, ब्लूम्सबरी इंडिया।
8. कोहली, अतुल (सं.) (1988), भारत का लोकतंत्र : बदलते राज्य–समाज संबंधों का विश्लेषण, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. वुड, एलेन मीक्सिन्स (1995), पूँजीवाद के विरुद्ध लोकतंत्र : ऐतिहासिक भौतिकवाद का पुनर्निर्माण, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

10. वैन रूय, एलिस (1998), नागरिक समाज और सहायता उद्योग, अर्थस्कैन।
11. हैबरमास, युर्गेन (1989), सार्वजनिक क्षेत्र का संरचनात्मक रूपांतरण, एमआईटी प्रेस।
12. ग्राम्शी, एंतोनियो, (1971), जेल नोटबुक्स से चयनित लेख, इंटरनेशनल पब्लिशर्स।
13. एडवर्ड्स, माइकल (सं.) (2011), द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ सिविल सोसाइटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
14. जेनकिंस, रॉब एवं गोएट्ज, ऐनी मैरी (2003), पक्षपात और नियंत्रण : भ्रष्टाचार, गरीबी और भारत में नागरिक समाज की सीमाएँ, एशियन पॉलिटिक्स इन डेवलपमेंट, पृ. 136–137।
15. चेनी, पॉल (2020), भारत के मोड़ पर नागरिक समाज, मानवाधिकार और धार्मिक स्वतंत्रता : नागरिक समाज संगठनों के विमर्श का आलोचनात्मक विश्लेषण, द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमन राइट्स, 24(5), 531–562।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 75-77

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

बौद्ध धर्म और शिक्षा का एक संक्षिप्त अध्ययन

रंजू कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखंड)

किसी भी राष्ट्र के निर्माण करने के लिए शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा का कार्य केवल साक्षरता से ही नहीं बल्कि शिक्षा व्यक्ति के बौद्धिक जागृति, आत्मनिर्भरता, चेतन तथा उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करती है। 500 ईसा पूर्व में शाक्य मूनी गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना किया।

बौद्ध कालीन शिक्षा के उदय के कारण –

वैदिक कालीन समय में धार्मिक प्रभाव का काफी मात्रा में हावि होना। आध्यात्मिक, यज्ञ, हवन, जप–तप पर महत्वपूर्ण बल देना। शिक्षा पर संप्रभु जाति का एकाधिकार था तथा पुरोहितवाद का जन्म हुआ। नारियों तथा शूद्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया था। उनको वेद, पुराण पढ़ने तथा सुनने से मना किया गया था। उनके मंदिरों में भी प्रवेश नहीं करने दिया जाता था। वैदिक काल में अधिकतर लोग संस्कृत भाषा का उपयोग करते थे और यह भाषा जनसाधारण की समझ से परे थी। ऐसी स्थिति में लगभग 2500 वर्ष पूर्व लगभग गौतम बुद्ध ने (563 B.C-483B.C) ने बौद्ध धर्म की स्थापना किये। बौद्ध धर्म को व्यापक हिंदू धर्म का एक विकसित स्वरूप माना जा सकता है, इसके प्रचार प्रसार के लिए बौद्ध मठों की स्थापना की गई, शुरू में इन बहारों एवं मतों का केवल एक ही लक्ष्य बौद्ध धर्म की शिक्षा प्रदान करना लेकिन कालांतर में सभी धर्म के छात्रों को इस बिहार तथा मतों में प्रवेश दिया जाने लगा। निर्माण प्राप्त करने पर अत्यधिक बल दिया जाता था निर्माण अर्थात सभी महत्वाकांक्षाओं का अंत, इस धर्म का प्रभाव 1500 BC-1200 AD तक रहा।

बौद्ध कालीन शिक्षा का उद्देश्य –

- **नैतिक चरित्र का निर्माण** – इस युग में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों में नैतिकता को विकसित करना था। क्योंकि बुद्ध कल में नैतिक आचरण पर जोर दिया जाता था इसलिए शिक्षा की मदद से छात्रों में सत्य बोलने, धर्माचरण आदि नैतिक गुना का विकास किया जाता था।
- **व्यक्तित्व का विकास** – बौद्ध मठों में विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करके उन्हें सर्वश्रेष्ठ मनुष्य बनाने का प्रयास किया जाता था ताकि वह सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांसारिक क्षेत्र के दायित्वों का निर्वाह सुव्यवस्थित रूप से कर सके।
- **बौद्ध धर्म का विकास करना** – इस समय में शिक्षण संस्थानों की स्थापना बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए की गई थी। इन संस्थानों में इस कार्य को करने के लिए बौद्ध भिक्षु तैयार किए जाते थे। इन मतों में दी

जाने वाली शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार करके लोकप्रिय बनाना था।

- **भावी जीवन के लिए तैयार करना** – बुद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था जीवनोपयोगी, जीविकोपार्जन ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था, जिससे छात्रा गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर अपना तथा अपने परिवार का सुचारू रूप से लालन–पालन कर सके।
- **ज्ञान का विकास करना** – गौतम बुद्ध का यह मानना था कि समस्त दुःखों का कारण अज्ञानता है तथा उन्होंने निर्वाण प्राप्ति में सत्य का ज्ञान के विकास पर बल दिया। वैदिक काल में वैदिक ग्रन्थों के ज्ञान को सत्य का ज्ञान माना जाता था लेकिन वर्तमान समय में समानता वस्तु जगत के स्पष्ट ज्ञान को सच्चा ज्ञान के रूप में माना जाता है।

बौद्ध धर्म तथा दर्शन कर शक्तियों को मानते हैं– संसार दुःखमय है। इन दुःखों का कारण है। इन दुःखों का निवारण करना ही निर्वाण है। निर्माण प्राप्ति के लिए जप तप ही नहीं बल्कि मनुष्य को समस्त संसार के कल्याण करना भी आवश्यक है।

शिक्षा की व्यवस्था –

प्रायः बौद्ध धर्म का विकास मठों में हुआ मानते हैं क्योंकि गौतम बुद्ध ने गृह त्याग के पश्चात् वर्षा ऋतु में ठहरने के लिये इनका प्रयोग किया था। अतः यही मठ शिक्षा के प्रमुख स्थान भी बन गये। इन मठों में भिक्षुओं को अपने सम्पूर्ण संघ के साथ दीक्षित किया जाता था। इन मठों में आध्यात्मिक एवं सांसारिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। जिस प्रकार वैदिक काल में यज्ञीय व्यवस्था के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। ठीक उसी प्रकार इस समय बौद्ध संघ के उदाहरण मिलते हैं। बौद्ध विश्व में अपने मठों से अलग स्वतन्त्र रूप से शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे। सभी प्रकार की शिक्षा (धार्मिक तथा लौकिक) श्रमणों के हाथों में केन्द्रित थी। डॉ. आर. के मुखर्जी ने लिखा है, बौद्ध मठ बौद्ध शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र थे। बौद्ध संसार अपने मठों से पृथक् या स्वतन्त्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं देता था। धार्मिक और लौकिक सब प्रकार की शिक्षा भिक्षुओं के हाथों में थी।

प्राथमिक शिक्षा : परन्तु 'जातक कथाओं' में स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा न केवल बौद्धों को बल्कि समाज के सभी बालकों के लिये अनिवार्य थी। चीनी यात्री इत्सिग के अनुसार प्रवेश की आयु 6 वर्ष निर्धारित थी। इन बालकों को प्रारम्भिक 6 माह में 'सिद्धिरस्तु' नामक बालपोथी का अध्ययन करना पड़ता था। इस पुस्तक में 12 अध्याय और 49 वर्णमाला के अक्षर होते थे तथा 16 माह के पश्चात् बालकों को निम्नलिखित विषयों– भाषा विज्ञान, तर्कशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, आध्यात्मिक शिक्षा तथा शिल्प कला का अध्ययन करना होता था। मठों में अध्ययन की सुविधा सभी वर्गों के लिए थी तथा शिक्षण भी जन–भाषा पाली में कराया जाता था। एलबर्ट किटके ने सामान्य शिक्षण विधि का वर्णन करते हुए कहा कि– "**लकड़ी की तख्ती पर लिखकर बालकों से उसका शुद्ध उच्चारण करवाया जाता था।**" अतः कह सकते हैं कि शिक्षण विधि मौखिक थी।

उच्च शिक्षा : उपर्युक्त पाँचों विषयों का प्राथमिक स्तर पर अध्ययन करने के पश्चात् बालक को उच्च शिक्षा में प्रवेश दिया जाता था। उच्च शिक्षा भी मठों में दी जाती थी। इस स्तर पर बालकों को व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, औषधि विज्ञान, धर्म आदि का अध्ययन कराया जाता था। ह्वेनसांग के अनुसार शिक्षा की दोनों विधियों– लेखात्मक एवं प्रायोगिक पर विशेष ध्यान दिया जाता था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये बौद्ध मठों में कोरिया,

चीन, जापान, जावा आदि स्थानों से बालक भारत आते थे।

नालन्दा, बल्लभी, विक्रमशिला, जगदल, ओदन्तपुरी, मिथिला और नादिया उच्च शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है –

नालन्दा : नालन्दा विश्वविद्यालय अपनी अलग पहचान बनाकर विश्व प्रसिद्ध बन गया। यह बिहार प्रान्त में राजगीर से लगभग 8 मील दूर था। जिस समय हुएनसांग (Hiuen Tsing) भारत आये उस समय लगभग 5000 भिक्षु थे। **द्वार :** पण्डित नामक प्रख्यात शिक्षक बालकों के प्रवेश के समय मौखिक परीक्षा विश्वविद्यालय के द्वार पर बैठकर लेता था। इस विश्वविद्यालय में जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैदिक धर्म, वेद, व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। परन्तु दुर्भाग्यवश एक मुस्लिम आक्रान्ता बख्तियार खिलजी ने 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इसे नष्ट कर दिया।

बल्लभी विश्वविद्यालय – यह विश्वविद्यालय पूर्वी काठियावाढ़ में वला नामक स्थान पर था। पश्चिमी भारत का प्रमुख शिक्षा केन्द्र था जो शिक्षा के लिए विश्वविख्यात था।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय – उत्तरी मगध में गंगा नदी के तट पर एक सुन्दर पहाड़ी पर स्थित इस विश्वविद्यालय में 108 भिक्षु और 3,000 छात्र थे। इसे सन् 1203 में बख्तियार खिलजी ने नष्ट कर दिया।

नदिया – पूर्वी बंगाल में नदिया नामक स्थान पर स्थित इस विश्वविद्यालय को राजा लक्ष्मण सेन के संरक्षण में चलाया जाता था। 11वीं शताब्दी में यह विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र हो गया था।

तक्षशिला – यह विश्वविद्यालय आधुनिक रावलपिण्डी से लगभग 20 मील पश्चिम में था। यह अनेक शताब्दियों तक पहले वैदिक शिक्षा फिर बौद्ध शिक्षा का केन्द्र रहा। 600 ई. पू. यह अपनी प्रसिद्धि की पराकाष्ठा पर था। राजनीतिज्ञ चाणक्य, अर्थशास्त्री कौटिल्य, बुद्ध के चिकित्सक जीवक, चन्द्रगुप्त और पुष्यमित्र इसी विश्वविद्यालय की उपज थे। पाँचवी शताब्दी में बर्बर हूणों ने इसका विनाश कर दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. लुनिया, बी. एन, प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2014
2. प्रजापत, पप्पू सिंह, प्राचीन भारत, रॉयल पब्लिकेशन, जयपुर 2019
3. श्रीवास्तव, के. सी प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद 2006
4. सहाय, शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली 2020
5. मधु पाराशर, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं विकास, साहित्य भवन, दिल्ली 2006
6. उपाध्याय, भरतसिंह, बुद्ध कालीन भारत बुद्धम पब्लिशर्स, जयपुर, 2024

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 78-81

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारत की गुरू शिष्य–परंपरा का मूलाधार 'आचार्य देवो भव'

गौरव कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।

'आचार्य' मूलतः संस्कृत का शब्द है, जिसकी शाब्दिक व्युत्पत्ति के आधार पर सामान्य अर्थ है – **यः स्वीय चरित्रेण अन्यान् शिक्षयति, सः आचार्यः।'** अर्थात जो अपने स्वयं के चरित्र और आचरण से दूसरों को शिक्षा देता है, वह आचार्य है। आचार्य स्वयं भी आचार–संहिता के पालन करते थे तथा उनमें दक्ष होते थे। इसीलिए संस्कृत में कहा गया है : **'मर्यादया चरति–गच्छति इति आचार्यः।'** प्राचीन साहित्यों के अनुसार आचार पांच हैं : ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार तथा विर्याचार। भारतीय संस्कृति एवं परंपरा में आचार्य को सर्वोपरि मानते हुए उन्हें देवतुल्य माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार– **'उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यायपेदद्विजः। कल्पं च रहस्यं च स आचार्यः प्रकीर्तितः।'** अर्थात् जो गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार करके उसे कल्प अर्थात यज्ञविद्या और रहस्य अर्थात उपनिषदों के साथ वेद पढ़ाता है, वह आचार्य कहलाता है। निरुक्त के अनुसार– **'आचार्यः आचारं ग्राहयति, आचिनोति बुद्धिमिति वा।'** अर्थात जो छात्र को अच्छे आचरण का बोध कराए और उसकी बुद्धि का आचयन यानी विकास करे, वह आचार्य है। जहाँ शिक्षक का कार्य मात्र शिक्षा देना होता हैं, वही आचार्य शिक्षा देने के साथ सम्पूर्ण जीवन की संरचना एवं संगठन को निर्देशित करता है, जो शिक्षक के कार्य से अधिक व्यापक है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन भारत में माता–पिता प्रथम शिक्षक माने जाते थे, जो ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश के पूर्व अपने बालक को आचार–व्यवहार की शिक्षा देते थे। तदोपरांत आठ वर्ष पूर्ण होने पर उपनयन संस्कार के उपरांत गुरुकुल (आचार्यकुल) प्रस्थान के साथ ही ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश होता था। उपनिषदों का कथन है कि उपनयन संस्कार के बाद बालक का दूसरा जन्म होता है, अतः वह द्विज कहलाता है। द्विज के रूप में ब्रह्मचर्य आश्रम में आचार्य ही उसके कर्ता–धर्ता माने जाते थे। आचार्य की महिमा तथा उनके महत्त्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि तैत्तिरीय उपनिषद में उन्हें देवता का स्थान प्रदान करते हुए **'आचार्य देवो भव'** कहा गया है।

गुरुकुल प्रस्थान के साथ ही ब्रह्मचारी अपने सम्पूर्ण काल (चौबीस वर्ष तक की अवधि) तक अध्ययन के लिए आचार्य कुल में ही निवास करता था। उसके लिए आचार्य गुरु और पिता की भूमिका में, उनकी पत्नी माता की भूमिका में तथा उनकी संतान एवं अन्य सहपाठी भाई–बांधव की भूमिका में होते थे। इस प्रकार गुरुकुल में निवास करने वाले ब्रह्मचारी की देखभाल आचार्य एक पिता और शिक्षक दोनों रूपों में करते थे। गुरुकुल में

आचार्य के निर्देशन में ब्रह्मचर्य के नियम का कठोरता से पालन कराया जाता था। शिक्षार्थियों की दिनचर्या गुरुकुल के निर्धारित नियम से ही संचालित होती थी। प्रातः ब्रह्म–मुहूर्त में निद्रा त्यागकर नित्य क्रियाकर्म करके योग और स्वाध्याय करना उनका प्रमुख कार्य था। तदोपरांत आचार्य द्वारा मुक्ताकाश में अध्यापन का कार्य किया जाता था। उसके बाद सुपाच्य एवं अल्पाहार भोजन के बाद अन्य निर्देशित कार्य शिक्षार्थियों के द्वारा किया जाता था।

आचार्य का ध्येय केवल विद्या देना ही नहीं अपितु राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और धर्म का समुन्नयन करना था। अतः छात्रों के जीवन में पवित्रता के संचार के लिए दोनों समय सन्ध्या–वन्दन तथा हवन का नियम बनाया गया था। गुरुजनों के प्रति आदर और सम्मान के प्रदर्शन पर जोर दिया जाता था ताकि विद्यार्थी शिष्टाचारी और सदाचारी बनें। छात्रों की चारित्रिक उन्नति के निमित्त नैतिक गुणों पर जोर दिया जाता था। गृह्यसूत्रों में आचार्य की महिमा पर विस्तार से विचार किया गया है। पारस्कर गृह्यसूत्र में यह उल्लिखित है कि आचार्य के सम्मुख जब विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण के निर्मित्त उपस्थित होता था तब आचार्य उससे पूछता था कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो। इस पर विद्यार्थी स्वभावतः उत्तर देता कि आपका ही ब्रह्मचारी हूँ। तत्पश्चात् आचार्य कहता था, **'नहीं तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, पहले अग्नि तुम्हारा आचार्य है, बाद में हम।'** फिर विद्यार्थी का दायाँ हाथ ग्रहण कर आचार्य उसे शिष्य के रूप में स्वीकार करते हुए कहता था– **'मैं सविता की आज्ञा से तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर रहा हूँ।'** तदनन्तर विद्यार्थी के हृदय पर अपना हाथ रखकर आचार्य यह कहता था, **'तुम्हारे और हमारे बीच सर्वदा प्रेम और विश्वास रहे।'** सत्यकाम जाबाल स्वयं आचार्य हारिद्रमत गौतम के कुल में अन्तेवासी बनकर ज्ञान–प्राप्ति के निमित्त गया था। उपनिषद् में विवृत है कि उसका उपनयन संस्कार करके चार सौ कृश और दुर्बल गौओं को पृथक् निकालकर आचार्य ने उससे कहा था कि वह इन गौओं का अनुसरण करे अर्थात, जहाँ–जहाँ ये गोएँ चरती हुई जायें, वह उनके पीछे–पीछे रहकर उनकी रक्षा करे। गुरु ने उन गौओं को ले जाते हुए सत्यकाम से कहा था, जब तक ये गौएँ एक सहस्त्र न हो जायें तब तक वह न लौटे। तदनन्तर सत्यकाम कई वर्षों तक उन गौओं को चराते और सेवा करते हुए प्रवास में ही रहा, जबकि वे गौएँ एक सहस्त्र नहीं जो गई। आचार्य की आज्ञा का नतमस्तक होकर अक्षरशः पालन करने का यह अद्वितीय उदाहरण है। स्पष्ट है कि शिष्य अपने आचार्य के आदेश का सर्वदा पालन करने का प्रयास करता था।

वैदिक युग से आचार्य अथवा गुरु का स्थान देवता के रूप में अत्यन्त आदरयुक्त, गरिमामय और प्रतिष्ठित था। ऋग्वेद में इन्द्र और अग्नि जैसे देवताओं को गुरु अथवा आचार्य के रूप में उल्लिखित किया गया है जो 'विश्ववेदा' (सर्वज्ञ), 'सत्यमन्या' (सत्य जाननेवाला), 'विश्वानि वयुनानि विद्वान्' (विभिन्न विद्याओं में पारंगत), जैसे अनेक विशेषताओं से अभिहित हैं। अग्नि का आचार्य अंगिरा के रूप में अवतरण हुआ था। इन्द्र की भी गुरु के रूप में प्रतिष्ठा थी। वस्तुतः ऋग्वैदिक आचार्य दिव्य और अलौकिक ज्ञान के प्रतीक थे। ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति और समाज को शिक्षित ही नहीं करता था बल्कि बौद्धिक और आध्यात्मिक ज्ञान में भी पारंगत करता था। वह अज्ञान के तिमिर से छाल को ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश में लाता था। वस्तुतः ज्ञानरूपी दीपक आवृत रहता है। गुरु दीपक के उस आवरण को हटाकर ज्ञान की किरणें विकीर्ण कर देता है। निश्चय ही गुरु अपनी शिक्षा से

शिष्य के अंतम् में उद्दीप्त दीपक को अनावृत्त करके ज्ञान की किरणें फैलाता है। यह उसका अद्वितीय योग होता है। इसलिए प्राचीन काल से गुरु की अपार महिमा थी। समाज में उसकी स्थिति सर्वोच्च थी। वह आदर का ही पात्र नहीं बल्कि पुन्य भी था। उसमें अग्नि और इन्द्र की तेजस्विता और वीरता थी। वह देवता के सदृश था और 'पुरुप्रिय' (लोकप्रिय) था। इसीलिए उसके लिए कहा गया था कि आचार्य देवता है। यह सही बात है कि अच्छे आचार्य के सम्पर्क से मनुष्य को सच्चे अर्थों में ज्ञान की प्राप्ति होती थी। आचार्य के व्यक्तित्व और उसके ज्ञान से ही आचार्य–कुल का मान था। इसलिए आचार्य का परम विद्वान् और 'धियावसु' होना अपेक्षित था। अध्यापन के कारण वह स्तुत्य था। प्रायः वह अपने चिरसंचित ज्ञान और विद्या से अपने उत्तराधिकारी पुत्र को अवगत करा देता था, जो उसके न रहने पर समाज में उसकी ज्ञान–गरिमा की परम्परा को बनाए रखता था। इस प्रकार समाज में आचार्य की प्रतिष्ठा और गरिमा शनैः शनैः बढ़ती गईय वह माता–पिता के समकक्ष माना गया। बाद में आकर समाज में उसका स्थान पिता से भी बढ़कर हो गया।

प्राचीन भारत में आचार्यत्व का प्रधान आधार विद्वत्ता थी, न कि वर्ण अथवा जाति। उत्तरवैदिक युग के उपनिषद्–काल के ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब त्रिय विद्वानों ने अन्य लोगों के अतिरिक्त ब्राहाणों को शिक्षा प्रदान की थी। आचार्य ब्राह्मण ही हों, उस युग में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। उस युग के अनेक क्षत्रिय शासकों ने विद्वान् ब्राह्मणों को अपना अन्तेवासी स्वीकार किया था तथा उनकी जिज्ञासा का समाधान किया था। विदेह का शासक जनक, काशी का शासक अजातशत्रु, केकय नरेश अश्वपति, पंचाल नृर्यात प्रवाहण जैबलि, सनत्कुमार, सम्राद प्रतद्रन, जानन्ति पौत्रायण, बृहद्रथ आदि ऐसे क्षत्रिय राजा थे जो ज्ञान और दर्शन के अप्रतिम विद्वान थे और जिन्होंने अनेक ब्राह्मण आचार्यों को अध्यात्म ज्ञान से अवगत कराया था।

गुरू की शिष्य के प्रति सदा अभिन्नता रहती थी। यह शिष्य के साथ पुत्रवत् व्यवहार करता था। शिष्य के प्रति उसकी पत्नी मधुर और कोमल होती थी। लक्ष्मीधर ने आपस्तम्ब को उद्धृत करते हुए लिखा है कि अध्यापक अपने शिष्य को पुत्र के समान स्नेह करता था और उसकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखता था। कोई भी अध्यापक विद्या को छिपाता नहीं था, बल्कि वह उसे धरोहर समझता था। सभी शिष्यों को समान दृष्टि से स्नेह करता और विद्यार्जन कराता था। कादम्बरी से विदित होता है कि चन्द्रापीड़ के प्रति गुरूजनों का स्नेह–भाव था। वैसे, महाकाव्यों के उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि आचार्य अपने शिष्यों का सदा ध्यान रखता था। वाल्मीकि अपने शिष्य लव और कुश के हित की सर्वदा चिन्ता करते थे। भारद्वाज का अपने शिष्य द्रोण और द्रुपद के प्रति अपार स्नेह भाव था।आचार्य का स्थान सर्वोपरि था। इस बात कि पुष्टि इस तथ्य से होती है कि शिष्य द्वारा अपने आचार्य का पर्क्षतः नाम लेना भी अपराध कि श्रेणी में आता था। उन्हें शिष्य सदैव 'भगवन्' 'श्री' या 'आचार्य' कहकर सम्बोधित करता था।

इस प्रकार यह कहना विशेष रूप से तर्कसंगत होगा कि प्राचीन काल में आचार्य राष्ट्र की रीढ़ होते थे। राष्ट्र की उन्नति का सबसे प्रमुख दायित्त्व उनके ऊपर ही था। प्राचीन काल में भारत यदि विश्वगुरु था तो इसका एक बड़ा श्रेय प्रमुख आचार्यों को जाता है। आचार्य वशिष्ठ, विश्वामित्र, चाणक्य जैसी महान भारतीय गुरुओं का लोहा संपूर्ण विश्व मानता है। वर्तमान समय में भी भारत को विश्वगुरु बनने की दिशा में आचार्य (शिक्षक तथा

विद्वान) की भूमिका सर्वप्रमुख हो सकती है। इसके लिए समाज और राष्ट्र को विशिष्ट शिक्षकों का चयन करना होगा जो वास्तव में 'आचार्य देवो भव' के वाक्य को सार्थक कर सकें तथा भारत प्रत्येक क्षेत्र में सबल और सशक्त बने।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अल्टेकर, अनंत सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित, 2014.
2. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1999.
3. कृष्णकुमार, प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली, सरस्वती सदन, इलाहाबाद, 2000.
4. बाशम, ए. एल., अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, 2000.
5. मजूमदार, आर.सी., प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित, 2002.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 82-92

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

The Fear of Missing Out in Digital Marketing : The Interplay of Consumer Culture, Social Influence and Purchase Urgency in Shaping Consumer Buying Behaviour

Ashwani Kumar Srivastava

Asst. Prof., Department of Business Management.

Constituent College (Sultanpur), Dr. Ram Manohar Lohiya Avadh University Ayodhya. UP

Abstract :

Social media and online shopping are now part of daily life, and people constantly see what others are buying, doing and recommending. In this setting, the fear of missing out, the worry that a good opportunity will be gone if you do not act fast, has started to shape what people buy. This paper looks at how consumer culture, social influence and purchase urgency work together to create that worry and turn it into buying. It uses a descriptive and analytical approach based on secondary research from peer-reviewed sources. The paper shows how scarcity messages, influencer posts, online word of mouth and trending content create a feeling of urgency that shortens the decision process and makes impulse purchases more likely. It also looks at the downsides of urgency-based marketing, such as consumer fatigue, regret after buying, and lost trust when scarcity seems fake. The findings suggest that this kind of anxiety can lift short-term sales, but its long-term value depends on honesty, transparency and a good understanding of how different groups of consumers react to social and time pressure.

Keywords :

Fear of Missing Out, Consumer Psychology, Social Influence, Purchase Urgency, Consumer Buying Behaviour, Impulse Buying, Digital Marketing, Electronic Word of Mouth

Introduction :

Over the past ten years, the way people meet the market has changed a great deal. Earlier generations found products through shop windows, print ads and advice from neighbours. Today people get a steady flow of commercial messages through phones, social feeds and recommendation engines. Someone scrolling Instagram before breakfast might see three influencer endorsements, two flash-

sale alerts, a friend's unboxing video and a "trending now" list before the coffee is finished. Each one carries the same quiet message: other people are buying and enjoying something you are not. This constant pressure has made a psychological idea, the fear of missing out, important for both researchers and businesses. In simple terms, it is the uneasy feeling that others are having rewarding experiences, such as a deal, a product or a cultural moment, without you. In marketing management, though, the idea has more layers. It touches consumer psychology (why do people worry about missing out?), social influence (what sets off that worry?), consumer culture (why does keeping up feel necessary?) and marketing strategy (how do brands use these feelings to sell?). This matters for a few reasons. For marketers, it explains why countdown timers, low-stock warnings and exclusive drops get so much attention. For scholars, it raises the question of how classic decision-making theories hold up when people compare themselves with others all the time and have little time to decide. This paper asks how consumer culture, social influence and marketing-driven urgency combine to shape buying behaviour, with the fear of missing out as the link between them. It draws on existing academic literature to build a conceptual picture of these relationships and to consider what they mean for marketing practice and for consumers.

Objectives of the Study :

The study pursues the following objectives :

1. To examine how the fear of missing out affects consumer buying behaviour in digital marketplaces.
2. To study how social influence, including peer behaviour, influencer endorsements and electronic word of mouth, triggers and strengthens purchase-related anxiety.
3. To analyse how marketing-driven urgency, created through scarcity cues and time-limited offers, leads to impulse buying.
4. To explore how digital consumer culture and trend following create conditions where the fear of missing out can appear and last.
5. To assess the ethical issues and practical limits of urgency-based digital marketing.

Research Questions :

- **Research Question 1 :** How does the fear of missing out influence consumer buying behaviour in digital environments?
- **Research Question 2 :** How do social influence and electronic word of mouth contribute to purchases driven by the fear of missing out?
- **Research Question 3 :** How does marketing-driven urgency lead to impulse buying?
- **Research Question 4 :** What role does digital consumer culture play in creating and

strengthening the fear of missing out?

- **Research Question 5 :** What are the limits and ethical concerns of marketing that deliberately uses the fear of missing out?

Literature Review :

- ***The Fear of Missing Out and Consumer Psychology :***

Przybylski and colleagues (2013) gave the first widely used definition of the fear of missing out as a general worry that others are having rewarding experiences you are missing. The concept was first studied in connection with social media use and wellbeing. Researchers soon saw that the same mechanisms, namely social comparison, loss aversion and the need to belong, also work when people shop. Consumers fear missing more than social events. They fear missing deals, products and cultural moments, along with the recognition that comes from owning something seen as desirable (Good & Hyman, 2020). Several well-known theories sit behind this anxiety. Festinger's (1954) social comparison theory explains why people judge their own choices by what others do. Kahneman and Tversky's (1979) prospect theory explains why losing an opportunity feels stronger than the gain from taking time to think it over. Baumeister and Leary's (1995) belongingness hypothesis explains why being left out of a trend carries emotional weight beyond the product itself. Together they suggest that this fear is more than a passing reaction to an ad. It is a deeper weakness, and digital environments are well placed to use it.

- ***Consumer Culture and Trend Following :***

Digital consumer culture has made it normal to perform for an audience. What people buy, wear, eat and do is increasingly meant to be seen. Social platforms reward this with likes, comments and shares, which creates feedback loops that tie buying to identity and social belonging. Arnould and Thompson (2005) described consumer culture as the web of meanings and practices through which people express who they are. In this culture, following trends is less about personal taste and more about staying socially relevant. Kastanakis and Balabanis (2012) separated "bandwagon" consumption, driven by the wish to fit in, from "snob" consumption, driven by the wish to stand out. Here the bandwagon effect dominates. People buy not because they have judged a product's quality themselves, but because they believe enough others have already bought it, so not buying starts to feel odd. Social media speeds this up by shortening the time between a trend appearing and reaching its peak, so people have less time to join in.

- ***Social Influence and Electronic Word of Mouth :***

The channels that carry social influence have multiplied. Traditional word of mouth passed between people who knew each other. Electronic word of mouth, defined by Hennig-Thurau and

colleagues (2004) as any positive or negative statement made by potential, actual or former customers over the Internet, works at much greater scale and speed. One review can reach millions of people. An influencer's post can change purchase intentions within hours. A trending hashtag can make people want a product they had never heard of the day before. These channels are especially strong because they stack on top of each other. A shopper might find a product through an influencer post (parasocial influence), see friends talking about it in the comments (peer influence), read good reviews on a retail site (informational influence) and notice a "bestseller" badge on the listing (statistical social proof), all in one browsing session. Cheung and Thadani (2012) noted that the combined effect of several electronic word of mouth sources is greater than the sum of each exposure, producing a sense of consensus that can feel overwhelming. For people who already compare themselves with others, the message is clear: everyone is buying this and you are falling behind.

- ***Purchase Urgency and Scarcity Marketing :***

Marketers have long known that scarcity raises perceived value. Brock's (1968) commodity theory held that a commodity becomes more attractive the less available it is. Digital marketing puts this into practice with simple interface tactics: countdown timers that shorten the decision window, low-stock notices that signal a product may soon be gone, flash sales that reward speed over thought, and exclusive access codes that split customers into insiders and outsiders. Aggarwal and colleagues (2011) found that demand-driven scarcity ("selling fast") persuades more than supply-driven scarcity ("we only made a few"), because it signals both urgency and popularity, joining loss aversion and social proof in one message. The effect is a shorter decision timeline. Shoppers who might have spent days comparing options feel pushed to act within minutes. Rook and Fisher (1995) observed that this kind of situational urgency can trigger impulse purchases even in people who do not see themselves as impulsive, which suggests that the environment matters as much as the person.

- ***The Fear of Missing Out and Impulse Buying :***

The link between purchase anxiety and impulse buying is neither automatic nor the same for everyone. Several studies find a positive association, and Iyer and colleagues (2020) identified time pressure and arousal as key moderators of impulse purchasing, but the strength of the link changes across product types, demographics and cultures. Someone worried about missing a limited-edition sneaker release may act very differently from someone who sees a flash sale on cleaning products. The evidence does suggest that this fear lowers the bar for action. It speeds up the move from existing interest to purchase by cutting short the evaluation stage. When social proof is strong, scarcity is obvious and the window feels narrow, people tend to skip the comparison they would normally do and go straight to buying. This fits Kahneman's (2011) distinction between System 1 (fast, intuitive) and

System 2 (slow, deliberate) thinking. Urgent settings push people toward System 1.

Conceptual Framework :

Based on the literature, this study proposes the following pathway. Digital consumer culture, with its visible, performative consumption and constant social comparison, makes trend following normal and gives social conformity real effects on what people buy. Within this setting, social influence (peer behaviour, influencer endorsements, online community participation) and electronic word of mouth (reviews, ratings, user-generated content) act as amplifiers. They show which products and experiences are socially desirable and which others are adopting quickly.

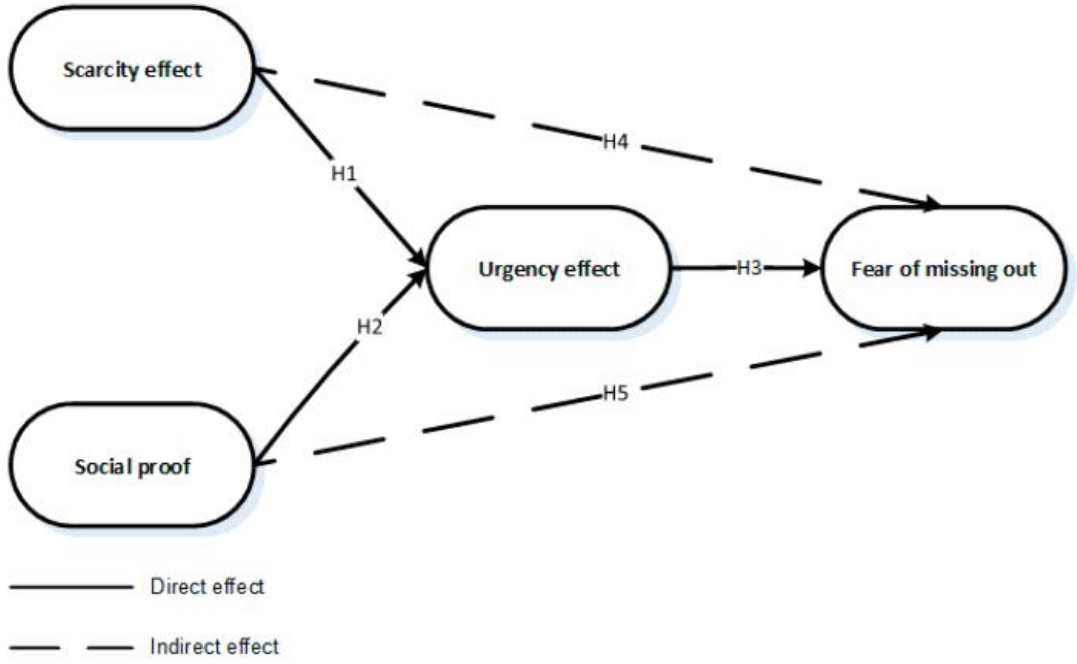


Figure 1 : *Conceptual Framework: From Scarcity Cues and Social Proof to the Fear of Missing Out (Dual-Mediation Model)*

Source : Pal, S., & Milfelner, B. (2026). From Scarcity Cues and Social Proof to FoMO: A Dual-Mediation Model of Urgency in Consumer Decision-Making. Behavioral Sciences, 16(7), 1250. CC BY 4.0.

Link: https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC13404449/

The path from the fear of missing out to purchase is not fixed. It depends on brand trust (people respond more to urgency cues from brands they trust), price sensitivity (high-price, high-involvement purchases are less open to impulse triggers), consumer involvement (enthusiasts react differently from casual buyers) and product category (fashion and technology show a stronger pull from the fear of missing out than everyday utility goods). These factors help explain why urgency-based marketing does not work equally well for every segment or market.

Research Methodology :

This study uses a descriptive and analytical design based on secondary data from peer-reviewed journal articles, academic books, established consumer behaviour studies and reputable marketing research reports. Secondary research suits the aim, which is to bring together what is already known about the fear of missing out, social influence, consumer culture, purchase urgency and buying behaviour, not to collect new data.

Sources were found through searches of Google Scholar, JSTOR and ScienceDirect, using keyword combinations tied to the main constructs. Priority went to peer-reviewed articles in recognised marketing and consumer behaviour journals, along with classic works in social psychology and behavioural economics where they supported the theory.

The analysis is thematic, not statistical. Findings from earlier studies were compared to find consistent patterns, disagreements and gaps in the evidence. No original surveys or interviews were carried out.

Data Presentation :

Table 1 : *Digital Marketing Stimuli Associated with the Fear of Missing Out and Consumer Buying Behaviour*

Digital Marketing Stimulus	Psychological Mechanism	Consumer Response	Likely Behavioural Outcome
Limited-Time Offer	Time pressure, loss aversion	Increased urgency, reduced deliberation	Faster purchase decision
Low Stock Notification	Scarcity perception	Fear of product unavailability	Immediate purchase intention
Influencer Recommendation	Parasocial trust, social proof	Increased desirability	Product consideration or purchase
Viral Product Content	Social comparison, bandwagon effect	Desire to participate in trend	Trend-following purchase
Online Reviews and Ratings	Electronic word of mouth, informational validation	Reduced uncertainty	Higher purchase confidence
Exclusive / Early Access	Perceived uniqueness, in-group signalling	Fear of exclusion	Increased willingness to purchase

Table Interpretation : The table links the main digital marketing stimuli that the literature associates with the fear of missing out to the psychological mechanisms behind them, the consumer responses they tend to produce and the behaviour most often reported in studies. Three points stand out. First, stimuli that combine time pressure with social proof, such as limited-time offers promoted

by influencers, tend to produce the strongest urgency, which matches Aggarwal and colleagues' (2011) finding on demand-driven scarcity. Second, different stimuli work through different psychological channels. Some trigger loss aversion (scarcity), some trigger social comparison (viral content) and some reduce uncertainty (reviews). Third, outcomes range from faster decisions to outright impulse buying, so the link between a stimulus and a consumer's action is a matter of degree, not a yes or no.

Analysis and Discussion :

The evidence suggests that the fear of missing out is not an isolated psychological event. It is better seen as the result of a system in which consumer culture, social influence and marketing strategy interact to produce a particular emotional and mental state, marked by expected regret, anxiety about comparison and a squeezed sense of time. To see why people act on this state, we need to look at what each part of the system contributes.

Consumer culture sets the background. When consumption is performative and visible, buying is never only practical. It is also a way of communicating. Buying the "right" product signals membership, taste and awareness, while not buying, or buying too late, signals the opposite. This turns a simple purchase into a social act with consequences for reputation, and that is what makes the fear of missing out meaningful instead of trivial.

Social influence supplies the content. Through peers, influencers, online reviews and user-generated content, consumers get a steady stream of information about what is desirable, popular and worth adopting. Meeting the same product through several channels in a short time creates a sense of consensus that can override personal doubt. When a shopper sees an influencer recommend a product, a friend buy it and a retailer call it a bestseller, the combined message is stronger than any one source: this is what people like you are doing right now.

Marketing-driven urgency turns all of this into action. Social influence and consumer culture create desire and anxiety, but urgency is what converts them into a purchase. Countdown timers, low-stock alerts, flash sales and exclusive-access windows shorten the decision timeline and leave less room for comparing options or thinking things over. As the impulse buying literature shows, the result is faster and less considered buying, especially among people whose arousal has already been raised by social and cultural cues.

Electronic word of mouth ties these pieces together. It is a channel of social influence (friends and peers sharing opinions), a sign of consumer culture (what is trending and valued) and a trigger of urgency (reviews piling up, products selling out as real-time user reports confirm). Because it does all three at once, it is a strong amplifier of purchase anxiety.

The analysis must also consider the limits and risks of marketing built on the fear of missing

out. Not all urgency cues work equally well, and not all consumers react the same way. Research on consumer scepticism suggests that when scarcity looks artificial, such as a countdown timer that resets, a "limited edition" that is restocked or a "last chance" email that arrives every week, people may feel reactance instead of urgency, which leads to distrust and disengagement (Cialdini, 2009). Regret after buying is another documented result. Consumers who buy on impulse under urgency pressure are more likely to return products, leave negative reviews and engage less with the brand later. There is also an ethical side that responsible marketers cannot ignore. Deliberately stirring up anxiety, especially in younger or more vulnerable groups, to drive sales raises questions about where legitimate persuasion ends.

Major Findings :

Based on the literature and analysis, the following findings emerge :

1. The fear of missing out is activated most effectively when social proof and perceived scarcity work together, creating both a wish to conform and a fear of losing access.
2. A consumer culture built on visible, performative consumption makes people more open to purchase anxiety because it attaches social consequences to buying decisions.
3. Electronic word of mouth works as a multi-channel amplifier. It delivers social influence, cultural signals and urgency cues at once, which makes it especially strong in this pathway.
4. Urgency created by scarcity marketing shortens decision timelines, moves consumers from deliberate to intuitive thinking and raises the chance of impulse purchases.
5. Tactics built on the fear of missing out are not equally effective. Their results depend on brand trust, product category, price sensitivity and individual differences in impulse buying.
6. Artificial scarcity can cause reactance, distrust of the brand and regret after buying, so urgency tactics bring smaller returns when overused or seen as fake.
7. Younger, digitally native consumers show higher baseline susceptibility to the fear of missing out, though it is not limited to any one age group.

Managerial and Marketing Implications :

The findings have several implications for marketers. First, the evidence supports using social proof and scarcity cues, with one condition. They work best when they reflect real conditions, such as actual limited stock, real-time purchase activity and genuine influencer enthusiasm. When consumers feel an urgency cue is manufactured, the effect can reverse and damage the trust that later marketing depends on.

Second, marketers should see electronic word of mouth as more than a promotional channel. It is a social system that shapes how people judge a product's appeal, relevance and availability. Investing

in user-generated content, community engagement and genuine influencer relationships is likely to produce longer-lasting effects than interface-level urgency tricks alone.

Third, brands should think about what happens after an urgency-driven sale. A customer who buys on impulse and regrets it may return the product, leave a bad review and drift away from the brand. Good marketing of this kind does not just make a sale. It makes a sale the customer still feels good about later. That takes a careful balance between creating real excitement and exploiting vulnerability.

Finally, ethics deserves direct attention from managers. As regulators look more closely at "dark patterns" in digital interfaces, brands that depend on deceptive urgency face reputational and legal risk. Being honest about stock levels, expiry dates and what exclusivity means is the right thing to do and also sound strategy.

Conclusion :

The fear of missing out is not an isolated psychological quirk. It is the result of a digital consumption system in which consumer culture, social influence and marketing strategy together produce a lasting worry about being left behind. In this system, buying is more than a transaction. It is a way of taking part socially, and not buying risks looking excluded.

This paper has traced how this anxiety develops and turns into buying. Consumer culture sets the norm that people should know about trends and respond to them. Social influence, amplified by electronic word of mouth and influencer channels, shows which products and experiences are in demand right now. Marketing-driven urgency, delivered through scarcity cues, time limits and exclusivity messages, gives the final push that turns anxiety into action, often skipping the careful thinking people would otherwise do.

The evidence suggests this pathway is real, significant and increasingly well documented, but it has limits. Many consumers grow sceptical of, resist or resent tactics they see as manipulative. The long-term future of marketing built on the fear of missing out therefore depends less on how well brands can create anxiety and more on how honestly they can offer real value, real scarcity and real social relevance, so that consumers respond because they want to and not only because they feel pressured.

Limitations and Future Research :

This study relies on secondary research and includes no original empirical data, which limits how specific and how causal its conclusions can be. Most of the studies it draws on come from Western, digitally mature markets, so the findings may not carry over directly to places with different attitudes toward consumption, conformity and social comparison. Age differences in this fear were

noted but not examined in depth, and neither were platform-specific effects. The fear of missing out on TikTok probably differs from what people feel on LinkedIn or Amazon.

Future research could use longitudinal studies to track how buying driven by the fear of missing out changes over time, experiments that separate the effects of different stimuli (scarcity, social proof and time pressure), and cross-cultural comparisons to test whether this pathway holds in collectivist and individualist societies. Qualitative research on how consumers describe their own purchase-related anxiety would add to the mostly quantitative evidence. Studies of platform-specific effects are also needed, especially on short-form video and social commerce, which now take up so much consumer attention.

References :

- Aggarwal, P., Jun, S. Y., & Huh, J. H. (2011). Scarcity messages: A consumer competition perspective. Journal of Advertising, 40(3), 19–30.
- Arnould, E. J., & Thompson, C. J. (2005). Consumer culture theory (CCT): Twenty years of research. Journal of Consumer Research, 31(4), 868–882.
- Baumeister, R. F., & Leary, M. R. (1995). The need to belong: Desire for interpersonal attachments as a fundamental human motivation. Psychological Bulletin, 117(3), 497–529.
- Brock, T. C. (1968). Implications of commodity theory for value change. In A. G. Greenwald, T. C. Brock, & T. M. Ostrom (Eds.), Psychological foundations of attitudes (pp. 243–275). Academic Press.
- Cheung, C. M. K., & Thadani, D. R. (2012). The impact of electronic word-of-mouth communication: A literature analysis and integrative model. Decision Support Systems, 54(1), 461–470.
- Cialdini, R. B. (2009). Influence: Science and practice (5th ed.). Pearson.
- Festinger, L. (1954). A theory of social comparison processes. Human Relations, 7(2), 117–140.
- Good, M. C., & Hyman, M. R. (2020). Fear of missing out: Antecedents and influence on purchase likelihood. Journal of Marketing Theory and Practice, 28(3), 330–341.
- Hennig-Thurau, T., Gwinner, K. P., Walsh, G., & Gremler, D. D. (2004). Electronic word-of-mouth via consumer-opinion platforms: What motivates consumers to articulate themselves on the Internet? Journal of Interactive Marketing, 18(1), 38–52.
- Iyer, G. R., Blut, M., Xiao, S. H., & Grewal, D. (2020). Impulse buying: A meta-analytic review. Journal of the Academy of Marketing Science, 48(3), 384–404.

- Kahneman, D. (2011). Thinking, fast and slow. Farrar, Straus and Giroux.
- Kahneman, D., & Tversky, A. (1979). Prospect theory: An analysis of decision under risk. Econometrica, 47(2), 263–292.
- Kastanakis, M. N., & Balabanis, G. (2012). Between the mass and the class: Antecedents of the "bandwagon" luxury consumption behavior. Journal of Business Research, 65(10), 1399–1407.
- Pal, S., & Milfelner, B. (2026). From scarcity cues and social proof to FoMO: A dual-mediation model of urgency in consumer decision-making. Behavioral Sciences, 16(7), 1250. https://doi.org/10.3390/bs16071250
- Przybylski, A. K., Murayama, K., DeHaan, C. R., & Gladwell, V. (2013). Motivational, emotional, and behavioral correlates of fear of missing out. Computers in Human Behavior, 29(4), 1841–1848.
- Rook, D. W., & Fisher, R. J. (1995). Normative influences on impulsive buying behavior. Journal of Consumer Research, 22(3), 305–313.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 93-98

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

गांधी : सामाजिक क्रांति के सूत्रधार

डॉ. सुनीति कुमारी
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश :

महात्मा गांधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के महान नेता होने के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन के भी प्रमुख सूत्रधार थे। उन्होंने स्वतंत्रता को केवल विदेशी शासन से मुक्ति के रूप में नहीं देखा, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मुक्ति के व्यापक अर्थ में समझा। गांधी के सामाजिक दर्शन का आधार सत्य और अहिंसा था। उन्होंने सत्याग्रह को अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का प्रभावी साधन बनाया। अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका अभियान भारतीय सामाजिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक था। उन्होंने दलितों के सम्मान, मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक संसाधनों पर समान अधिकार और शिक्षा के विस्तार पर बल दिया। महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी देकर उन्होंने भारतीय राजनीति और समाज में उनकी भूमिका का विस्तार किया।

गांधी ने ग्राम स्वराज, स्वदेशी, खादी, चरखा और ग्रामोद्योग को आर्थिक तथा सामाजिक आत्मनिर्भरता का माध्यम माना। उनकी नई तालीम की अवधारणा शिक्षा को श्रम, उत्पादन और नैतिक मूल्यों से जोड़ती थी। वे श्रम की प्रतिष्ठा के समर्थक थे तथा समाज में व्याप्त ऊंच–नीच और श्रम के प्रति हीन भावना को समाप्त करना चाहते थे। सर्वोदय और अंत्योदय की अवधारणाओं के माध्यम से उन्होंने समाज की अंतिम व्यक्ति के कल्याण को सामाजिक विकास का आधार बनाया। 1917 ई० का चंपारण सत्याग्रह गांधी के सामाजिक चिंतन का महत्वपूर्ण उदाहरण है। चंपारण में किसानों की समस्याओं के समाधान के साथ–साथ शिक्षा, स्वच्छता और सामाजिक जागरण के कार्यक्रम चलाए गए। भितिहरवा आश्रम और उससे जुड़े रचनात्मक कार्यो ने गांधी के सामाजिक पुनर्निर्माण के विचार को व्यवहारिक रूप प्रदान किया। इससे स्पष्ट होता है कि गांधी के लिए राजनीतिक आंदोलन और सामाजिक सुधार एक–दूसरे से अलग नहीं थे। इस प्रकार गांधी की सामाजिक क्रांति का स्वरूप बहुआयामी था। सत्य, अहिंसा, समानता, स्वावलंबन, श्रम की प्रतिष्ठा, सर्वधर्म समभाव, ग्राम स्वराज और सर्वोदय उनके सामाजिक चिंतन के प्रमुख आधार थे। गांधी ने भारतीय समाज को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना नहीं सिखाया, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और नैतिक समाज के निर्माण की दिशा भी दिखाई। इसलिए गांधी को आधुनिक भारत में सामाजिक क्रांति का महत्वपूर्ण सूत्रधार कहा जा सकता है।

मुख्य शब्द : गांधी, सामाजिक क्रांति, सत्य, अहिंसा, चंपारण, भितिहरवा।

परिचर्चा :

भारतीय इतिहास में महात्मा गांधी का स्थान केवल एक स्वतंत्रता सेनानी, राजनीतिक चेतना अथवा राष्ट्रपिता के रूप में ही नहीं है, बल्कि वे भारतीय सामाजिक क्रांति के प्रमुख सूत्रधार भी थे। गांधी ने भारतीय समाज की उन गहरी समस्याओं को पहचाना, जो सदियों से सामाजिक जीवन को प्रभावित करती रही थीं। विद्वानों का मत है कि भारत में मुस्लिम शासन से सामाजिक कुरीतियों का बीजारोपण हुआ। ब्रिटिश शासनकाल के आरंभ से ही, यहां दास–प्रथा, सती–प्रथा, कन्या–वध, बाल विवाह, नरबलि, छुआछूत जैसी सामाजिक कुरीतियां प्रचलित थी। ब्रिटिश शासको ने दास–प्रथा, सती–प्रथा एवं नर–बलि का तो उन्मूलन कर दिया। लेकिन, सांप्रदायिकता का बीज बोकर, उसने भारत की एकता को सदा के लिए समाप्त कर दिया। दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद और अन्य महापुरूषों ने सामाजिक एवं धार्मिक सुधार हेतु आंदोलन चलाए। बीसवीं सदी के द्वितीय दशक में गांधी ने कांग्रेस की बागडोर को अपने हाथों में लिया और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का मसीहा बनकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की गति को बढ़ाया और अंत में 15 अगस्त, 1947 ई० को उन्हें सफलता मिली, जब दिल्ली के लाल किले पर तिरंगा झंडा फहराया गया। गांधी एक दार्शनिक और राजनीतिक के साथ, एक महान समाज सुधारक भी थे। उनका विचार था कि स्वतंत्रता की प्राप्ति समाजसुधार के अभाव में संभव नहीं है। अतः उन्होंने राजनीति में रचनात्मक सामाजिक सुधार का कार्यक्रम चलाया।

गांधी के सामाजिक विचार :

1. वर्ण व्यवस्था

वर्ण–व्यवस्था का समर्थक – गांधी भारतीय संस्कृति के कट्टर पुजारी थे। प्राचीनकाल से चली आ रही वर्ण व्यवस्था का खण्डन और मण्डन, भारत के अनेक समाज सुधारकों ने समय–समय पर किया है। स्वामी दयानंद ने वर्ण–व्यवस्था की भर्त्सना की है और इसके समूल विनाश के लिए देश के कोने–कोने में शंखनाद किया है। दूसरी और, महात्मा गांधी ने वर्ण–व्यवस्था का समर्थन किया है। उनके अनुसार समाज में केवल चार वर्ण होने चाहिए– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। एक वर्ण में उत्पन्न हुए व्यक्ति को अपना ही व्यवसाय करना चाहिए। इस प्रकार, गांधी वर्ण–व्यवस्था को बनाए रखना चाहते थे। उनका मत था कि इसका आधार जन्म ही होना चाहिए, कर्म नहीं। उनकी दृष्टि में वर्ण–व्यवस्था एक वैज्ञानिक व्यवस्था है और वंशानुक्रम का नियम एक शाश्वत नियम है। मनुष्यों के द्वारा अपना पैतृक व्यवसाय छोड़ देने पर समाज में भारी और अव्यवस्था फैल जाएगी।

गांधी ने वर्ण–व्यवस्था की जो व्याख्या की है, उससे निम्न तीन बातें सामने उभर कर आती हैं :

पहला, इस सिद्धांत के अनुसार सब कार्यों, उद्योगों या व्यवसायों में समानता तथा ऊंच–नीच का कोई भेद नहीं होना चाहिए।

दूसरा, वंशानुगत और परम्परागत कार्य या व्यवसाय को व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविका का साधन तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन समझा जाना चाहिए।

तीसरा, समाज में इस सिद्धांत का पालन किए जाने के लिए विभिन्न कार्यों या व्यवसायों से प्राप्त होने

वाले लाभों में अधिक–से–अधिक समानता होनी चाहिए।

2. अस्पृश्यता :

अस्पृश्यता भारतीय समाज का एक अति प्राचीन कोढ़ है। यह अस्पृश्यता वर्ण–व्यवस्था की एक कड़ी है। नानक, कबीर, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद जैसे महान व्यक्तियों ने अस्पृश्यता का जमकर विरोध किया। 20वीं सदी में महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए अथक परिश्रम किया और अनेक रचनात्मक कार्यक्रम चलाये। उनका कथन था कि अस्पृश्यता निवारण के अभाव में स्वराज संभव नहीं है। इसीलिए, उन्होंने अपनी राजनीति का इसे एक अंग बनाया। गांधी के अनुसार अस्पृश्यता का उद्‌भव धर्म से नहीं, बल्कि मनुष्य से हुआ है। यह एक मानवकृत समस्या है। उनका कथन है कि यह एक कृत्रिम चीज है। इसका लोगों के बौद्धिक विकास या नैतिक विकास से कोई संबंध नहीं है। गांधी के शब्दों में "अस्पृश्यता का मौलिक उद्‌भव धर्म में नहीं है। अस्पृश्यता दैवी नहीं मानवकृत है। अछूतपन जैसा हम आज मानते हैं, न पूर्व कर्म का फल है, न ईश्वरकृत है, आज का अछूतपन मनुष्यकृत है, सर्व हिंदूकृत है"। गांधी का अस्पृश्यता विरोधी स्वभाव उनके बचपन की देन है। इसके पीछे उनका कोई राजनीतिक या नैतिक आधार नहीं था। इस कुप्रथा के विरुद्ध उनके हृदय में विद्रोह की आग तभी से सुलग रही थी, जब एक दिन उनकी माता ने एक लड़के को नहीं छूने को कहा, क्योंकि वह एक अछूत था। इस छोटी–सी घटना ने गांधी को अछूतोद्धार के लिए प्रेरित किया और इसके निवारण के लिए गांधी ने आजीवन संघर्ष किया। गांधी ने अस्पृश्यता को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक अंग बनाया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक भारतीय समाज में छुआछूत की प्रथा जारी रहेगी, तब तक भारत को स्वराज्य नहीं मिल सकता है। अतएव स्वराज्य पाने के लिए और अस्पृश्यता का उन्मूलन अतिआवश्यक है।

गांधी ने स्वयं लिखा है, "स्वराज्य के कई अर्थ है। हमें अस्पृश्यता को दूर करना होगा। यह एक सामाजिक प्रश्न है, जिसे हिंदुओं को हल करना है। साधारणतया लोगों के दिलों में स्वराज्य के साथ–साथ देश की स्वतंत्रता की भावना मिली हुई है। यह अछूतोद्धार और भिन्न–भिन्न संप्रदायों में हार्दिक एकता के बिना संभव नहीं है। स्वराज्य का अर्थ निरंतर आंतरिक विकास है और जब तक इस विकास के शुभ पौधे को पक्षपात, मनोविकार और अंधविश्वास की दीवारें घेरे हुए हैं, यह उग नहीं सकता"। अतः गांधी का विचार था कि और अस्पृश्यता निवारण के बिना स्वराज्य की प्राप्ति संभव नहीं है।

3. मध–निषेध :

यदि भारतीय इतिहास का अवलोकन किया जाए तो प्रारंभ से ही मदिरापान भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का एक अंग रहा है। देव अमृत का पान करते थे, जबकि दानव मदिरा में डूबे रहते थे। प्राचीनकाल से ऋषि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारकों ने मध मध–निषेध पर बल दिया। लेकिन समय की तेज गति के साथ, मदिरा–पान का सिलसिला बढ़ता गया। पहले मदिरा–पान दानव करता था, लेकिन अभी अमीर–गरीब सभी करते हैं। मदिरा–पान फिल्मी दुनिया का एक अंग बन गया है जिसका बहुत बड़ा कुप्रभाव भारत की भावी पीढ़ियों पर पड़ रहा है। सरकार स्वयं मदिरा डिपो खोलकर शराब की आपूर्ति कर रही है। ऐसी स्थिति में, मध–निषेध कैसे संभव हो सकता है। गांधी ने इस सामाजिक बुराई की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और मध–निषेध हेतु समय–समय पर धरना, अनशन और असहयोग आंदोलन चलाया। गांधी ने सभी नशीली वस्तुओं के उपयोग का

विरोध किया है। उनका कथन है कि भांग, गांजा, चरस, अफीम, हीरोइन, हशीस एवं शराब के निरंतर उपभोग करने से, व्यक्ति दूर्व्यसनों का शिकार हो जाता है। अतः नशीली वस्तुओं का जीवन में प्रयोग नहीं करना चाहिए। गांधी ने मधपान को विष पान से भी घातक बताया है। विष से व्यक्ति की तुरंत मृत्यु हो जाती है। लेकिन मद्यपान से मनुष्य का शरीर घुल–घुलकर गलता रहता है और अंतोगत्वा उसका नाश हो जाता है। मद्यपान से मनुष्य पशु की श्रेणी में आ जाता है। वह नाना प्रकार के रोगों और दुर्व्यसनों से ग्रसित हो जाता है। जैसा कि गांधी ने कहा, "मैं कुछ ऐसे व्यक्तियों को जानता हूं, जिन्होंने मुझसे कहा कि यदि उनसे मदिरा–पान का लालच दूर कर दिया जाए, तो वे मदिरा–पान करना अवश्य छोड़ देंगे। उनसे यह लालच दूर कर दिया गया, फिर भी वे गुप्त रूप से मदिरा–पान करते हैं"।

गांधी का कहना है कि श्रमिक विशेष रूप से मद्यपान के आदी होते हैं। चूंकि, वे दिन भर फैक्ट्री में कड़ी मेहनत करते हैं और उस शारीरिक थकान से मुक्ति पाने के लिए मदिरा का प्रयोग करते हैं, ताकि कल वे पुनः काम पर लौट आए। गांधी का विचार है कि श्रमिकों को शराब की आदत छुड़ाने के लिए, भारत सरकार को फैक्ट्रीयों में विश्राम–गृहों की स्थापना करनी चाहिए। जहां श्रमिक बैठकर आराम कर सकें। इन विश्राम–गृहों में खेल और मनोरंजन की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए। श्रमिकों को जब विश्राम–गृहों में जाने की आदत पड़ जायेगी तो वे शराब को छोड़ देंगे। उन लोगों का चारित्रिक विकास होगा और वे एक अच्छे जीवन के मार्ग पर चलेंगे। गांधी एक के स्वप्नदर्शा नहीं थे। वे एक आदर्शवादी विचारक नहीं थे। उनका मद्यपान पर विचार व्यावहारिक था। उन्होंने एक व्यवहारिक विचारक की तरह मद्यपान को रोकने हेतु अपने असहयोग और सविनय–अवज्ञा–आंदोलन के समय शराब दुकानों पर धरना दिया। इस कार्यक्रम को गांधी समय–समय पर चलाते रहे। जब पहली बार 1937 ई० में कांग्रेस का मंत्रिमंडल आएगा 11 प्रान्तों में गठित किया गया तो गांधी के निर्देशानुसार, आर्थिक हानि सहन करने के बाद भी इन प्रान्तों में मद्यनिषेध कानून को लागू किया गया। इस प्रकार गांधी ने मद्यनिषेध का विरोधकर समाज की सबसे भयंकर बुराई की और लोगों को ध्यान आकृष्ट किया। भारतीय समाज में अभी इसन एक कैंसर का रूप धारण कर लिया है।

4. महिला की स्थिति :

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यंत ही दयनीय है। वे घर की चहारदीवारी के अंदर तड़प–तड़प कर अपनी जिंदगी व्यतीत करती है। उन्हें शिक्षा एवं राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है। प्राचीन भारत में, देवी, मां, सहचरी, प्राण जैसे रूपों में स्त्रियों को सम्मानित किया जाता है। लेकिन, धीरे–धीरे पुरुषों ने स्त्री के इन रूपों की उपेक्षा कर, उन्हें दास की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है, "स्त्रियों को सदैव असहाय और दूसरों पर दासवत् निर्भरता की शिक्षा दी गयी है"। स्वतंत्र भारत में स्त्रियों को सम्मानित किया जा रहा है, जिसके लिए गांधी जी का श्रेय प्राप्त है। गांधी ने सृष्टि के क्रम को जारी रखने हेतु, प्रत्येक नर–नारी के लिए विवाह को आवश्यक बताया है। वह एक पत्नी या पति रखने के पक्ष में है। विवाह का उद्देश्य विषय भोग नहीं, बल्कि प्रजनन होना चाहिए। पति–पत्नी का पवित्र संबंध होता है। दोनों में सच्चा प्रेम, सहयोग और त्याग की भावना होनी चाहिए। दोनों एक–दूसरे के पूरक है। गांधी ने चेतावनी देते हुए कहा है कि यह एक भयानक भूल है कि पति–पत्नी को अपनी संपत्ति समझे। दोनों में प्रेम–वासना से मुक्त होना चाहिए। गांधी ने बहु–पत्नी पद्धति के विरुद्ध अपना मत दिया है। एक पति को अनेक पत्नी नहीं रखना चाहिए।

यह नैतिकता के विरुद्ध है। गांधी दहेज–प्रथा के विरुद्ध थे। उन्होंने इसके विरुद्ध कई बार आवाजें बुलंद की।

उनके शब्दों में "पैसे के लालच से किया जाने वाला विवाह, विवाह नहीं है"। भारत सरकार ने दहेज विरोधी कानून बनाया, लेकिन वह केवल कागज के पन्नों तक सीमित है। व्यवहारतरू जनता इससे पीड़ित है। गांधी ने विवाह में मितव्ययिता करने को कहा है। विवाह के अवसर पर पैसा पानी की तरह बहाना उन्हें पसंद नहीं था। उनका कथन था की धनी व्यक्ति विवाह संस्कार को सरल बनाएं तथा एक शादी में रू. 10 से अधिक व्यय न करें। ऐसा करके वे गरीबों के बीच एक उदाहरण प्रस्तुत करें। गांधी ने बाल–विवाह का घोर विरोध किया है। उन्होंने इसे अनैतिक कार्य और शारीरिक बुराई बताया है। अतएव समाज में बाल–विवाह पद्धति को समाप्त कर देना चाहिए। स्वतंत्र भारत में कानून बनाकर बाल–विवाह पर रोक लागत लगा दी गई है। अब लड़कों की उम्र 21 साल लड़कियों की उम्र 18 वर्ष निर्धारित की गई है। इससे कम उम्र के लड़के या लड़की कानूनी दृष्टि से विवाह के योग्य नहीं हो सकते।

गांधी के जीवन में ही शारदा एक्ट बनाकर बाल–विवाह को अवैध कर दिया गया था। गांधी ने वृद्ध–विवाह के विरोध में अपना मत प्रकट किया है। वृद्ध पुरुष और युवा स्त्री के बीच वैवाहिक संबंध नहीं होना चाहिए। यह शारीरिक और नैतिक दृष्टिकोण से हानिकारक है। गांधी ने विधवा–विवाह का समर्थन किया है। उन्होंने कम उम्र की बाल–विधवाओं की शादी का समर्थन किया है। लेकिन, उन्होंने सच्ची हिंदू विधवा को एक रत्न माना है। इस संदर्भ में, उनका कहना है, स्वेच्छाचारी विधवा रहना हिंदू–धर्म की एक अमूल्य देन है। जबरन विधवा रहना पाप है और उन्हें लगता है कि उसे जबरदस्ती रोके जाने के पीछे हिंदू लोकमत की निंदा का डर है। यदि ऐसा है तो वे कहेंगे कि बहुत–सी हिंदू विधवाएं निःसंकोच पुनःविवाह कर लें"।

5. गोवध–निषेध :

भारत एक कृषि और धर्म प्रधान देश है। यहां की आर्थिक स्थिति कृषि पर निर्भर है। यहां की अधिकांश कृषि बैलों पर आश्रित है, जिनकी जननी गो–माता है। इसीलिए, यहां प्रत्येक व्यक्ति एक गाय अवश्य रखता है। अतएव आर्थिक एवं धार्मिक दृष्टि से, गांधी ने गोवध का निषेध आवश्यक समझा। गाय का मांस खाना–असभ्यता का चिह्न है। जो गाय हमें दूध, दही, मलाई और घी जैसी अमृत वस्तुएं देती है, उसका वध करना, अपने आपको आत्म–हत्या करना है। गांधी के विचारों से प्रभावित होकर भारतीय संविधान में गोहत्या–निषेध कानून का समावेश किया गया। लेकिन, कानून दोषपूर्ण है। भारत में पूर्ण गोहत्या–निषेध से ही इस समस्या का निदान संभव है। अंततः इसे लागू करना ही होगा।

निष्कर्ष :

गांधी के इस विस्तृत सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उन्होंने भारतीय समाज के करीब सभी पहलुओं को स्पर्श किया है। भारतीय समाज की वर्ण–व्यवस्था सनातन धर्म की तरह है, जिसे गांधी ने स्वीकार करके पूर्वजों की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखा है। यह वर्ण–व्यवस्था ही भारत की आर्थिक समृद्धि और राजनीतिक एकता को बनाये रखे हुए हैं। अस्पृश्यता मुस्लिम युग की देन है। जिसे तिरस्कृर ही किया जा सकता है। गांधी ने इसका जोरदार शब्दों में विरोध किया है, जो उनके मानव पक्ष को उजागर करता है। मद्य–निषेध एक सामाजिक बुराई है, जिससे नस्ल की अशुद्धि हो रही है। गांधी ने इसका भी विरोध किया है, जो सही है। भारतीय समाज महिलाओं की स्थिति नारकीय और दयनीय है। गांधी ने विवाह, बाल–विवाह, विधवा–विवाह,

वृद्ध–विवाह, प्रदा–प्रथा, दहेज–प्रथा, देवदासी–प्रथा और वेश्यावृति जैसी कुरीतियों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। यह गांधी को एक यथार्थवादी विचारक की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। सांप्रदायिक एकता का समर्थन, गांधी की दूरदर्शिता राजनीति को सूचित करता है। पश्चिमी सभ्यता या समाज का विरोध और भारतीय सभ्यता या समाज की प्रशंसा, गांधी के सही दृष्टिकोण का परिचायक है। गो–हत्या का आधार आर्थिक और धार्मिक है, जो सत्य के समीप है। अतएव गांधी के समस्त सामाजिक विचार भारतीय समाज के संदर्भ में दिए हैं गए हैं, जो सत्यता, यथार्थता, व्यवहारिकता और अमरता के संदेश से आच्छादित है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. यंग इंडिया, 20 दिसंबर, 1920.
2. सर्चलाइट, 19 अक्टूबर, 1921.
3. सर्चलाइट, 28 अक्टूबर, 1921.
4. बिजली अखबार, दिनांक 9 जनवरी 1947, कटरा, मुजफ्फरपुर।
5. राय, डॉ. पंकज कुमार व कुमार, डॉ. निखिल, बिहार में अगस्त क्रांति का सामाजिक आधार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2019.
6. कुमार, डॉ. अजीत, बिहार में अंग्रेजी राज और स्वतंत्रता आंदोलन (1764–1947), उषा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2002.
7. अहमद, इमत्याज, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और बिहार, नेशनल पब्लिकेशन, पटना, 2023.
8. दत्त, के. के., बिहार में स्वातंर्त्य आंदोलन का इतिहास भाग–3, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998.
9. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987.
10. ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास खंड–1, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 1965.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 99-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

पंचवटी की पर्णकुटी : रामकथा और लोकस्मृति का सांस्कृतिक संगम

रूपेश रघुवंशी, शोधार्थी
राजा शंकर शाह विश्वविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
डॉ. सुशील ब्यौहार, शोध निर्देशक
प्राध्यापक, हिन्दी
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

शोध-सारांश –

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में रामकथा केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि भारतीय जीवन–मूल्यों, लोकविश्वासों, पारिवारिक आदर्शों और नैतिक चेतना का महत्वपूर्ण आधार रही है। इसी रामकथा के संदर्भ में महाराष्ट्र के नासिक क्षेत्र में स्थित पंचवटी का विशेष धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व है। गोदावरी नदी के तट पर स्थित पंचवटी का संबंध वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में वर्णित श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के वनवास–जीवन से जोड़ा जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख में पंचवटी स्थित राम–कुटीर के प्रसंग का अध्ययन वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध कथावस्तु तथा उससे विकसित लोकमान्यताओं के संदर्भ में किया गया है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार, अगस्त्य मुनि के निर्देश पर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण पंचवटी में निवास करने के लिए पहुंचे। लक्ष्मण ने वन में उपलब्ध सामग्री से एक सुंदर पर्णकुटी का निर्माण किया। श्रीराम द्वारा लक्ष्मण के इस कार्य की प्रशंसा किए जाने से उनके मध्य विद्यमान भ्रातृ–स्नेह, सेवा और कर्तव्यबोध का परिचय मिलता है। पंचवटी का यह आश्रम–जीवन वनवास की कठिन परिस्थितियों के बीच संयम, सादगी और पारिवारिक एकता का आदर्श प्रस्तुत करता है।

पंचवटी से संबंधित अनेक प्रसंग आगे चलकर लोकविश्वासों और जनश्रुतियों का हिस्सा बने। विशेष रूप से 'लक्ष्मण रेखा' का प्रसंग अत्यंत लोकप्रिय है, किंतु इसका स्पष्ट उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता। इसी प्रकार पंचवटी में स्थित विभिन्न स्थलों को रामायण की घटनाओं से जोड़ने की परंपरा स्थानीय धार्मिक–सांस्कृतिक स्मृति का परिणाम है। अतः इस अध्ययन में वाल्मीकि रामायण की मूल कथा और बाद की लोकपरंपराओं के बीच अंतर तथा अंतर्संबंध को समझने का प्रयास किया गया है।

पंचवटी का राम–कुटीर वस्तुतः भारतीय संस्कृति में त्याग, सेवा, कर्तव्य, पारिवारिक निष्ठा और विपरीत परिस्थितियों में धैर्य का प्रतीक बन गया है। इस प्रकार पंचवटी का अध्ययन केवल एक धार्मिक स्थल के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय लोकस्मृति, साहित्य और सांस्कृतिक चेतना के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में किया जाना आवश्यक है।

प्रमुख शब्द – पंचवटी, राम–कुटीर, वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, लक्ष्मण, सीता, राम, लोकमान्यता, लोकस्मृति, रामकथा, भारतीय संस्कृति।

प्रस्तावना –

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में रामकथा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। राम का चरित्र भारतीय जनमानस में आदर्श पुरुष, मर्यादा, कर्तव्य और त्याग के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित है। रामकथा का मूल स्वरूप वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है, किंतु कालांतर में यह कथा विभिन्न भाषाओं, साहित्यिक परंपराओं, लोकगाथाओं, धार्मिक आख्यानों और जनश्रुतियों के माध्यम से निरंतर विकसित होती रही।

राम के वनवास से संबंधित स्थलों में पंचवटी का विशिष्ट स्थान है। वर्तमान में पंचवटी को महाराष्ट्र के नासिक क्षेत्र में गोदावरी नदी के तट से संबद्ध माना जाता है। राम, सीता और लक्ष्मण के वनवास–जीवन, पर्णकुटी, शूर्पणखा प्रसंग, खर–दूषण वध तथा सीता–हरण की कथा से पंचवटी की सांस्कृतिक स्मृति जुड़ी हुई है।

इस दृष्टि से पंचवटी केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि रामायण की कथा, धार्मिक आस्था और लोकविश्वासों के सम्मिलन का जीवंत केंद्र है।

वाल्मीकि रामायण में पंचवटी का प्रवेश :

वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में राम के वनवास–जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है। अगस्त्य मुनि से भेंट के पश्चात् श्रीराम को पंचवटी में निवास करने का निर्देश प्राप्त होता है। राम, सीता और लक्ष्मण पंचवटी की ओर प्रस्थान करते हैं।

पंचवटी का प्राकृतिक परिवेश वन, वृक्षों, पशु–पक्षियों तथा गोदावरी नदी से युक्त बताया गया है। वनवास के लिए यह स्थान एक ओर प्राकृतिक सौंदर्य से संपन्न था, तो दूसरी ओर तपस्वी जीवन के अनुकूल भी था।

पंचवटी पहुंचने के बाद राम लक्ष्मण से अपने निवास के लिए एक उपयुक्त स्थान पर कुटिया बनाने के लिए कहते हैं। लक्ष्मण अपने भ्राता की आज्ञा का पालन करते हुए पर्णकुटी का निर्माण करते हैं।

लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटी का निर्माण :

पंचवटी का राम–कुटीर प्रसंग रामायण में लक्ष्मण के चरित्र को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। लक्ष्मण केवल राम के अनुज ही नहीं, बल्कि उनके सेवक, सहचर और रक्षक के रूप में भी दिखाई देते हैं।

लक्ष्मण वन की उपलब्ध सामग्री से कुटिया का निर्माण करते हैं। कुटिया पूर्ण होने के बाद श्रीराम उसके स्वरूप को देखकर प्रसन्न होते हैं और लक्ष्मण के परिश्रम की प्रशंसा करते हैं।

यह प्रसंग तीन महत्वपूर्ण मूल्यों को सामने लाता है –

- भ्रातृ–प्रेम
- सेवा एवं समर्पण
- कर्तव्यनिष्ठा

राजमहल के सुखों को छोड़कर वन में रहने वाले राम–सीता–लक्ष्मण का यह जीवन भारतीय संस्कृति में सादगी और आत्मसंयम का आदर्श प्रस्तुत करता है।

पंचवटी में राम-सीता-लक्ष्मण का जीवन :

पंचवटी में राम, सीता और लक्ष्मण का जीवन राजसी वैभव से पूरी तरह अलग था। उनका जीवन प्रकृति के निकट, सीमित साधनों में और धार्मिक–सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप था।

गोदावरी का तट, वन का प्राकृतिक वातावरण और पर्णकुटी उनके जीवन का आधार बने। सीता का धैर्य, राम का संयम और लक्ष्मण की सेवा भावना इस जीवन को आदर्श रूप प्रदान करती है।

इस प्रकार राम–कुटीर केवल निवास का स्थान नहीं था, बल्कि वनवास में पारिवारिक एकता और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र था।

लक्ष्मण की सेवा एवं कर्तव्यनिष्ठा :

रामायण के पंचवटी प्रसंग में लक्ष्मण का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे वनवास की पूरी अवधि में राम और सीता की सेवा में समर्पित रहते हैं।

लोकमानस में लक्ष्मण की इस सेवा भावना को 'चौकीदारी' अथवा निरंतर सुरक्षा के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। हालांकि आधुनिक लोकप्रिय कथनों में लक्ष्मण के संबंध में कई ऐसी बातें कही जाती हैं जिन्हें मूल वाल्मीकि रामायण से अलग करके देखना चाहिए।

लक्ष्मण का वास्तविक चरित्र उनकी आज्ञाकारिता, सेवा, त्याग और भ्रातृनिष्ठा में निहित है। यही गुण उन्हें भारतीय संस्कृति में आदर्श अनुज के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

पंचवटी और शूर्पणखा प्रसंग :

पंचवटी की कथा में शूर्पणखा प्रसंग अत्यंत महत्वपूर्ण है। शूर्पणखा द्वारा राम के प्रति आकर्षण व्यक्त किए जाने और तत्पश्चात् उत्पन्न घटनाओं ने आगे चलकर राम–रावण संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार की।

शूर्पणखा की घटना के बाद खर–दूषण सहित अनेक राक्षसों के साथ राम का संघर्ष हुआ। इसके पश्चात् रावण द्वारा सीता–हरण की योजना और मारीच का स्वर्णमृग रूप धारण करना कथा को निर्णायक मोड़ देता है।

इस प्रकार पंचवटी का राम–कुटीर आगे आने वाली रामायण की महत्वपूर्ण घटनाओं का आधार–स्थल बन जाता है।

'लक्ष्मण रेखा' : वाल्मीकि रामायण और लोकमान्यता :

पंचवटी से जुड़ी सबसे लोकप्रिय लोकमान्यताओं में 'लक्ष्मण रेखा' का विशेष स्थान है। सामान्य जनमानस में यह विश्वास प्रचलित है कि जब राम स्वर्णमृग के पीछे गए और सीता की प्रार्थना पर लक्ष्मण भी उन्हें खोजने के लिए कुटिया से निकले, तब उन्होंने सीता की सुरक्षा के लिए एक सीमा–रेखा खींची थी।

किन्तु वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण द्वारा ऐसी रेखा खींचे जाने का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। यह प्रसंग बाद की रामकथा–परंपराओं, लोककथाओं और विभिन्न क्षेत्रीय रामायणों में अधिक लोकप्रिय हुआ।

यह तथ्य रामकथा के विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट होता है कि रामायण की मूल कथा के साथ समय–समय पर लोकसमाज ने अपनी कल्पना, आस्था और सांस्कृतिक अनुभवों को भी जोड़ा।

अतः 'लक्ष्मण रेखा' को लोकमान्यता के रूप में स्वीकार करते हुए उसे वाल्मीकि रामायण के मूल कथानक से अलग पहचानना अधिक उचित है।

पंचवटी की लोकस्मृति और धार्मिक परंपरा :

पंचवटी से संबंधित अनेक स्थल आज स्थानीय धार्मिक परंपराओं और जनश्रुतियों का हिस्सा हैं। रामकुंड, सीता गुफा तथा पंचवटी के अन्य स्थानों को रामायण की घटनाओं से जोड़कर देखा जाता है।

इन स्थलों की धार्मिक महत्ता केवल ग्रंथीय प्रमाणों पर आधारित नहीं है, बल्कि सदियों से चली आ रही लोकस्मृति, तीर्थ–परंपरा और धार्मिक आस्था ने भी इनके महत्व को मजबूत किया है।

लोक परंपरा की यही विशेषता है कि वह साहित्यिक कथा को केवल पुस्तक में सीमित नहीं रहने देती, बल्कि उसे भौगोलिक स्थान, तीर्थ, अनुष्ठान और जनजीवन से जोड़ देती है।

राम–कुटीर का सांस्कृतिक प्रतीकात्मक अर्थ :

पंचवटी का राम–कुटीर भारतीय संस्कृति में अनेक मूल्यों का प्रतीक माना जा सकता है।

- **राम का त्याग** – राजसी जीवन का परित्याग करके वनवासी जीवन स्वीकार करना।
- **सीता का धैर्य** – कठिन परिस्थितियों में पति के साथ रहकर विपत्तियों का सामना करना।
- **लक्ष्मण की सेवा** – भ्राता के प्रति निःस्वार्थ समर्पण और कर्तव्यपालन।
- **पारिवारिक एकता** – संकट के समय परिवार के सदस्यों का एक–दूसरे के साथ खड़ा रहना।

इस प्रकार पर्णकुटी आकार में छोटी होते हुए भी भारतीय सांस्कृतिक चिंतन में अत्यंत व्यापक अर्थ ग्रहण करती है।

आधुनिक संदर्भ में पंचवटी की प्रासंगिकता :

आधुनिक जीवन में भौतिक सुख–सुविधाओं की निरंतर बढ़ती आकांक्षा के बीच पंचवटी का राम–कुटीर सादगी और संतुलित जीवन का संदेश देता है।

आज परिवारों के सामने समयाभाव, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और सामाजिक परिवर्तन जैसी अनेक चुनौतियां हैं। ऐसे समय में राम, सीता और लक्ष्मण का पारस्परिक सहयोग पारिवारिक मूल्यों की पुनर्स्मृति कराता है।

राम–कुटीर हमें यह संदेश देता है कि जीवन की वास्तविक समृद्धि केवल भौतिक साधनों में नहीं, बल्कि विश्वास, प्रेम, कर्तव्य, त्याग और पारिवारिक सहयोग में निहित है।

निष्कर्ष –

पंचवटी का राम–कुटीर भारतीय रामकथा परंपरा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में सामने आता है। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में पंचवटी को राम, सीता और लक्ष्मण के वनवास–जीवन के प्रमुख स्थल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अगस्त्य मुनि के निर्देश पर पंचवटी पहुंचने के बाद लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटी का निर्माण और राम द्वारा उसकी प्रशंसा का प्रसंग उनके पारस्परिक प्रेम, सेवा और कर्तव्यनिष्ठा को अभिव्यक्त करता है।

पंचवटी में व्यतीत जीवन राजसी वैभव से दूर प्रकृति के निकट सादगी, संयम और संतोष का जीवन था। राम का त्याग, सीता का धैर्य और लक्ष्मण की सेवा भावना इस कुटीर को केवल एक आवासीय स्थल न रहकर भारतीय पारिवारिक एवं नैतिक आदर्शों का प्रतीक बना देती है।

पंचवटी की विशेषता यह भी है कि यहां वाल्मीकि रामायण की मूल कथा के साथ अनेक लोकविश्वास और जनश्रुतियां जुड़ती गईं। 'लक्ष्मण रेखा' इसका प्रमुख उदाहरण है। वाल्मीकि रामायण में इसके स्पष्ट उल्लेख

का अभाव यह संकेत करता है कि रामकथा समय के साथ विभिन्न लोकपरंपराओं में नए अर्थ और प्रसंग ग्रहण करती रही है। इसलिए पंचवटी को समझते समय ग्रंथीय प्रमाण और लोकमान्यता– दोनों को उनके अपने संदर्भ में देखना आवश्यक है।

पंचवटी इस दृष्टि से रामायण, लोकस्मृति और भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संगम का महत्वपूर्ण केंद्र है। राम–कुटीर हमें यह संदेश देता है कि विपरीत परिस्थितियों में भी कर्तव्य, त्याग, प्रेम, धैर्य और पारिवारिक एकता मनुष्य के जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हैं। वर्तमान समय में भी पंचवटी का यह संदेश उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आधुनिक भौतिक जीवन के बीच भारतीय संस्कृति के इन मानवीय मूल्यों की आवश्यकता और अधिक अनुभव की जा रही है।

अतः पंचवटी का राम–कुटीर केवल रामायण के अतीत का स्मारक नहीं, बल्कि भारतीय लोकमानस में जीवित एक ऐसी सांस्कृतिक स्मृति है, जो प्रत्येक युग में मनुष्य को सादगी, सेवा, संयम, कर्तव्य और पारिवारिक निष्ठा की प्रेरणा देती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड।
2. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड।
3. बुल्के, कामिल, रामकथा : उत्पत्ति और विकास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 104-116

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

डिजिटल युग में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति युवाओं की जागरूकता एवं वित्तीय व्यवहार का अध्ययन

अर्चना सिन्हा

पूर्व छात्रा–वाणिज्य, भिलाई महिला महाविद्यालय, हॉस्पिटल सेक्टर, भिलाई, जिला–दुर्ग (छ.ग.)

शोध सारांश

प्रस्तुत अध्ययन "डिजिटल युग में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति युवाओं की जागरूकता एवं वित्तीय व्यवहार का अध्ययन" का केंद्र युवाओं की वित्तीय जागरूकता, व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन तथा डिजिटल वित्तीय व्यवहार की स्थिति को समझना है। अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ है कि वर्तमान डिजिटल परिवेश मे युवाओ के वित्तीय निर्णयो पर वित्तीय जागरूकता का महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। जिन युवाओं में वित्तीय अवधारणाओं, बचत, निवेश, बजट निर्माण तथा आय–व्यय प्रबंधन के प्रति अधिक जागरूकता पाई गई है, उनमें व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन भी अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित पाया गया है।अध्ययन में युवाओं के वित्तीय व्यवहार में बचत एवं निवेश को महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में पाया गया है। वित्तीय रूप से अधिक जागरूक युवाओं में नियमित बचत करने तथा निवेश संबंधी निर्णय लेने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक रही है। इससे स्पष्ट होता है कि वित्तीय जागरूकता केवल वित्तीय जानकारी तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह युवाओं के वास्तविक वित्तीय निर्णयों और भविष्य की आर्थिक योजना को भी प्रभावित करती है। साथ ही, आय के अनुरूप व्यय प्रबंधन एवं बजट निर्माण की प्रवृत्ति वित्तीय रूप से अधिक जागरूक युवाओं में अधिक व्यवस्थित पाई गई है। डिजिटल वित्तीय सेवाओं के संदर्भ में अध्ययन से पाया गया है कि युवाओं में डिजिटल भुगतान, मोबाइल एवं इंटरनेट बैंकिंग तथा अन्य डिजिटल वित्तीय माध्यमों का उपयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है। डिजिटल वित्तीय सेवाओं के प्रति अधिक जागरूक युवाओं में इन सेवाओं का उपयोग अधिक नियमित एवं प्रभावी पाया गया है। हालांकि डिजिटल माध्यमों के बढ़ते उपयोग के साथ साइबर सुरक्षा, वित्तीय धोखाधड़ी तथा व्यक्तिगत वित्तीय जानकारी की सुरक्षा के प्रति जागरूकता भी आवश्यक पाई गई है। समग्र रूप से अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि वित्तीय जागरूकता एवं डिजिटल वित्तीय जागरूकता युवाओं के व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन, बचत एवं निवेश संबंधी व्यवहार तथा डिजिटल वित्तीय निर्णयों को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

शब्दकुंजी : व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन, वित्तीय व्यवहार, डिजिटल वित्तीय सेवाएँ, डिजिटल वित्तीय जागरूकता, बचत, निवेश।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में डिजिटल प्रौद्योगिकी के तीव्र विस्तार ने आर्थिक एवं वित्तीय गतिविधियों के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। बैंकिंग, भुगतान, बचत, निवेश तथा अन्य वित्तीय सेवाओं तक पहुँच अब पारंपरिक माध्यमों के साथ–साथ डिजिटल माध्यमों से भी संभव हो गई है। मोबाइल बैंकिंग, इंटरनेट बैंकिंग, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), डिजिटल वॉलेट तथा ऑनलाइन वित्तीय सेवाओं के बढ़ते उपयोग ने वित्तीय लेन–देन को अधिक सुविधाजनक एवं त्वरित बनाया है। इस परिवर्तन का प्रभाव विशेष रूप से युवा वर्ग के वित्तीय व्यवहार पर दिखाई देता है, जो डिजिटल माध्यमों का व्यापक उपयोग करते हुए अपनी आय, व्यय, बचत तथा अन्य वित्तीय गतिविधियों का प्रबंधन करता है। व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन व्यक्ति की आय एवं व्यय को व्यवस्थित करने, बचत करने, निवेश संबंधी निर्णय लेने, बीमा प्राप्त करने, ऋण का उचित प्रबंधन करने तथा भविष्य की वित्तीय आवश्यकताओं के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया है। व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन का उद्देश्य उपलब्ध आय का विवेकपूर्ण उपयोग करते हुए वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ भविष्य की वित्तीय सुरक्षा सुनिश्चित करना है। नियमित बचत, व्यय पर नियंत्रण, उपयुक्त निवेश विकल्पों का चयन तथा वित्तीय जोखिमों के प्रति सजगता व्यक्ति के वित्तीय व्यवहार के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। युवावस्था मे लिए गए वित्तीय निर्णय व्यक्ति की आगे की आर्थिक स्थिति एवं वित्तीय स्थिरता को प्रभावित करते हैं, इसलिए इस वर्ग के व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार का अध्ययन वाणिज्य विषय के अंतर्गत विशेष महत्व रखता है।

डिजिटल वित्तीय सेवाओं के विस्तार ने व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन को एक नया आयाम प्रदान किया है। डिजिटल माध्यमों से बैंक खातों का संचालन, भुगतान, धन हस्तांतरण, निवेश तथा वित्तीय जानकारी प्राप्त करना अधिक सहज हुआ है। इसके साथ ही वित्तीय निर्णयों की प्रक्रिया भी अधिक गतिशील हुई है। डिजिटल माध्यमों पर उपलब्ध वित्तीय सूचनाओं और सेवाओं की विविधता के कारण व्यक्ति के लिए उचित वित्तीय विकल्प का चयन करना भी महत्वपूर्ण हो गया है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन केवल आय एवं व्यय के पारंपरिक प्रबंधन तक सीमित नहीं है, बल्कि डिजिटल वित्तीय साधनों के विवेकपूर्ण एवं सुरक्षित उपयोग से भी जुडा हुआ है। वित्तीय जागरूकता व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन का महत्वपूर्ण आधार है। वित्तीय जागरूकता में व्यक्ति की बचत, निवेश, बैंकिंग, बीमा, ऋण, ब्याज, वित्तीय जोखिम तथा डिजिटल वित्तीय सेवाओं से संबंधित जानकारी एवं समझ सम्मिलित होती है। दूसरी ओर, वित्तीय व्यवहार उस ज्ञान एवं समझ के आधार पर व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले वास्तविक वित्तीय निर्णयों को व्यक्त करता है। केवल वित्तीय जानकारी का होना पर्याप्त नहीं है; उसका प्रभाव व्यक्ति के वास्तविक बचत, व्यय, निवेश एवं वित्तीय नियोजन संबंधी व्यवहार में दिखाई देना आवश्यक है। इसलिए युवाओं की वित्तीय जागरूकता तथा उनके वास्तविक वित्तीय व्यवहार का एक साथ अध्ययन व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन की स्थिति को अधिक स्पष्ट रूप से समझने में सहायता करता है।

दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी इस दृष्टि से अध्ययन का उपयुक्त क्षेत्र है, जहाँ विविध सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि वाले युवा रोजगार, स्वरोजगार एवं व्यवसाय जैसी विभिन्न आर्थिक

गतिविधियों से जुड़े हुए हैं। अध्ययन में ऐसे 18–35 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं को शामिल किया गया है जो स्वयं आय अर्जित करते हैं तथा अपनी आय एवं व्यक्तिगत व्यय का प्रबंधन करते हैं। इससे अध्ययन विद्यार्थियों की वित्तीय निर्भरता जैसे पक्षों से अलग रहते हुए वास्तविक व्यक्तिगत वित्तीय निर्णयों एवं व्यवहार पर केंद्रित रहता है।

साथ ही, दुर्ग एवं भिलाई से समान संख्या में उत्तरदाताओं का चयन किए जाने से दोनों क्षेत्रों के वित्तीय जागरूकता एवं व्यवहार की तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन भी किया जा सकता है। व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन व्यक्ति की आर्थिक स्थिरता एवं वित्तीय सुरक्षा से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है। युवाओं की वित्तीय जागरूकता एवं व्यवहार का अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि वे अपनी आय का प्रबंधन किस प्रकार करते हैं, बचत एवं निवेश के संबंध में कौन–से निर्णय लेते हैं तथा डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग किस प्रकार करते हैं। इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र "डिजिटल युग में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति युवाओं की जागरूकता एवं वित्तीय व्यवहार का अध्ययन" दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी चयनित युवाओं के आधार पर व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति उनकी जागरूकता, डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग तथा वास्तविक वित्तीय व्यवहार का अध्ययन करता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं औचित्य

डिजिटल वित्तीय सेवाओं के विस्तार ने युवाओं के व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के तरीकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। मोबाइल बैंकिंग, UPI, डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन बैंकिंग तथा अन्य डिजिटल वित्तीय माध्यमों ने आय, व्यय और बचत के प्रबंधन को अधिक सुविधाजनक बनाया है। ऐसी स्थिति में केवल वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि युवाओं में इन सेवाओं के प्रति जागरूकता और उनके वास्तविक उपयोग का अध्ययन भी आवश्यक है। व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन में आय का प्रबंधन, व्यय नियंत्रण, बचत, निवेश तथा वित्तीय सुरक्षा से संबंधित निर्णय शामिल होते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में डिजिटल व्यवहार का दायरा मुख्यतः डिजिटल भुगतान, मोबाइल/इंटरनेट बैंकिंग, ऑनलाइन बचत एवं निवेश सेवाओं के उपयोग और डिजिटल माध्यमों से किए जाने वाले वित्तीय निर्णयों तक सीमित रखा गया है। इरारो युवाओं की वित्तीय जागरूकता और उनके वारतविक वित्तीय व्यवहार के बीच रांबंध को समझने में सहायता मिलती है। दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी के चयनित युवाओं के आधार पर यह अध्ययन व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति जागरूकता, डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग तथा बचत, व्यय और निवेश संबंधी व्यवहार का अध्ययन करता है। इसके माध्यम से युवाओं के वित्तीय व्यवहार की स्थिति को समझने तथा दुर्ग और भिलाई के बीच आवश्यक तुलनात्मक विश्लेषण करने का आधार प्राप्त होता है।

साहित्य समीक्षा

पूर्ववर्ती अध्ययनों में वित्तीय साक्षरता, व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार, निवेश व्यवहार तथा डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग को प्रमुखता से अध्ययन किया गया है। **चावला एवं अन्य (2022)** ने युवा वयस्कों में वित्तीय साक्षरता और निवेश व्यवहार के संबंध का अध्ययन करते हुए वित्तीय ज्ञान की भूमिका

को स्पष्ट किया तथा बताया कि वित्तीय साक्षरता युवाओं के निवेश संबंधी निर्णयों को प्रभावित करती है। **मोहता एवं शुनमुगसुन्दरम (2024)** ने वित्तीय साक्षरता तथा जोखिमपूर्ण निवेश व्यवहार के बीच संबंध का अध्ययन किया और वित्तीय साक्षरता को निवेश संबंधी जोखिमों को समझने तथा निर्णय लेने से संबंधित महत्वपूर्ण कारक माना। भाट एवं अन्य (2024) ने भारत में डिजिटल वित्तीय साक्षरता और वित्तीय कल्याण के संबंध का अध्ययन करते हुए डिजिटल वित्तीय ज्ञान, अनुभव एवं कौशल के महत्व को रेखांकित किया। लिंगे एवं अन्य (2025) ने भारत के कार्यरत युवा वयस्कों में वित्तीय साक्षरता एवं वित्तीय व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया तथा वित्तीय व्यवहार के निर्माण में व्यक्तिगत दृष्टिकोण और सामाजिक प्रभावों की भूमिका को सामने रखा।

इन अध्ययनों के समग्र अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वित्तीय जागरूकता युवाओं के बचत, निवेश, जोखिम प्रबंधन तथा अन्य वित्तीय निर्णयों से संबंधित महत्वपूर्ण पक्ष है। साथ ही, डिजिटल वित्तीय सेवाओं के विस्तार के कारण डिजिटल वित्तीय ज्ञान और उनके उपयोग को भी व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार के अध्ययन में महत्व प्राप्त हुआ है। हालांकि, पूर्ववर्ती अध्ययनों में इन पक्षों का अध्ययन विभिन्न संदर्भों में अलग–अलग रूप से किया गया है। विशेष रूप से दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी के 18–35 वर्ष के स्वयं आय अर्जित करने वाले युवाओं में वित्तीय जागरूकता, डिजिटल वित्तीय व्यवहार तथा व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के वास्तविक व्यवहार को एक साथ केंद्र में रखकर अध्ययन का अभाव दिखाई देता है। यही अंतराल प्रस्तुत अध्ययन का आधार बनता है। अतः यह अध्ययन दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी के युवाओं में वित्तीय जागरूकता, डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग तथा बचत, व्यय और निवेश संबंधी वित्तीय व्यवहार का समग्र अध्ययन करने का प्रयास करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी के युवाओं में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति वित्तीय जागरूकता का अध्ययन करना।
2. युवाओं के बचत, व्यय एवं निवेश संबंधी व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार का अध्ययन करना।
3. युवाओं द्वारा डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग तथा उनके डिजिटल वित्तीय व्यवहार का अध्ययन करना।
4. वित्तीय जागरूकता, डिजिटल वित्तीय व्यवहार एवं व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार के बीच संबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

1. युवाओं की वित्तीय जागरूकता उनके व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन को प्रभावित करती है।
2. डिजिटल वित्तीय सेवाओं की जागरूकता युवाओं के डिजिटल वित्तीय व्यवहार को प्रभावित करती है।
3. वित्तीय जागरूकता युवाओं के बचत एवं निवेश संबंधी व्यवहार को प्रभावित करती है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संकलन संरचित प्रश्नावली के माध्यम से किया गया है, जबकि द्वितीयक आँकड़े संबंधित पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी एवं संस्थागत रिपोर्टों तथा विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोतों से प्राप्त किए गए हैं। अध्ययन में युवाओं की वित्तीय जागरूकता, व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार तथा डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग को प्रमुख अध्ययन–विषय के रूप में निर्धारित किया गया है। अध्ययन का क्षेत्र दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी निर्धारित किया गया है। अध्ययन में 18–35 वर्ष आयु वर्ग के ऐसे युवाओं को उत्तरदाता के रूप में शामिल किया गया है, जो स्वयं आय अर्जित करते हैं तथा अपनी आय एवं व्यक्तिगत व्ययों का प्रबंधन स्वयं करते हैं। कुल 200 चयनित उत्तरदाताओं का नमूना लिया गया है, जिसमें दुर्ग से 100 तथा भिलाई से 100 उत्तरदाता शामिल किए गए हैं। समान संख्या में नमूना चयन के आधार पर दोनों क्षेत्रों के युवाओं की वित्तीय जागरूकता एवं वित्तीय व्यवहार की तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन किया गया है। प्राप्त आँकड़ों का वर्गीकरण, सारणीकरण एवं विश्लेषण आवृत्ति, प्रतिशत एवं तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर किया गया है। परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए काई–वर्ग (Chi-square/χ^2) परीक्षण का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर युवाओं की वित्तीय जागरूकता, डिजिटल वित्तीय व्यवहार तथा व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी है, जो छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले का प्रमुख नगरीय एवं औद्योगिक क्षेत्र है। दुर्ग और भिलाई परस्पर निकट स्थित विकसित शहरी केंद्र हैं तथा दोनों की सामाजिक–आर्थिक एवं औद्योगिक गतिविधियाँ एक–दूसरे से संबद्ध हैं। जनगणना 2011 के अनुसार दुर्ग जिले की कुल जनसंख्या 17,21,948 थी, जिसमें 11,04,700 जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में निवास करती थी। जिले के प्रमुख नगरीय केंद्रों में भिलाई नगर की जनसंख्या 6,27,734 तथा दुर्ग नगर की जनसंख्या 2,68,806 थी। दुर्ग–भिलाई नगरीय क्षेत्र की विशेषता उच्च नगरीकरण, औद्योगिक गतिविधियों, अपेक्षाकृत विकसित आधारभूत सुविधाओं तथा शिक्षा एवं रोजगार के विविध अवसरों से है। यह क्षेत्र विशेष रूप से भिलाई इस्पात संयंत्र एवं उससे संबद्ध औद्योगिक गतिविधियों के कारण छत्तीसगढ़ के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों में सम्मिलित है। दुर्ग नगर प्रशासनिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण केंद्र है, जबकि भिलाई का विकास औद्योगिक एवं नियोजित नगरीय स्वरूप के साथ हुआ है। दुर्ग नगर की 2011 की साक्षरता दर 87.36 प्रतिशत थी, जबकि दुर्ग–भिलाई नगरीय क्षेत्र में साक्षरता का स्तर भी उच्च पाया गया है। उच्च साक्षरता, नगरीय जीवनशैली, औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र में रोजगार तथा बैंकिंग एवं डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता के कारण दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी युवाओं के वित्तीय जागरूकता एवं व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार के अध्ययन के लिए उपयुक्त नगरीय अध्ययन क्षेत्र है।

9. आँकड़ों का विश्लेषण एवं परिणाम

तालिका–1 : चयनित उत्तरदाताओं की आयु

क्र.	आयु वर्ग	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
1	18–22 वर्ष	21	18	39	19.5
2	23–27 वर्ष	34	36	70	35.0
3	28–31 वर्ष	27	25	52	26.0
4	32–35 वर्ष	18	21	39	19.5
योग		100	100	200	100.0

तालिका–1 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 70 उत्तरदाता (35.0 प्रतिशत) 23–27 वर्ष आयु वर्ग के हैं। इसके बाद 28–31 वर्ष आयु वर्ग के 52 उत्तरदाता (26.0 प्रतिशत) हैं। 18–22 वर्ष तथा 32–35 वर्ष आयु वर्ग में समान रूप से 39–39 उत्तरदाता (19.5–19.5 प्रतिशत) पाए गए। यह वितरण दर्शाता है कि अध्ययन में व्यक्तिगत आय अर्जित कर उसका प्रबंधन करने वाले अपेक्षाकृत युवा वर्ग की पर्याप्त भागीदारी रही है। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अध्ययन में शामिल उत्तरदाता मुख्यतः 23–31 वर्ष के आयु वर्ग में केंद्रित हैं, जो व्यक्तिगत आय, बचत, व्यय तथा डिजिटल वित्तीय रोवाओं के उपयोग के दृष्टिकोण रो राक्रिय आयु–वर्ग है।

तालिका–2 : चयनित उत्तरदाताओं की मासिक व्यक्तिगत आय

मासिक व्यक्तिगत आय	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
₹15,000 तक	19	23	42	21.0
₹15,001–30,000	35	32	67	33.5
₹30,001–50,000	31	29	60	30.0
₹50,000 से अधिक	15	16	31	15.5
योग	100	100	200	100.0

तालिका–2 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 67 उत्तरदाता (33.5 प्रतिशत) ₹15,001–30,000 मासिक व्यक्तिगत आय वर्ग में हैं। इसके निकट 60 उत्तरदाता (30.0 प्रतिशत) ₹30,001–50,000 आय वर्ग में पाए गए। ₹15,000 तक आय वाले उत्तरदाताओं की संख्या 42 (21.0 प्रतिशत), जबकि ₹50,000 से अधिक आय वाले 31 (15.5 प्रतिशत) हैं। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि मध्यम आय वर्ग के युवाओं में मासिक आय का एक भाग नियमित व्ययों में तथा शेष राशि बचत, निवेश अथवा आकस्मिक आवश्यकताओं के लिए रखने की प्रवृत्ति दिखाई दी। अधिक आय वाले कुछ उत्तरदाताओं ने डिजिटल माध्यमों से निवेश और बचत की सुविधा को उपयोगी माना। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चयनित उत्तरदाताओं में मध्यम आय वर्ग की प्रधानता है, जिससे व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन, व्यय नियंत्रण और बचत संबंधी व्यवहार का अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण बनता है।

तालिका–3 : व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति वित्तीय जागरूकता

वित्तीय जागरूकता	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
निम्न	25	25	50	25.0
मध्यम	30	30	60	30.0
उच्च	45	45	90	45.0
योग	100	100	200	100.0

तालिका–3 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 90 उत्तरदाता (45.0 प्रतिशत) व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति उच्च वित्तीय जागरूकता रखते हैं। 60 उत्तरदाता (30.0 प्रतिशत) मध्यम तथा 50 उत्तरदाता (25.0 प्रतिशत) निम्न जागरूकता स्तर पर पाए गए। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि उच्च जागरूकता वाले उत्तरदाता आय का बजट बनाने, बचत करने, बैंकिंग सेवाओं का उपयोग करने तथा निवेश के विकल्पों की जानकारी रखने पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देते हैं। दूसरी ओर, निम्न जागरूकता वाले कुछ उत्तरदाता दैनिक व्यय और आय के अंतर को ही वित्तीय प्रबंधन का प्रमुख पक्ष मानते हैं। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चयनित युवाओं में वित्तीय जागरूकता का स्तर सामान्यतः संतोषजनक है, लेकिन एक–चौथाई उत्तरदाताओं में निम्न जागरूकता पाया जाना वित्तीय ज्ञान को और सुदृढ़ करने की आवश्यकता को दर्शाता है।

तालिका–4 : मासिक बजट एवं व्यय नियोजन

बजट एवं व्यय नियोजन	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
नियमित रूप से करते हैं	46	50	96	48.0
कभी–कभी करते हैं	37	33	70	35.0
नहीं करते	17	17	34	17.0
योग	100	100	200	100.0

तालिका–4 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 96 उत्तरदाता (48.0 प्रतिशत) नियमित रूप से मासिक बजट एवं व्यय नियोजन करते हैं। 70 उत्तरदाता (35.0 प्रतिशत) कभी–कभी बजट बनाते हैं, जबकि 34 उत्तरदाता (17.0 प्रतिशत) बजट एवं व्यय नियोजन नहीं करते। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि नियमित बजट बनाने वाले उत्तरदाता अपनी आय को आवश्यक व्यय, बचत तथा अन्य व्यक्तिगत जरूरतों में विभाजित करने को प्राथमिकता देते हैं। जिन उत्तरदाताओं में नियमित बजट बनाने की आदत नहीं है, उनमें दैनिक अथवा आकस्मिक व्यय के कारण मासिक खर्च का पूर्वानुमान रखना अपेक्षाकृत कठिन पाया गया। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि लगभग आधे उत्तरदाताओं में बजट–आधारित वित्तीय प्रबंधन की आदत विकसित हुई है, जबकि शेष उत्तरदाताओं के व्यवहार गें अभी नियगितता का अभाव है।

तालिका–5 : बचत संबंधी व्यवहार

बचत की स्थिति	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
नियमित बचत	53	57	110	55.0
अनियमित बचत	32	29	61	30.5
बचत नहीं	15	14	29	14.5
योग	100	100	200	100.0

तालिका–5 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 110 उत्तरदाता (55.0 प्रतिशत) नियमित बचत करते हैं। 61 उत्तरदाता (30.5 प्रतिशत) अनियमित रूप से बचत करते हैं, जबकि 29 उत्तरदाताओं (14.5 प्रतिशत) गें बचत की प्रवृत्ति नहीं पाई गई। उत्तरदाताओं रो विचार–विगर्श से ज्ञात हुआ कि नियमित बचत करने वाले युवाओ मे भविष्य की आवश्यकताओ, आकस्मिक व्यय तथा व्यक्तिगत आर्थिक सुरक्षा को लेकर अधिक सजगता दिखाई दी। अनियमित बचत का प्रमुख कारण आय और मासिक व्यय के बीच उपलब्ध अधिशेष में होने वाला अंतर रहा। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चयनित उत्तरदाताओं में बचत की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत मजबूत है, यद्यपि नियमित बचत को व्यवहार का स्थायी हिस्सा बनाने की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है।

तालिका–6 : निवेश संबंधी व्यवहार

निवेश व्यवहार	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
नियमित निवेश	31	37	68	34.0
अवसरानुसार निवेश	43	39	82	41.0
निवेश नहीं	26	24	50	25.0
योग	100	100	200	100.0

तालिका–6 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 82 उत्तरदाता (41.0 प्रतिशत) अवसरानुसार निवेश करते हैं। 68 उत्तरदाता (34.0 प्रतिशत) नियमित रूप से निवेश करते हैं, जबकि 50 उत्तरदाता (25.0 प्रतिशत) किसी प्रकार का निवेश नहीं करते। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि निवेश का निर्णय मुख्यतः आय की उपलब्धता, जोखिम के प्रति दृष्टिकोण और निवेश साधनों की जानकारी से प्रभावित रहा। कुछ उत्तरदाताओं ने छोटी राशि से निवेश प्रारंभ करने को सुविधाजनक माना, जबकि जोखिम संबंधी जानकारी की कमी के कारण कुछ युवाओं ने निवेश से दूरी बनाए रखी। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि निवेश की प्रवृत्ति चयनित युवाओं में मौजूद है, लेकिन नियमित निवेश की अपेक्षा अवसरानुकूल निवेश अधिक प्रचलित है।

तालिका–7 : डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग

उपयोग की स्थिति	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
नियमित उपयोग	67	72	139	69.5
कभी–कभी उपयोग	28	24	52	26.0
बहुत कम/नहीं	5	4	9	4.5
योग	100	100	200	100.0

तालिका–7 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 139 उत्तरदाता (69.5 प्रतिशत) डिजिटल वित्तीय सेवाओं का नियमित उपयोग करते हैं। 52 उत्तरदाता (26.0 प्रतिशत) इन सेवाओं का कभी–कभी उपयोग करते हैं, जबकि केवल 9 उत्तरदाताओं (4.5 प्रतिशत) में बहुत कम या उपयोग न करने की स्थिति पाई गई। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि डिजिटल भुगतान, मोबाइल बैंकिंग और इंटरनेट बैंकिंग की सुविधा ने दैनिक वित्तीय लेन–देन को सरल बनाया है। नियमित उपयोग करने वाले उत्तरदाताओं ने समय की बचत और तत्काल भुगतान को प्रमुख सुविधा माना, जबकि सीमित उपयोग करने वालों में सुरक्षा तथा डिजिटल धोखाधड़ी संबंधी सावधानी प्रमुख कारण रही। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चयनित युवाओं के व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार में डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

तालिका–8 : डिजिटल वित्तीय जोखिमों के प्रति जागरूकता

जोखिम–जागरूकता	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
उच्च	42	48	90	45.0
मध्यम	39	35	74	37.0
निम्न	19	17	36	18.0
योग	100	100	200	100.0

तालिका–8 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 90 उत्तरदाता (45.0 प्रतिशत) डिजिटल वित्तीय जोखिमों के प्रति उच्च जागरूकता रखते हैं। 74 उत्तरदाताओं (37.0 प्रतिशत) की जागरूकता मध्यम तथा 36 (18.0 प्रतिशत) की निम्न रही। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि OTP, PIN, पासवर्ड, संदिग्ध लिंक तथा अनधिकृत लेन–देन से संबंधित जानकारी डिजिटल वित्तीय जोखिमों के प्रति सावधानी बढ़ाने में महत्वपूर्ण रही। जिन उत्तरदाताओं में जागरूकता कम थी, उनमें डिजिटल सुविधा की तुलना में सुरक्षा संबंधी जानकारी पर कम ध्यान पाया गया। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि डिजिटल वित्तीय सेवाओं के व्यापक उपयोग के साथ सुरक्षा संबंधी जागरूकता भी विकसित हुई है, लेकिन निम्न जागरूकता वाले उत्तरदाताओं के लिए वित्तीय साइबर–सुरक्षा संबंधी जानकारी को मजबूत करना आवश्यक है।

तालिका–9 : डिजिटल माध्यम से वित्तीय निर्णय

वित्तीय निर्णय की स्थिति	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
स्वयं निर्णय लेते हैं	58	63	121	60.5
सलाह लेकर निर्णय लेते है	32	28	60	30.0
दूसरों पर निर्भर	10	9	19	9.5
योग	100	100	200	100.0

तालिका–9 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 121 उत्तरदाता (60.5 प्रतिशत) डिजिटल माध्यम से संबंधित वित्तीय निर्णय स्वयं लेते हैं। 60 उत्तरदाता (30.0 प्रतिशत)

निर्णय लेने से पहले सलाह लेते हैं, जबकि 19 उत्तरदाता (9.5 प्रतिशत) वित्तीय निर्णयों के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि बैंकिंग एवं डिजिटल भुगतान सेवाओं के नियमित उपयोग से युवाओं में स्वयं वित्तीय निर्णय लेने का आत्मविश्वास बढ़ा है। वहीं निवेश अथवा अपेक्षाकृत अधिक जोखिम वाले निर्णयों में विशेषज्ञ, परिवार या परिचितों से सलाह लेने की प्रवृत्ति भी दिखाई दी। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चयनित युवाओं में व्यक्तिगत वित्तीय निर्णय लेने की क्षमता का स्तर सामान्यतः अच्छा है और डिजिटल माध्यमों ने इस स्वायत्तता को सुविधा प्रदान की है।

तालिका–10 : समग्र व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार

वित्तीय व्यवहार का स्तर	दुर्ग	भिलाई	योग	प्रतिशत
निम्न	18	12	30	15.0
मध्यम	42	38	80	40.0
उच्च	40	50	90	45.0
योग	100	100	200	100.0

तालिका–10 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 90 उत्तरदाता (45.0 प्रतिशत) उच्च व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार स्तर पर हैं। 80 उत्तरदाता (40.0 प्रतिशत) मध्यम तथा 30 उत्तरदाता (15.0 प्रतिशत) निम्न स्तर पर पाए गए। यह स्थिति वित्तीय जागरूकता, बजट निर्माण, बचत, निवेश तथा डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग जैसे विभिन्न व्यवहारों के संयुक्त प्रभाव को दर्शाती है। उत्तरदाताओं से विचार–विमर्श से ज्ञात हुआ कि नियमित आय वाले युवाओं में वित्तीय निर्णयों को स्वयं लेने और बचत को प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक रही। उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चयनित युवाओं में व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार का स्तर सामान्यतः सकारात्मक है और उच्च तथा मध्यम व्यवहार वाले उत्तरदाताओं का स्पष्ट बहुमत है।

परिकल्पना परीक्षण

परिकल्पना "युवाओं की वित्तीय जागरूकता उनके व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन को प्रभावित करती है।" का काई–वर्ग (χ^2) परीक्षण किया गया है। परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर χ^2 का परिकलित मान 47.400 तथा स्वतंत्रता–कोटि (df) 4 प्राप्त हुई है। 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर ($\alpha = 0.05$) पर $df = 4$ के लिए सारणीबद्ध χ^2 मान 9.488 है। काई–स्क्वायर (χ^2) का परिकलित मान 47.400 > 9.488 है तथा प्राप्त p–value 0.001 से कम है। इससे वित्तीय जागरूकता की स्थिति और व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के बीच सांख्यिकीय रूप से स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। चयनित युवाओं में वित्तीय जागरूकता का स्तर अधिक होने पर व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन का स्तर भी अधिक पाए जाने की प्रवृत्ति दिखाई दी है। अतः अध्ययन क्षेत्र से संकलित आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह परिकल्पना सत्यापित होती है।

परिकल्पना "डिजिटल वित्तीय सेवाओं की जागरूकता युवाओं के डिजिटल वित्तीय व्यवहार को प्रभावित करती है।" का काई–वर्ग (χ^2) परीक्षण किया गया है। परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर परिकलित χ^2 मान 59.347 तथा स्वतंत्रता–कोटि (*df*) 4 प्राप्त हुई है। 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर ($\alpha = 0.05$) पर $df = 4$ के लिए सारणी मान 9.488 है। काई–स्क्वायर (χ^2) का परिकलित मान 59.347 > 9.488 है तथा प्राप्त p–value 0.001 से कम है। इससे डिजिटल वित्तीय सेवाओं की जागरूकता की स्थिति और डिजिटल वित्तीय व्यवहार के बीच सांख्यिकीय रूप से स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। चयनित युवाओ मे डिजिटल वित्तीय सेवाओ के प्रति जागरूकता का स्तर अधिक होने पर डिजिटल वित्तीय व्यवहार का स्तर भी अधिक पाए जाने की प्रवृत्ति दिखाई दी है। अतः अध्ययन क्षेत्र से संकलित आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह परिकल्पना सत्यापित होती है।

परिकल्पना **"वित्तीय जागरूकता युवाओं के बचत एवं निवेश संबंधी व्यवहार को प्रभावित करती है।"** के परीक्षण हेतु काई–वर्ग (χ^2) परीक्षण किया गया है। प्राप्त ऑकड़ों के आधार पर परिकलित χ^2 मान 72.632 तथा स्वतंत्रता–कोटि (*df*) 4 प्राप्त हुई है। 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर ($\alpha = 0.05$) पर $df =$ 4 के लिए सारणीबद्ध χ^2 मान 9.488 है। काई–स्क्वायर (χ^2) का परिकलित मान 72.632 > 9.488 है तथा प्राप्त p–value 0.001 से कम है। इससे वित्तीय जागरूकता की स्थिति और बचत एवं निवेश संबंधी व्यवहार के बीच सांख्यिकीय रूप से स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। चयनित युवाओं में वित्तीय जागरूकता का स्तर अधिक होने पर बचत एवं निवेश संबंधी व्यवहार का स्तर भी अधिक पाए जाने की प्रवृत्ति दिखाई दी है। अतः अध्ययन क्षेत्र से संकलित आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह परिकल्पना सत्यापित होती है।

समस्याएँ

दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी के युवाओं के संदर्भ में आय एवं व्यय के संतुलित प्रबंधन, नियमित बचत की कमी, निवेश संबंधी जानकारी का अभाव तथा वित्तीय जोखिमों की सीमित समझ प्रमुख वित्तीय समस्याएँ हैं। डिजिटल वित्तीय सेवाओं के बढ़ते उपयोग के साथ साइबर धोखाधड़ी, ऑनलाइन लेन–देन में सुरक्षा तथा व्यक्तिगत वित्तीय जानकारी की गोपनीयता से संबंधित जोखिम भी महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, युवाओं में उपलब्ध वित्तीय विकल्पों का तुलनात्मक मूल्यांकन कर विवेकपूर्ण बचत एवं निवेश निर्णय लेने की क्षमता में अंतर पाया जाता है।

सुझाव

अध्ययन के आधार पर युवाओं में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए वित्तीय जागरूकता, बजट निर्माण, नियमित बचत एवं निवेश संबंधी व्यावहारिक जानकारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। साथ ही, डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग के साथ डिजिटल सुरक्षा एवं साइबर धोखाधड़ी से बचाव के प्रति भी युवाओं को जागरूक किया जाना आवश्यक है। वित्तीय संस्थानों एवं शैक्षणिक

संस्थानों द्वारा वित्तीय एवं डिजिटल वित्तीय साक्षरता से संबंधित कार्यक्रमों के माध्यम से युवाओं को सुरक्षित और विवेकपूर्ण वित्तीय निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन ''डिजिटल युग में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति युवाओं की जागरूकता एवं वित्तीय व्यवहार का अध्ययन'' के माध्यम से दुर्ग–भिलाई ट्विनसिटी के युवाओं में वित्तीय जागरूकता, व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन तथा डिजिटल वित्तीय व्यवहार की स्थिति का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि युवाओं में वित्तीय जागरूकता का स्तर सामान्यतः संतोषजनक है तथा इसका संबंध उनके व्यक्तिगत वित्तीय व्यवहार से पाया गया है। वित्तीय रूप से अधिक जागरूक युवाओं में बजट निर्माण, बचत, निवेश तथा आय–व्यय प्रबंधन के प्रति अधिक व्यवस्थित व्यवहार देखा गया है। अध्ययन में डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग भी युवाओं के वित्तीय व्यवहार का महत्वपूर्ण हिस्सा पाया गया है। मोबाइल बैंकिंग, डिजिटल भुगतान तथा अन्य डिजिटल वित्तीय सेवाओं के बढ़ते उपयोग के साथ युवाओं में डिजिटल वित्तीय निर्णय लेने की प्रवृत्ति भी दिखाई दी है। डिजिटल वित्तीय जागरूकता के उच्च स्तर वाले युवाओं में डिजिटल वित्तीय सेवाओं के अधिक प्रभावी एवं नियमित उपयोग की प्रवृत्ति पाई गई है। बचत एवं निवेश के संदर्भ में भी वित्तीय जागरूकता का सकारात्मक संबंध पाया गया है। वित्तीय रूप से अधिक जागरूक युवाओं में नियमित बचत तथा निवेश संबंधी व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित पाया गया है। काई–स्क्वायर परीक्षण के परिणामों से तीनों परिकल्पनाओं के समर्थन में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण संबंध प्राप्त हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि युवाओं के व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन में वित्तीय जागरूकता तथा डिजिटल वित्तीय जागरूकता की महत्वपूर्ण भूमिका है। समग्र रूप से अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि ''वित्तीय जागरूकता, डिजिटल वित्तीय सेवाओं का ज्ञान तथा उनका व्यवहारिक उपयोग युवाओं के व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन को सुदृढ़ करने वाले महत्वपूर्ण पक्ष हैं।'' अतः युवाओं के बीच वित्तीय जागरूकता को केवल वित्तीय जानकारी तक सीमित न रखकर बचत, निवेश, व्यय नियंत्रण, डिजिटल सुरक्षा एवं वित्तीय निर्णय लेने के व्यवहार से जोड़ना आवश्यक पाया गया है।

संदर्भ सूची

Linge, A. A., Kakde, B. B., & Jiwani, A. (2025). Factors affecting financial literacy and financial behavior of working young adults in India. *Indian Journal of Finance, 19*(11), 41–64. https://doi.org/10.17010/ijf/2025/v19i11/174049

Srivastava, S., Saxena, A., Gupta, S. K., Singh, V., & Shah, P. (2026). Digital financial literacy among young adults in India: A study of financial awareness, digital financial practices, and financial well-being. *International Journal of Economic Practices and Theories*. https://doi.org/10.52710/ijept.1027

Bhat, S. A., Lone, U. M., SivaKumar, A., & Gopal Krishna, U. M. (2024). Digital financial literacy and financial well-being—Evidence from India. *International Journal of Bank Marketing, 43*(3), 522–548. https://doi.org/10.1108/IJBM-05-2024-0320

Minz, N., & Chaudhary, A. K. (2026). Age-wise analysis of digital financial literacy: Evidence from India. *South Asian Journal of Social Studies and Economics, 23*(7), 70–78. https://doi.org/10.9734/sajsse/2026/v23i71346

Chawla, D., Bhatia, S., & Singh, S. (2022). Parental influence, financial literacy and investment behaviour of young adults. *Journal of Indian Business Research, 14*(4), 520–539. https://doi.org/10.1108/JIBR-10-2021-0357

Mohta, A., & Shunmugasundaram, V. (2024). Moderating role of millennials' financial literacy on the relationship between risk tolerance and risky investment behavior: Evidence from India. *International Journal of Social Economics, 51*(3), 422–440. https://doi.org/10.1108/IJSE-12-2022-0812

Khurana, D., & Sharma, K. (2026). Digital financial literacy and retirement planning behaviour among Indian millennials: A PLS-SEM study based on the capacity–willingness–opportunity framework. *Future Business Journal, 12*, Article 38. https://doi.org/10.1186/s43093-026-00744-6

Kaushik, G., Rahevar, M., Shilpa, S., Puja, & Vijayakumar, A. (2026). Financial literacy and financial inclusion among young adults: The mediating role of digital financial behavior. *Enterprise Development and Microfinance*.

अन्य स्रोत

- District Durg, Government of Chhattisgarh. About district. Official Website
- District Durg, Government of Chhattisgarh. Demography. District Durg – Demography
- District Durg, Government of Chhattisgarh. Economy. District Durg – Economy

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 117-121

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

An Ecocritical Approach To Different Shades of Nature In Ezekiel's Poetry

Dr. Neeta Gupta

Assistant Professor, Department of English

Dayanand Vedic College, Orai.

An Abstract :

Nissim Ezekiel though primarily known for his urban and existential poetry, does incorporate nature into his work albeit in a nuanced and often subtle manner. He does not dwell on grand landscapes or romantic natural imagery but rather uses nature as a metaphor or a back drop to explore human emotions and experiences. Ezekiel often uses the cyclical nature of seasons and the growth and decay of plants to symbolize human life and its inevitable decline.

Key words : Purgation, Flora and fauna, Frost, graphically.

Nissim Ezekiel is chiefly concern with philosophical and psychological realities. He is more concern with the nature of man than with external nature. Still his views on nature are scattered in his poetry. Very few of his poems deal with nature directly. But the references to nature found in several of his poems deserve attention. He is a poet of nature sharing some qualities with Wordsworth as: "Nature never did betray the heart that loved her." (Wordsworth 39) He shares the views that the man is complete only in the company of nature. Frost also draws valuable conclusions from small nature objects and phenomenon as :

The way a crow
Shook down on me
The dust of snow
From a hemlock tree. (Frost 296)

But Ezekiel has his own individuality, he allures more pre-occupied with human nature than with the external nature. But his views about nature are valuable and they deserve a careful scrutiny.

"The Country Cottage" is a simple lyric which is collected in poems (1964-74). Ezekiel poetizes ordinary situations, ordinary creatures. He has composed his very best poetry out of the ordinariness

of human life. He also exhibits his inborn love for Indian landscapes, Indian flora and fauna. He has all sympathy with lower creatures. Ezekiel sees inborn kinship between man and nature. Nature is also a good teacher and he finds valuable morals in birds and lizards. Various aspect of nature and lower creatures are used as vivid symbols and images. In this lyric the lizard is graphically described. The poet contrasts human life, which is marked by laziness, aimlessness and want of determination, with that of a lizard that is known for patience, concentration and determination. Man has to learn much even form a lizard. It was patient, active, firm in determination and strong in will power :

Immobile, tense and grey
he taught us patience as
he waited for the dark
From time to time
Not help but glance at him
and learn again that be
was more alive than us
in silent energy,…. (Ezekiel 158)

We should learn from the lizard that it is only through patient energy that "clean and complete achievement is possible".

"Night of the Scorpion" is perhaps the most famous poem by him. The scene is that of a rainy Indian night. In that horrible night the scorpion crawls beneath a rice bag. It stings the speaker's mother and leaves the house. This setting helps the poet to bring out the different Indian reaction to such a typical situation as this. The illiterate and superstitious never resort to mysterious rights. They think that the pain was infect the purgation of the mother's sins. The speaker's father is a man of scientific view. He takes help of medicines to relieve the mother's pain. The mother's reaction is of utmost value. She says that it was the most fortunate that the scorpion spared the children.

After twenty hours
it lost its sting.
My mother only said:
Thank god the scorpion picked on me
And spared my children. (131)

Ezekiel clearly expresses his concept of function of a poet. He has to have the qualities of a lover and a bird -watcher in him. As a bird watcher watches the birds and studies their tendencies carefully, the poet should explore his theme and find out appropriate expression carefully.

The best poets wait for words.
The hunt is not an exercise of will
But patient love relaxing on a hill
To note the movement to a timid wing; ….(135)

"The Truth about Floods" draws a horrible picture of floods in certain poets of India. The floods are so horrible that they paralyze normal life. What makes the matters worse is the insensitive approach of relief agencies. The government officers are callous and they take the series of the people lightly. Whatever help is done, is for show only. A group of students comes to a flood hit village, distribute biscuits and takes photographs of so called charity. The government officers accept their defeat and wish that a favorable report should be given in newspaper. Thus. nature should fury is made worse by man's callousness.

Nature, they said,
Had conspired against them,
'Write the truth,' they said,
'in your report'
And so I did. (188)

"Words in a Gentle Wind" is another poem which connects the external nature dissolution is very much like the emptiness within him where no love resides. The mirages are very much like his nightmares. This can be described as pathetic fallacy but the fact is that the external nature is the counter part of the poet's self.

…but down the day's
Desert hours, comprehend
At least, mirages, make
The nightmare yield its meaning. (23)

"Song for Spring" is another nature poem with lyrical touch. The spring symbolizes hope which is a reality to the poet. Spring is not a far off thing to the poet. But to realise his hopes he must rid of certain evils. He has to be a man and a loner to fit in the spring of hopes.

Spring, you are here, you are now.
I see you face to face, I know
Your exists and your entrances,
With cue and movements on the stage. (57)

"After Rain" is another poem of similar note. After the rain, everything looks fresh and sweet. The rain symbolizes the gloomy face of his life and after that the world is filled new hopes and

responds to him in a way.

I want to know if, after rain,
The air is purer, sweeter.
If the road in wetness speaks
A different language , …. (63)

"The Fisherman" is another optimistic poem. The fisherman stands in water and flow of water cleanses his self. It cleans his mind and makes him hopeful. Although the fish is sky. It comes to him at last. It reminds us Hemmingway's The Old Man and the Sea, he permits his hero to say, "each one does what he can." but the poem is different in its optimism.

I know these waters well,
They touch my wrists and hands
And flow between my legs
And cleanse the inmost corners of my mind. (Ezekiel 69)

In "Sparrows" the poet is very much inspired by the better creed of sparrows. The fly in the sky and make love. They build small and cozy nests which provides them with a bird's eye-view of things. Their nests have a solitude of prosperity. The poet wishes to learn several artistic forms of these birds who can serve as ideal for man.

Perhaps there is a better creed
Among sparrow- communities;
Artists with a plastic sense
Who learn to love their loneliness. (104)

In the poem "The Morning Walk", the speaker gets up after a dream to go on a morning walk. In his dream he found himself lost on a hill when he wakes - up he finds himself near a dull city. Although in his dream he was no at ease, he finds that his dream was in several ways better than the dull realities of life: The garden on the hill is cool, / Its hedges cut to look like birds / Or mythic beasts are still asleep. (120)

Thus, Nissim Ezekiel is a great of nature. Though nature poetry is not his declared aim. He always sees nature in connection with man and most often with his own self. Several natural objects serve as ideal for him. Nature reflects his dreams and hopes on several occasions acquires symbolic significance. He is a nature poet in his own rights. Nature is to him like cozy nest which gives him a wide world view. He feels at home in nature and learns several things which he wishes to import to his readers. His message for readers in that he should make nature his friend, philosopher and guide.

Works Cited :

1. Ezekiel, Nissim, "Collected Poems", edited by Patel, Gieve. Oxford University Press.
2. Frost Robert, "Dust of Snow". The Poetry of Robert Frost: The Collected Poems, completed and Unabridged. Edited by Edward Connery Lathem, Heary Holt and Company.
3. Hemingway, Earnest. The Old Man and the Sea, Penguin books.
4. Wordsworth, William. "William Wordsworth: The Pedlar, Tintern Abbey, The two part Prelude" Cambridge University Press.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 122-126

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिंदी काव्य के आधार पर महाभारत के चरित्रों का चित्रण

मोनिका

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139

सारांश :

महाभारत भारतीय सभ्यता संस्कृति और साहित्य की ऐसी विराट कृति है जिसमें मनुष्य के नैतिक संघर्ष सत्ता लालसा पारिवारिक विघटन युद्ध प्रेम त्याग और नियति के अनेक रूप दिखाई देते हैं आधुनिक हिंदी कवियों ने महाभारत को केवल धार्मिक आख्यान या पौराणिक इतिहास के रूप में स्वीकार नहीं किया वरन् उसके चरित्रों का पुनर्पाठ करते हुए उन्हें आधुनिक जीवन की समस्याओं से जोड़ा है। रामधारी सिंह दिनकर की रश्मिरथी एवं कुरुक्षेत्र मैथिली शरण गुप्त के जयद्रथ वध धर्मवीर भारती के अंधा युग में नरेश मेहता के संशय की एक रात एवं अन्य रचनाओं में कृष्ण, कर्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर द्रौपदी, भीष्म, गांधारी एवं अश्वत्थामा जैसे पात्र नए अर्थों में सामने आते हैं। आधुनिक काव्य में यह पात्र देवत्व से अधिक मनुष्यता अंर्तद्वंद और सामाजिक प्रश्नों के प्रतिनिधि बन जाते हैं।

बीज शब्द : आधुनिक हिंदी काव्य, महाभारत चरित्र चित्रण, कृष्णा, करण, अर्जुन द्रौपदी, पुनर्पाठ।

प्रस्तावना :

महाभारत की कथा भारतीय साहित्य में निरंतर पुनसृजित होती रही है इसका कारण यह है कि महाभारत के पात्र किसी एक युग या नैतिक व्यवस्था में सीमित नहीं है वह अपने नैतिक कमजोरी और संघर्षों के कारण आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। आधुनिक हिंदी कवियों ने इन चरित्रों को यथावत दोहराने के बजाय उनके भीतर छिपे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक अर्थों को उद्घाटित किया है।

आधुनिकता ने साहित्य के प्रश्नों को दृष्टि प्रदान की परिणाम स्वरूप महाभारत के पात्रों को अच्छे और बुरे की सरल श्रेणियां में बांटने के स्थान पर उनके निर्णयों और परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया।

कर्ण : वंचित समाज का प्रतिनिधि एवं स्वाभिमान का प्रतीक –

आधुनिक हिंदी काव्य में कर्ण सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली महाभारतीय चरित्रों में से एक है। पारंपरिक महाभारत में कर्ण को दुर्योधन का सहयोगी और पांडवों का विरोधी माना गया है परंतु आधुनिक काव्य विशेष रूप से दिनकर कृत रश्मिरथी में कर्ण को एक नायक का दर्जा प्राप्त होता है। दिनकर का कर्ण जन्म आधारित श्रेष्ठता को नकार कर्म आधारित योग्यता का पक्षधर है। वह स्पष्ट उद्घोष करता है :

"जाति-जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाखंड
मैं क्या जानूँ जाति, जाति हैं यह मेरे भुजदण्ड।"[1]

आधुनिक कर्ण आधुनिक युग के उस उपेक्षित वर्ग का प्रतीक है जो प्रतियोगिता के बावजूद केवल कुल और जाति के नाम पर प्रताड़ित किया जाता है।

वह जन्म से सूर्यपुत्र है परंतु सामाजिक व्यवस्था उसे सूत पुत्र कहकर अपमानित करती है। उसके जीवन का मूल संघर्ष प्रतिभा और सामाजिक पहचान के बीच का संघर्ष है।

"जिसके पिता सूर्य थे, माता कुंती सती कुमारी,
उसका पलना हुआ धार पर बहती हुई पिटारी।"[2]

वह दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता के कारण अधर्म के पक्ष में खड़ा हो जाता है। वह अपनी वास्तविक जन्म पहचान से अनभिज्ञ रहता है और जब से उसे सत्य का ज्ञान होता है तब भी वह अपने मित्र और वचन के प्रति निष्ठां नहीं छोड़ता। वह भगवान श्री कृष्ण से कहता है –

"मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब उसे तोल सकता है धन
धरती की तो है क्या विसात, आ जाए अगर बैकुंठ हाथ
उसको भी न्योछावर कर दूं, कुरूपति के चरणों पर धर दूं।"[3]

कर्ण आधुनिक सामाजिक न्याय की आकांक्षा का प्रतीक है दिनकर ने उसके माध्यम से जन्म आधारित ऊँच–नीच का विरोध किया है।

कृष्ण : ईश्वरत्व से मानव मूल्यों की ओर –

पारंपरिक कथाओं में कृष्ण सर्वशक्तिमान ईश्वर है किंतु आधुनिक काव्य में उनके स्वरूप का मानवीकरण हुआ है।

महाभारत में कृष्ण का चरित्र प्रमुख है वह मार्गदर्शक कूटनीतिक दार्शनिक मित्र और ईश्वर सभी रूपों में उपस्थित हैं। आधुनिक हिंदी काव्य में कृष्ण का चित्रण उनके दिव्य रूप से अधिक उनके ऐतिहासिक और नैतिक रूप में किया गया है।

कृष्ण युद्ध को रोकना चाहते हैं परंतु जब शांति असफल होती है तो वह धर्म की स्थापना के लिए रणनीति का सहारा लेते हैं।

"मैत्री की राह बताने को, सबको सुमार्ग पर लाने को
दुर्योधन को समझाने को भीषण विध्वंस बचाने को
भगवान हस्तिनापुर आये पांडव का संदेशा लाये।"[4]

धर्मवीर भारती के अंधा युग में कृष्ण मंच पर प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं होते फिर भी पूरी रचना पर उनका प्रभाव रहता है। युद्ध के बाद का विनाश कृष्ण की नीति और उनकी ऐतिहासिक भूमिका पर प्रश्न खड़ा करता है। वह विजय के नायक होकर भी उस विनाश से मुक्त नहीं है जो युद्ध ने उत्पन्न किया गांधारी द्वारा श्राप दिए जाने पर कहते हैं –

"माता !
प्रभु हूँ या परात्पर

पर पुत्र हूँ तुम्हारा, तुम माता हो !

मैंने अर्जुन से कहा–

सारे तुम्हारे कर्मों का पाप – पुण्य, योगक्षेम
मैं वहन करूँगा अपने कंधो पर
अठारह दिनों के इस भीषण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं ही मरा हूँ करोड़ों बार
जितनी बार जो भी सैनिक भूमिशायी हुआ
कोई नहीं था
वह मैं ही था।"[5]

द्रौपदी : नारी चेतना और आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति –

द्रौपदी आधुनिक हिंदी काव्य के प्रतिरोध स्वाभिमान और स्त्री अस्मिता की प्रतिनिधि है। महाभारत की सभा में उसका अपमान केवल एक स्त्री का अपमान नहीं बल्कि पूरी समाज व्यवस्था की परीक्षा है। आधुनिक कवि द्रौपदी के प्रश्नों को केन्द्र में रखकर पुरुषसत्तात्मक राजनीति और स्त्री की वस्तु स्थिति पर विचार करता है। आधुनिक दृष्टि द्रौपदी के जीवन की विडंबना को भी रेखांकित करती है। वह वीर पुरुषों के बीच रहती है फिर भी सभा में उसकी रक्षा के लिए किसी पुरुष की नैतिक शक्ति पर्याप्त सिद्ध नहीं होती। इसलिए द्रौपदी आधुनिक स्त्री के उस संघर्ष का प्रतीक है जो सम्मान और न्याय के लिए लगातार संघर्ष करती है।

युधिष्ठिर : आधुनिक बुद्धिजीवी के मानसिक द्वन्द का प्रतीक –

युधिष्ठिर को सत्य और धर्म का प्रतीक माना जाता है परंतु आधुनिक हिंदी काव्य ने उनके चरित्र की कमजोरी को भी उजागर किया है। वह धर्मराज कहलाते हैं फिर भी जुए में राज्य संपत्ति और द्रौपदी तक को दाव पर लगा देते है। इससे उनके आदर्श और व्यवहार के बीच का अंतर स्पष्ट होता है।

युधिष्ठिर की सबसे बड़ी विशेषता युद्ध के बाद का पश्चाताप है। विजय प्राप्त करने के बाद भी उन्हें शांति नहीं मिलती। उनके भीतर यह प्रश्न बना रहता है कि जिस विजय की कीमत असंख्य संबंधियों और सैनिकों का जीवन हो वह कितनी नैतिक है–

"जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता;
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को
जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।
और कंही वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता;
तो भी हाय, यह रक्त पात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख मांग मरता।"[6]

इस प्रकार युधिष्ठिर आधुनिक विवेक और आत्मग्लानि के प्रतीक बन जाते हैं।

भीष्म और गांधारी –

भीष्म का चरित्र आधुनिक काव्य में महान प्रतिज्ञा और नैतिक निष्क्रियता के विरोधाभास के रूप में सामने आता है। उन्होंने जीवनभर ब्रह्मचारी रहने एवं हस्तिनापुर की सेवा का व्रत लिया परंतु यही व्रत उन्हें अन्यायपूर्ण सत्ता के सामने मौन रहने को बाध्य करता है। द्रौपदी के अपमान के समय उनका मौन गंभीर नैतिक प्रश्न है। भीष्म यह सिखाते हैं कि केवल प्रतिज्ञा करता पर्याप्त नहीं है। कर्तव्य का नैतिक मूल्यांकन भी आवश्यक है यदि किसी व्यवस्था की रक्षा करते हुए अन्याय को सहन किया जाए तो वह निष्ठा अंततः अपराध में बदल सकती है–

"ब्रह्मचर्य के व्रती, धर्म के
महास्तंभ बल के आगार,
परम विरागी पुरूष जिन्हें,
पाकर भी पा न सका संसार।
किया विसर्जित मुकुट धर्म-हित
और स्नेह के कारण प्राण;
पुरूष विक्रमी कौन दूसरा हुआ
जगत में भीष्म समान?"[7]

गांधारी का चरित्र मातृत्व शोक और नैतिक प्रतिरोध का मिश्रण है। आंखों पर पट्टी बांधना पति के प्रति निष्ठा का प्रतीक माना गया परंतु आधुनिक दृष्टि में यह रास्ता और पारिवारिक अपराधों के प्रति स्वैछिक अंधत्व का प्रतीक है। युद्ध के बाद उनका शोक समुचित सभ्यता के विनाश का कारण बन जाता है। इसी शोक में वह कृष्ण को शाप दे देती है परन्तु बाद में पश्चाताप से ग्रसित होकर कहती हैं–

"रोई नहीं मैं अपने
सौ पुत्रों के लिए
लेकिन कृष्ण तुम पर
मेरी ममता अगाध है।
कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार
तो क्या मुझे दुःख होता ?
मैं थी निराश, मैं कटु थी,
पुत्रहीना थी।"[8]

दुर्योधन –

आधुनिक काव्य में दुर्योधन को केवल खलनायक मानने के बजाय उसके भीतर की जटिलता पर विचार किया गया है। वह महत्वाकांक्षी ईर्ष्यालु और सत्ता लोलुप है लेकिन उसमें मित्रता निभाने कर्ण को सम्मान देने की क्षमता भी है। उसका चरित्र सत्ता की ऐसी मानसिकता का प्रतिनिधि है जो अधिकार को जन्म सिद्ध मानती है और विरोध को सहन नहीं करती–

"किसने देखा नहीं, कर्ण जब निकल भीड़ से आया,

अनायास आतंक एक सम्पूर्ण सभा पर छाया।
कर्ण भले ही सूतपुत्र हो, अथवा श्वपच, चमार,
मलिन मगर इसके आगे हैं सारे राजकुमार।"[9]

दुर्योधन का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह अपनी महत्वाकांक्षा को न्याय का रूप देने की कोशिश करता है। वह राज्य को अपना अधिकार मानता है परंतु दूसरे के अधिकार को स्वीकार नहीं करता। आधुनिक राजनीतिक संदर्भ में उसका चरित्र सत्ता के केंद्रीकरण और शांति के दमन का प्रतीक बन जाता है।

निष्कर्ष –

आधुनिक हिंदी काव्य में महाभारत के चरित्रों का चित्रण परंपरा एवं आधुनिकता के रचनात्मक संवाद का परिणाम है। आधुनिक कवियों ने इन पात्रो को पौराणिक आदर्श से निकाल कर मानव संघर्ष सामाजिक न्याय राजनीतिक सत्ता और नैतिक संकट के संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी काव्य का महाभारत अतीत की कथा होते हुए भी वर्तमान का दस्तावेज बन जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग प्रयागराज, पृ0 स0–15
2. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग प्रयागराज, पृ0 स0–13
3. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग प्रयागराज, पृ0 स0–45
4. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग प्रयागराज, पृ0 स0–35
5. अंधा युग, धर्मवीर भारती, किताब महल प्रकाशन 4655/21 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली पृ0 स0–86
6. कुरूक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल प्रकाशन कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0 स0–11
7. कुरूक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल प्रकाशन कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0 स0–32
8. अंधा युग, धर्मवीर भारती, किताब महल प्रकाशन 4655/21 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 स0–82
9. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग प्रयागराज, पृ0 स0–16

मोनिका
3/447 जानकीपुरम विस्तार, निकट–सेन्ट्रल एकेडमी स्कूल, लखनऊ उ0प्र0 पिन कोड–226031
मो0 न0–9369260547

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 127-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

पाणिनीयव्याकरणं तथा कम्प्यूटेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् : तुलनात्मकम् अध्ययनम्

डॉ. प्रदीप कुमार मीणा

वि.सं.यो, सहायक आचार्य (संस्कृत साहित्य)

ति. श्री गो. राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, नाथद्वारा, राजस्थान।

सारांश (Abstract)

भारतीयज्ञानपरम्परायां पाणिनिमहर्षेः *अष्टाध्यायी* व्याकरणशास्त्रस्य सर्वोच्चप्रतिमानरूपेण प्रतिष्ठिता अस्ति। अष्टाध्याय्यां भाषायाः स्वरूपं नियमबद्धया , तार्किकतया तथा सू त्रात्मकशै ल्याः माध्यमेन प्रतिपादितम् अस्ति। आधुनिकयुगे संगणकविज्ञानस्य , कृत्रिमबुद्धे (Artificial Intelligence), प्राकृतिकभाषासंसाधनस्य (Natural Language Processing) तथा कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् इत्यस्य तीव्रविकासः जातः। एतेषां सर्वेषां क्षेत्रणां मू लाधरः भाषाविश्लेषणम् अस्ति।

अस्य शोधात्रस्य उद्देश्यं पाणिनीयव्याकरणस्य सिद्धन्तानां आधुनिककम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्सिद्धन्तै : सह तुलनात्मकमध्ययनं कर्तुम् अस्ति। अत्र अष्टाध्याय्याः सू त्रचनाया, प्रत्याहारव्यवस्थायाः, कारकसिद्धन्तस्य , परिभाषासू त्रणां, अनुवृत्तेः तथा नियमाधरितव्याकरणस्य आधुनिकभाषाप्रसंस्करणे उपयोगिता विवेच्यते। शो ेन प्रतिपाद्यते यत् पाणिनीयव्याकरणं केवलं पारम्परिकव्याकरणग्रन्थः न अपितु संगणकीयभाषाविज्ञानस्य अपि आधरभू तमॉडेल् इव अवगन्तुं शक्यते।

मुख्यशब्दाः — पाणिनि, अष्टाध्यायी, कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् प्राकृतिकभाषासंसाधनम् (NLP), कृत्रिमबुद्धि , कारकसिद्ध न्तः, भारतीयज्ञानपरम्परा।

१. प्रस्तावना

भाषा मानवसभ्यतायाः मू लाधरः अस्ति।[2] ज्ञानस्य आदानप्रदाने, संस्कृतेः संरक्षणे, समाजस्य विकासे च भाषायाः महत्त्वं सर्वविदितम् । भाषाविज्ञानस्य इतिहासे यदि कश्चित् व्याकरणाचार्यः वै ज्ञानिकदृष्ट्या सर्वाधिकं प्रभावंजनयति, तर्हि सः महर्षिः पाणिनिः एव। तेन विरचिता अष्टाध्यायी विश्वस्य सर्वाधिकसुव्यवस्थितेषु व्याकरणग्रन्थेषु परिगण्यते। [1]

पाणिनिना भाषाया विश्लेषणं सू त्रूपेण कृतम् । प्रत्येकं सू त्रनिश्चितं कार्यं करोति तथा परस्परं नियमशृङ्खलायां सम्बद्धं भवति। एषा प्रणाली आधुनिकसंगणककार्यक्रमेषु (Computer Algorithms) प्रयुज्यमानानां नियमाधरितप्रणालीनां सदृशी दृश्यते।

अधुना कृत्रिमबुद्धे , यन्त्रनुवादस्य , वाक्परिचयस्य, संवादप्रणालीनां, डिजिटलभाषाविज्ञानस्य च क्षेत्रेषु कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् अत्यन्तं महत्त्वपूर्णं शास्त्रं जातम् । अस्य शास्त्रस्य उद्देश्यं मानवभाषायाः वै ज्ञानिकविश्लेषणं कृत्वा तस्य संगणकानुकू लरूपेण प्रस्तुतीकरणम् अस्ति।

एतस्मिन् सन्दर्भे पाणिनीयव्याकरणस्य पुनर्मू ल्यांकनम् अत्यावश्यकम् । अष्टाध्याय्याः सू त्रपद्धतिः प्रत्याहारव्यवस्था, कारकसिद्धा न्तः, धतुपाठः , गणपाठः च आधुनिकभाषाप्रसंस्करणस्य दृष्ट्या अत्यन्तं उपयोगिनः सन्ति।

अतः अस्य शोधपत्रस्य प्रयोजनं पाणिनीयव्याकरणस्य वै ज्ञानिकस्वरूपं प्रकाशयितुं तथा आधुनिककम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्-सिद्धान्तै : सह तस्य तुलनात्मकमू ल्याङ्कनं कर्तुम् अस्ति।

२. अध्ययनस्य आवश्यकता (Need of the Study)

वर्तमानकाले सू चनाप्रौद्योगिकी, कृत्रिमबुद्धि (Artificial Intelligence), यन्त्रधिगमः (Machine Learning), प्राकृतिकभाषाप्रसंस्करणम् (Natural Language Processing) इत्यादीनां क्षेत्रेषु द्रुतगतिना विकासः दृश्यते। एतेषां सर्वेषां क्षेत्रणां मू लाधरः भाषावै ज्ञानिकविश्लेषणम् अस्ति। यन्त्रैः मानवभाषायाः सम्यगवगमनार्थं भाषायाः नियमबद्धसंरचनाया आवश्यकता भवति।

पाणिनिमहर्षेः **अष्टाध्यायी** विश्वस्य प्राचीनतमेषु वै ज्ञानिकव्याकरणग्रन्थेषु अन्यतमा अस्ति। अस्यां ग्रन्थे भाषायाः ध्वनि-, रूप-, पद-, वाक्य-व्यवस्था अत्यन्तं सू क्ष्मतया नियमबद्धरूपेण प्रतिपादिता अस्ति। सू त्रौ ली, अनुवृत्तिः, परिभाषासू त्रणि, प्रत्याहारव्यवस्था, कारकसिद्धन्तः , धतुप्रक्रिया च आधुनिकसंगणकीयविश्लेषणस्य दृष्ट्या अपि अत्यन्तमुपयोगिनः सन्ति।

यद्यपि आधुनिके कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्क्षेत्रे ह्वः अनुसन्धनाः प्रवर्तन्ते , तथापि पाणिनीयव्याकरणस्य तत्रव्यवस्थितं तुलनात्मकमध्ययनं न्यू नतया दृश्यते। अतः भारतीयज्ञानपरम्परायाः वै ज्ञानिकमहत्त्वस्य पुनः प्रकाशनार्थम् भारतीयभाषाणां संगणकीयविकासार्थं च एतादृशस्य अध्ययनस्य विशेषा आवश्यकता विद्यते।

३. अध्ययनस्य औचित्यम् (Rationale of the Study)

अस्य अध्ययनस्य औचित्यं द्विविधम् अस्ति। **प्रथमं**, पाणिनीयव्याकरणं केवलं संस्कृतभाषायाः व्याकरणं न, अपितु सार्वभौमभाषावै ज्ञानिकमॉडेल् इति मन्यते। **द्वितीयं**, आधुनिककम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् भाषाविश्लेषणार्थं नियमाधरितान् (Rule-based Systems), सांख्यिकमॉडेलान् (Statistical Models), कृत्रिमबुद्धिमॉडेलान् च उपयुङ्क्ते। एतेषां नियमाधरितभागे पाणिनीयव्याकरणस्य महत्त्वपूर्णं योगदानं भवितुमर्हति। **तृतीयं**, भारतीयज्ञानपरम्परायाः वै श्विकप्रतिष्ठापनाय पाणिनीयव्याकरणस्य वै ज्ञानिकपक्षस्य प्रस्तुतीकरणम् अत्यावश्यकम् ।**चतुर्थं**, भारतीयभाषाणां यन्त्रनुवादे , स्वचालितभाषाविश्लेषणे, वाक्परिचये, डिजिटलशब्दकोशनिर्माणे च पाणिनीयव्यवस्थायाः उपयोगिता प्रतिपादनीया।

४. उद्देश्यानि (Objectives)

अस्य अनुसन्धनस्य प्रमुखोद्देश्यानि —

1. पाणिनीयव्याकरणस्य वै ज्ञानिकस्वरूपस्य अध्ययनम् ।
2. कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्विषयस्य स्वरूपस्य विवेचनम् ।
3. पाणिनीयव्याकरणस्य आधुनिकभाषाप्रसंस्करणे योगदानस्य मू ल्याङ्कनम् ।
4. कारकसिद्धन्तस्य संगणकीयप्रयोगस्य परीक्षणम् ।
5. भारतीयज्ञानपरम्परायाः आधुनिकप्रौद्योगिक्यां योगदानस्य निरूपणम् ।
6. कृत्रिमबुद्धे संस्कृतभाषायाः उपयोगितायाः विवेचनम् ।

५. अनुसन्धनप्रश्नाः (Research Questions) -

- किं पाणिनीयव्याकरणं आधुनिककम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्सिद्धन्तै : तुलनीयम्?
- कथं पाणिनीयव्याकरणस्य नियमाः संगणकीयप्रक्रियासु प्रयुज्यन्ते?
- कारकसिद्धन्तस्य आधुनिक Dependency Grammar सिद्धन्तेन सह किं साम्यं विद्यते ?
- कृत्रिमबुद्धे विकासे संस्कृतभाषायाः किं योगदानं भवितुमर्हति ?
- भारतीयभाषाणां NLP-विकासे पाणिनीयव्याकरणस्य किं महत्त्वम्?

६. अनुसन्धनपद्धतिः (Research Methodology) -

गुणात्मकः (Qualitative Research) तथा **तुलनात्मकः (Comparative Research)**

- पाणिनीयव्याकरणस्य मू लग्रन्थानां अध्ययनम् ।
- महाभाष्यस्य, काशिकावृत्तेः, सिद्धन्तकौमुद्याः च उपयोगः। [2]
- आधुनिककम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्-साहित्यस्य समीक्षणम् ।
- तुलनात्मकविश्लेषणपद्धत्याः उपयोगः।
- भारतीयविदेशीयशोधात्रणां समीक्षात्मकाध्ययनम् ।

७. साहित्यसमीक्षा (Review of Literature) -

पाणिनिमहर्षेः **अष्टाध्यायी** भारतीयव्याकरणपरम्परायाः आधरभू तः ग्रन्थः अस्ति। पतञ्जलिकृतं **महाभाष्यम्** तथा जयादित्य-वामनकृता **काशिका** अस्य प्रमुखव्याख्याने स्तः। आधुनिककाले प्रो॰ **राजीवसंगलः**, **अक्षरभारती**, **विनीतचै तन्यः** इत्यादयः विद्वांसः *Natural Language Processing: A Paninian Perspective* इति ग्रन्थे पाणिनीयव्याकरणस्य संगणकीयप्रयोगान् विस्तरेण विवेचितवन्तः।[3] तथै व जुराफ्स्की (Jurafsky) तथा मार्टिन (Martin) इत्येतयोः *Speech and Language Processing* नामकग्रन्थे आधुनिकभाषाप्रसंस्करणस्य सिद्धन्ताः प्रतिपादिताः सन्ति। एतेषां तुलनात्मकमध्ययनं दर्शयति यत् पाणिनीयव्याकरणस्य अनेकाः सिद्धन्ताः आधुनिकभाषाविज्ञानस्य पू र्वरूपत्वेन द्रष्टुं शक्यन्ते।[4]

८. पाणिनीयव्याकरणस्य वै ज्ञानिकस्वरूपम् तथा कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्सिद्धन्तै : सह तुलनात्मकम् अध्ययनम्

८.१ पाणिनीयव्याकरणस्य वै ज्ञानिकस्वरूपम्-

भारतीयव्याकरणपरम्परायां महर्षिपाणिनेः *अष्टाध्यायी* सर्वाधिकवै ज्ञानिकग्रन्थत्वेन स्वीकृता अस्ति। अष्टाध्याय्यां प्रायः ३९५९ **सू त्रणि** सन्ति, येषां माध्यमेन संस्कृतभाषायाः ध्वनिव्यवस्था, शब्दरचना, प्रत्ययविधनम् , समासः, तद्धिप्रक्रिया , कृदन्तनिर्माणम्, वाक्यसंरचना च अतीव संक्षिप्तेन किन्तु पू र्णतया प्रतिपादितानि सन्ति।[5]

पाणिनीयव्याकरणस्य प्रमुखविशेषता **लाघवम्, नियमबद्धता** , **तार्किकता**, **संगतिः** तथा **व्यवस्थितसू त्रपद्धतिः** इति। अयं ग्रन्थः केवलं भाषावर्णनपरः न, अपितु भाषानिर्माणस्य (Generative System) वै ज्ञानिकमॉडेल् इव कार्यं करोति।

आचार्यपतञ्जलिना महाभाष्ये उक्तम्—

"महती सू क्ष्मेक्षिकावर्तते सू त्रकारस्य।"[6]

अस्यार्थः— सू त्रकारस्य दृष्टिः अत्यन्तं सू क्ष्मा तथा वै ज्ञानिकाभू त् ।

एषा वै ज्ञानिकता आधुनिकसंगणकीयभाषाविज्ञानस्य अपेक्षाभिः सह सम्यक् मेलं गच्छति।

८.२ सू त्रपद्धतिः एवं Algorithm-सिद्धन्तः -

आधुनिकसंगणकेषु सर्वाणि कार्याणि **Algorithm** इत्यस्य आधरेण सम्पद्यन्ते। Algorithm नाम क्रमबद्धनियमानां समुच्चयः। पाणिनेः अष्टाध्यायी अपि एतादृशमेव नियमाधरिततन्त्रंदृश्यते। [7]

उदाहरणम्—

वृद्धिरादै च् (१.१.१)[8]

अदेङ् गुणः (१.१.२)[9]

एते सू त्रेध्वन्यादेशस्य स्पष्टनियमौ निर्दिशतः। तदनन्तरं अन्यानि सू त्रणि तेषामनुसारमेव कार्यं कुर्वन्ति। अतः प्रत्येकं सू त्रम् एकः Algorithm इव व्यवहरति।[10] यथा आधुनिक Programming Language मध्ये Function, Condition, Priority Rules भवन्ति, तथै व पाणिनीयव्याकरणे—

- अधिकारसू त्रणि
- परिभाषासू त्रणि
- अपवादसू त्रणि
- उत्सर्गसू त्रणि

इत्यादीनि क्रमबद्धतया प्रयुक्तानि सन्ति।

८.३ प्रत्याहारव्यवस्था तथा Data Compression -

पाणिनिना शिवसू त्रणामाधरेण प्रत्याहारव्यवस्था निर्मिता।

यथा—

अच्

हल्

इक्

यण्

इत्यादयः।

अस्य विशेषता एषा यत् दीर्घसू चीं संक्षिप्तरूपेण निरूपयितुंशक्यते। आधुनिकसंगणकविज्ञाने एषा प्रक्रिया **Data Compression** अथवा **Efficient Encoding** इति कथ्यते। अतः प्रत्याहारव्यवस्था अत्यन्तं वै ज्ञानिकाभू त् ।

८.४ अनुवृत्तिः तथा Inheritance Principle -

पाणिनीयव्याकरणस्य अन्यतमा विशेषता अस्ति—**अनुवृत्तिः**। यत्र पू र्वसू त्र्य कश्चन शब्दः अथवा नियमः उत्तरसू त्रेषु अप्रत्यक्षरूपेण प्रवर्तते। आधुनिक Programming भाषासु एषा प्रक्रिया **Inheritance** अथवा **Scope Management** इति ज्ञायते। अतः पाणिनीयव्याकरणे सू चनस्पुनरावृत्तेः आवश्यकता न्यू ना भवति। एषा प्रणाली सङ्गणकीयदृष्ट्या अत्यन्तं प्रभावशालिनी अस्ति।

८.५ कारकसिद्धन्तः तथा Dependency Grammar -

आधुनिक Computational Linguistics मध्ये **Dependency Grammar** महत्त्वपू र्णः सिद्धन्तः अस्ति। अस्य मुख्यविचारः—

वाक्ये प्रत्येकं पदं अन्येन पदेन सह सम्बन्धंधरयति।

पाणिनिना कारकसिद्धन्ते अपि एष एव विचारः प्रतिपादितः।

उदाहरणम्—

रामः वनं गच्छति।

अत्र—

रामः → कर्ता

वनम् → कर्म

गच्छति → क्रिया

अस्य सम्बन्धस्य विश्लेषणं कारकसिद्धन्तेन भवति।

Dependency Parsing मध्ये अपि एतदेव क्रियते।

अतः पाणिनीयकारकसिद्धन्तः आधुनिक Dependency Grammar-स्य पू र्वरूपम् इति मन्यते।[11]

८.६ धतुपाठः तथा Lexical Database -

पाणिनीयव्याकरणे धतुपाठे सहस्राधिकाः धतवः संगृहीताः।

प्रत्येकस्य धतोः —

- अर्थः
- गणः
- प्रयोगः

निर्दिष्टः।

आधुनिक Natural Language Processing मध्ये एतदेव **Lexicon** अथवा **Lexical Database** इति कथ्यते।

Word Net, Lexical Resources इत्यादीनि धतुपाठस्य आधुनिकरूपाणि मन्यन्ते।

८.७ नियमाधरितप्रणाली (Rule-based System) तथा पाणिनीयव्याकरणम् -

कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् प्रारम्भिककाले मुख्यतयRule-based System उपयुञ्जते स्म। पाणिनीयव्याकरणम् अपि पू र्णतयाRule-based अस्ति। अतः अष्टाध्यायी संगणकीयप्रणालीनां निर्माणे आदर्शमॉडेल् भवितुमर्हति।

८.८ पाणिनीयव्याकरणस्य कृत्रिमबुद्धौ योगदानम् -

वर्तमानकाले Chat bots, Machine Translation, Voice Recognition, Question Answering Systems इत्यादयः AI-अनुप्रयोगाः भाषाविश्लेषणम् अपेक्षन्ते। यदि संस्कृतभाषायाः संगणकीयविश्लेषणं करणीयं भवेत्, तर्हि पाणिनीयव्याकरणस्य सिद्धन्ताः सर्वोत्तमाधरः भविष्यन्ति।

विशेषतः—

- Morphological Analysis
- Syntax Parsing
- Semantic Analysis
- Machine Translation
- Knowledge Representation

इत्येषु क्षेत्रेषु पाणिनीयव्याकरणस्य विशेषोपयोगिता दृश्यते।

८.९ तुलनात्मकसारणी -

पाणिनीयव्याकरणम्	**कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्**
सू त्रपद्धतिः	Algorithm
प्रत्याहारः	Data Encoding
अनुवृत्तिः	Inheritance
कारकसिद्धन्तः	Dependency Grammar
धतुपाठः	Lexical Database
नियमाः	Rule Engine
शब्दनिर्माणम्	Morphological Generation
वाक्यविश्लेषणम्	Parsing

८.१० समालोचनात्मकमू ल्याङ्कनम्-

यद्यपि पाणिनीयव्याकरणस्य वै ज्ञानिकता निर्विवादा अस्ति तथापि आधुनिककृत्रिमबुद्धि केवलं नियमाधरितपद्धत्याः उपरि न तिष्ठति। अद्यतनभाषाप्रसंस्करणे सांख्यिकमॉडेलाः, मशीन-अधिगमः (Machine Learning) तथा विशालभाषामॉडेलाः (Large Language Models) अपि महत्त्वपू र्णां भू मिकां निर्वहन्ति। अतः पाणिनीयव्याकरणं तेषां स्थानं न गृह्णाति, किन्तु विशेषतः **व्याकरणिकविश्लेषणे, भारतीयभाषासंसाधने तथा नियमाधरितव्याख्याने** दृढं सै द्धन्तिकमू लं प्रददाति। भविष्ये पाणिनीयसिद्धन्तानां आधुनिक -एआई-पद्धतिभिः सह समन्वयः भारतीयभाषाप्रौद्योगिक्याः विकासे अत्यन्तं फलदायी भवितुमर्हति।

९. उपसंहारः (Discussion) -

अस्मिन् शोधक्षेत्रे पाणिनीयव्याकरणस्य आधुनिककम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्सिद्धन्तै : सह तुलनात्मकमध्ययनं कृतम् । अध्ययनात् ज्ञायते यत् पाणिनिमहर्षेरष्टाध्यायी केवलं संस्कृतव्याकरणस्य ग्रन्थः न, अपितु भाषावै ज्ञानिकतर्कस्य नियमाधरितव्यवस्थायाः तथा संगणकीयभाषाविश्लेषणस्य अपि अनुपमः आदर्शः अस्ति। अष्टाध्याय्यां सू त्रणां संक्षिप्तता, नियमानां परस्परसंबद्धता , प्रत्याहारव्यवस्था, अनुवृत्तिः, अधिकारसू त्रणि , परिभाषासू त्रणि, कारकसिद्धन्तः , धतुपाठः इत्यादयः आधुनिकभाषाविज्ञानस्य अनेकेषां सिद्धन्तानां पू र्वरूपत्वेन दृश्यन्ते। आधुनिककम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्-क्षेत्रे प्रयुज्यमानाः Morphological Analysis, Parsing, Lexical Database, Rule Engine, Dependency Grammar इत्यादयः विषयाः पाणिनीयव्याकरणेन सह उल्लेखनीयं साम्यं दर्शयन्ति। तथापि एतदपि ज्ञेयम् यत् आधुनिककृत्रिमबुद्धि केवलं नियमाधरितप्रणा ल्यां न तिष्ठति। अधुना सांख्यिकमॉडेलाः , मशीन-अधिगमः (Machine Learning), तन्त्रिकाजालानि (Neural Networks), विशालभाषामॉडेलाः (Large Language Models) च प्रमुखभू मिकां निर्वहन्ति। अतः पाणिनीयव्याकरणस्य योगदानं विशेषतः व्याकरणिकसंरचनायाः वै ज्ञानिकमू लाधररूपेण अवगन्तव्यम्।[12] अतः भारतीयज्ञानपरम्परायाः आधुनिकविज्ञानेन सह समन्वयः न केवलं सम्भवः , अपितु अत्यन्तम् अपेक्षितोऽपि अस्ति।

१०. निष्कर्षः (Conclusion) -

अध्ययनस्य समग्रविश्लेषणेन एते निष्कर्षाः प्राप्ताः—

1. पाणिनीयव्याकरणम् विश्वस्य अत्यन्तं वै ज्ञानिकं तथनियमबद्धव्याकरणतन्त्रंअस्ति।
2. अष्टाध्याय्याः सू त्रद्धतिः आधुनिक -अल्गोरिद्मिक-चिन्तनस्य सदृशी दृश्यते।
3. प्रत्याहारव्यवस्था, अनुवृत्तिः, कारकसिद्धन्तः , धतुपाठः च कम्प्यू टेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स्दृष्ट्या अत्यन्तमुपयोगिनः सन्ति।
4. भारतीयभाषाणां प्राकृतिकभाषाप्रसंस्करणे (NLP) पाणिनीयमॉडेलस्य विशेषं योगदानं भवितुमर्हति।[13]
5. पाणिनीयव्याकरणं आधुनिककृत्रिमबुद्धेः स्थानं न गृह्णाति , किन्तु तस्य व्याकरणिकाधररूपेण महत्त्वपू र्णं मार्गदर्शनं करोति।
6. भविष्ये संस्कृतव्याकरणस्य सिद्धन्तानां आधुनिक -AI-प्रणालीभिः सह समन्वयः भारतीयभाषाप्रौद्योगिक्याः विकासे महत्त्वपू र्णां भू मिकां निर्वहिष्यति।
7. भारतीयज्ञानपरम्परायाः वै ज्ञानिकपक्षस्य पुनर्प्रतिष्ठापनाय एतादृशानि अनुसन्धनानि अत्यावश्यकानि सन्ति।

पादटिप्पणियाँ (Footnotes)

[1] George Cardona, *Pāṇini: His Work and Its Traditions*, Vol. I (Delhi : Motilal Banarsidass, 1988), p. 15.

[2] भट्टोजिदीक्षितः, *सिद्धन्तकौमुदी* , (वाराणसी: चौखम्ब संस्कृत संस्थान) , पृ. १२।

[3] Akshar Bharati, Vineet Chaitanya and Rajeev Sangal, *Natural Language Processing: A Paninian Perspective* (New Delhi: Prentice Hall of India, 1995), pp. 32–48.

[4] Daniel Jurafsky and James H. Martin, *Speech and Language Processing*, 3rd ed. (Draft Edition), Chapter 1.

[5] Noam Chomsky, *Syntactic Structures* (The Hague: Mouton, 1957), pp. 13–20.

[6] पतञ्जलिः, *महाभाष्यम्* (सम्पा. एफ. कीलहॉर्न, पुणे: भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट) पृ. १।

[7] John J. Lowe, "Formal Language Theory and Computational Power," in *Modern Linguistics in Ancient India* (Cambridge University Press, 2024), pp. 137–164

[8] पाणिनिः, *अष्टाध्यायी*, १.१.१।

[9] पाणिनिः, *अष्टाध्यायी*, १.१.२।

[10] John Kadvany, "Pāṇini's Grammar and Modern Computation," History and Philosophy of Logic 37, no. 4 (2016): 325–346.

[11] पाणिनीय-कारकसिद्धन्तस्य आधुनिक -Dependency Grammar-सिद्धन्तेन साम्यं भारतीयभाषा -NLP-अनुसन्धनेषु विस्तरेण विवेचितम्।

[12] Stuart Russell and Peter Norvig, *Artificial Intelligence: A Modern Approach*, 4th ed. (Pearson, 2021), pp. 1–25.

[13] Ritwik Banerjee and Lav R. Varshney, "A Pāninian Foundation for Indic Language Processing," arXiv (2026).

निवास- बछला (झुसावाड़ा), खै रवाडा जिला उदयपुर (राज.)

Email - pcrresearcharticle@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 135-139

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में विवाह–संस्था, पीढ़ीगत संघर्ष और स्त्री की निर्णय–स्वायत्तता : समाजशास्त्रीय एवं स्त्रीवादी अध्ययन

उषा रानी
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

सारांश :

प्रस्तुत शोध–पत्र विष्णु प्रभाकर के तीन नाटकों, 'डॉक्टर' (1958), 'युगे–युगे क्रांति' और 'टूटते परिवेश', के आधार पर यह जाँचता है कि उनके यहाँ विवाह किस तरह परिवार की सत्ता–संरचना, पीढ़ियों के टकराव और स्त्री के निर्णय–अधिकार को एक साथ बाँधने वाली संस्था है। अध्ययन पाठ–केंद्रित है और उसमें समाजशास्त्रीय आलोचना तथा स्त्रीवादी विमर्श की अवधारणाओं, विशेषतः पितृसत्ता, सामाजिक नियंत्रण और कर्तृत्व, का उपयोग किया गया है। केंद्रीय तर्क यह है कि इन नाटकों में विवाह वह बिंदु है जहाँ हर पीढ़ी अपनी स्वतंत्रता अर्जित करती है और फिर अगली पीढ़ी की स्वतंत्रता पर पहरा बैठा देती है। इस चक्र में स्त्री का निर्णय पहले पुरुष के सुधार–संकल्प का विषय रहता है और बाद में आंदोलन, नौकरी तथा व्यवसाय के सहारे उसका अपना हो पाता है। निष्कर्ष यह है कि नाटककार की सहानुभूति स्त्री की स्वायत्तता के साथ है, किंतु उनकी गांधीवादी नैतिक दृष्टि उस स्वायत्तता को दायित्व और करुणा की कसौटी पर ही स्वीकार करती है। पत्र इस शर्त को उनकी सीमा के रूप में भी पढ़ता है।

बीज शब्द :

विष्णु प्रभाकर, विवाह–संस्था, पीढ़ीगत संघर्ष, स्त्री–स्वायत्तता, पितृसत्ता, सामाजिक नियंत्रण, कर्तत्व।

प्रस्तावना :

विष्णु प्रभाकर (1912–2009) को हिंदी पाठक प्रायः 'आवारा मसीहा' के जीवनीकार के रूप में याद करता है, पर उनके लेखन का बड़ा हिस्सा रंगमंच और रेडियो के लिए लिखा गया। उनके नाटकों की जमीन मध्यवर्गीय घर है और उस घर में विवाह का प्रश्न बार–बार लौटता है। भारतीय समाज में विवाह दो व्यक्तियों का निजी अनुबंध कम रहा है, कुल की प्रतिष्ठा, जाति की सीमा और उत्तराधिकार का प्रबंध अधिक (उबेरॉ, 1993)। इसलिए जीवनसाथी कौन चुनेगा, इस प्रश्न के भीतर यह प्रश्न छिपा रहता है कि परिवार में निर्णय किसका चलेगा।

यहाँ चुने गए तीन नाटक इस प्रश्न को अलग–अलग कोण से खोलते हैं। 'डॉक्टर' पति द्वारा छोड़ी गई स्त्री के भीतरी संघर्ष का नाटक है, 'युगे–युगे क्रांति' एक ही कुल की पाँच पीढ़ियों में विवाह के बदलते रूप का

लेखा है और 'टूटते परिवेश' एक मध्यवर्गीय परिवार के बिखरने की कथा है। तीनों को साथ पढ़ने पर जो बात उभरती है वही इस पत्र का तर्क है कि प्रभाकर के यहाँ विवाह–संस्था, पीढ़ियों का संघर्ष और स्त्री की स्वायत्तता एक ही प्रक्रिया के तीन चेहरे हैं, और वह प्रक्रिया है पितृसत्ता का हर पीढ़ी में अपने को नया कर लेना। अध्ययन की एक सीमा है। 'डॉक्टर' के उद्धरण उसके प्रथम संस्करण से हैं, जबकि शेष दो नाटकों का मूल पाठ उपलब्ध न होने से उनके प्रसंग प्रकाशित समीक्षा और पाठ्य–सामग्री से मिलाकर रखे गए हैं।

विवाह-संस्था का समाजशास्त्रीय पाठ :

'डॉक्टर' में विवाह का सबसे निर्मम समाजशास्त्र एक सेवक के मुँह से सुनाई देता है। नर्सिंग होम का रामू हँसी–हँसी में कह जाता है कि आदमी की एक शादी धर्म की होती है और दूसरी रुतबे की (प्रभाकर, डॉक्टर 28–29)। इंजीनियर सतीशचंद्र शर्मा ने पंद्रह वर्ष पहले अपनी पहली पत्नी मधुलक्ष्मी को इसलिए छोड़ दिया था कि अफसर बन जाने के बाद वह कम पढ़ी–लिखी स्त्री उसकी 'सोसायटी' में उठने–बैठने लायक नहीं रही थी (वही 130)। पत्नी यहाँ पति की सामाजिक हैसियत का प्रमाण–पत्र है, जिसे हैसियत बदलने पर बदला जा सकता है। लेखक ने नाटक का समय 1950–60 का भारत बताया है, यानी परित्याग उस दौर का है जब देश के अधिकांश भागों में हिंदू पुरुष के लिए दूसरा विवाह कानूनन वर्जित नहीं था। 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम के ठीक बाद छपा यह नाटक उस अन्याय का हिसाब माँगता है जिसे क़ानून बहुत देर से पहचान पाया।

'युगे–युगे क्रांति' में संस्था का दूसरा पक्ष खुलता है। 1875 के आसपास का कल्याण सिंह इतना भर चाहता है कि दिन के उजाले में अपनी पत्नी रामकली का मुँह देख सके, और इस अपराध पर पिता के हाथों पिटता है। जहाँ पति–पत्नी का एक–दूसरे को देखना मर्यादा–भंग हो, वहाँ विवाह दांपत्य से पहले कुल का अनुशासन है। अगली पीढ़ी में प्यारेलाल विधवा कलावती से विवाह करना चाहता है तो पिता की आपत्ति का आधार समाज में होने वाली बदनामी है। विधवा–पुनर्विवाह को क़ानूनी मान्यता मिले लगभग आधी सदी बीत चुकी थी, फिर भी विवाह–स्थल के बाहर विरोध करने वाले जुट जाते हैं (चौधरी)। समाजशास्त्र जिसे सामाजिक नियंत्रण कहता है, उसका यह सटीक चित्र है। क़ानून अनुमति देता है, पर बिरादरी की निगाह, लोकनिंदा का भय और पिता की मार मिलकर उस अनुमति को बेअसर किए रहते हैं।

पीढ़ियों का संघर्ष और मूल्यों का विस्थापन :

'युगे–युगे क्रांति' की बनावट अपने आप में पीढ़ीगत संघर्ष की व्याख्या है। नाटक पाँच कालखंडों में चलता है, 1875, 1901, 1920–21, 1942 और समकालीन, और हर खंड में वही दृश्य नए वेश में लौटता है। संतान विवाह के प्रश्न पर विद्रोह करती है और पिता उसे घर से निकाल देता है। विडंबना यह है कि निकालने वाला पिता पिछले खंड का विद्रोही है। पर्दा तोड़ने वाला कल्याण सिंह विधवा–विवाह पर बेटे को पीटता है। विधवा से विवाह करने वाला प्यारेलाल असहयोग आंदोलन में जेल जाने वाली बेटी शारदा के लिए घर का दरवाजा बंद कर देता है। अपनी पसंद से विमल को चुनने वाली शारदा बेटे प्रदीप की ईसाई पत्नी जैनेट के सामने शर्त रखती है। और प्रदीप तथा जैनेट तब हतप्रभ रह जाते हैं जब बेटी अन्विता निमंत्रण–पत्र पर प्रेमी दीपक की जगह चित्रकार नेल्सन का नाम छपवा लाती है और बेटा अनिरुद्ध विवाह को ही व्यर्थ का बंधन ठहरा देता है।

पीढ़ियों का झगड़ा उम्र भर का होता तो हर युग में एक ही मुद्दे पर होता। यहाँ मुद्दा हर बार बदलता है,

क्योंकि हर पीढ़ी का 'आधुनिक' अपने समय के ऐतिहासिक अनुभव से बनता है, कभी आर्य समाज के सुधार से, कभी गांधी के आंदोलन से, कभी महानगर की नौकरी से। जो नहीं बदलता, वह है अभिभावक का यह विश्वास कि संतान के जीवन का निर्णय उसी की थाती है। अंतिम दृश्य का देवीप्रसाद इसे ठीक पकड़ता है। बेटी के विवाह कर लेने की ख़बर पर उसे पहले राहत होती है कि एक जिम्मेदारी उतरी, और अगले ही क्षण चोट लगती है कि उससे पूछा नहीं गया। इस पीड़ा में स्नेह और स्वामित्व इतने घुले हुए हैं कि उन्हें अलग करना कठिन है।

'टूटते परिवेश' में यही टकराव करुण स्वर में आता है। दीवाली की शाम विश्वजीत घंटों प्रतीक्षा करते हैं कि परिवार लक्ष्मी–पूजन के लिए जुटे, और कोई नहीं आता। बेरोजगार बेटे विवेक को पिता का हर आग्रह अधिकार की भाषा लगता है और वह कह देता है कि आश्रित होना गुलाम होना नहीं है। विश्वजीत नई पीढ़ी को स्वार्थी मानते हैं। पर शीर्षक परिवेश के टूटने की बात करता है, संतान के बिगड़ने की नहीं, और अंत में बच्चे लौटते भी नहीं। मरने के इरादे से घर छोड़कर फिर लौट आए विश्वजीत के पास प्रतीक्षा भर बचती है। पुरानी व्यवस्था की वापसी में भरोसा रखने वाला लेखक अपना नाटक इस तरह समाप्त न करता।

स्त्री की निर्णय-स्वायत्तता :

क्या प्रभाकर की स्त्री को अपना जीवनसाथी चुनने का अधिकार है? 'युगे–युगे क्रांति' की शुरुआती पीढ़ियों में उत्तर नकारात्मक है। पर्दे के विरुद्ध क्रांति कल्याण सिंह की है, जबकि रामकली शुरू में पति को मुँह दिखाना भी कुल की मर्यादा का उल्लंघन समझती है। विधवा–विवाह प्यारेलाल का संकल्प है। कलावती, जिसके जीवन का यह निर्णय है, उपलब्ध कथा–विवरणों में लगभग मौन है। उन्नीसवीं सदी के समाज–सुधार में स्त्री सुधार का विषय थी, उसकी कर्ता नहीं, और नाटक इस ऐतिहासिक सच को बिना टिप्पणी के सामने रख देता है। कर्तृत्व पहली बार शारदा में दिखता है। वह पिता की मार खाकर भी धरने पर बैठती है और जेल में मिलने आए विमल से कह देती है कि उस घुटन भरे घर में अब नहीं लौटेगी। जैनेट एक क़दम आगे है। दफ्तर में काम करने वाली यह स्त्री, जिससे नाम बदलकर जाह्नवी हो जाने को कहा जाता है, सास से शांत स्वर में कह देती है कि जो घर उसे जैसी वह है वैसी स्वीकार नहीं करता, वहाँ रुकने को वह पति से नहीं कहेगी ('युगे–युगे क्रांति नाटक की तात्विक समीक्षा')।

पारिवारिक प्रतिष्ठा स्त्री के निर्णय पर कैसे दबाव बनाती है, इसका सबसे सूक्ष्म उदाहरण 'डॉक्टर' की अनीला है। परित्याग के बाद मधुलक्ष्मी ने नाम बदला और डॉक्टर अनीला बनकर अपना नर्सिंग होम खड़ा किया। आर्थिक रूप से वह पूरी तरह स्वतंत्र है। फिर भी जब डॉ. केशव विवाह की बात उठाते हैं तो उसकी पहली प्रतिक्रिया यही है कि इस आयु में सब क्या कहेंगे (प्रभाकर, डॉक्टर 104)। जिस समाज ने उसे छोड़ दिया, वह अब भी उसी की निगाह से अपने को देखती है। पति अपनी दूसरी पत्नी को ऑपरेशन के लिए उसी नर्सिंग होम में ले आता है, यह जाने बिना कि डॉक्टर कौन है। अनीला बार–बार कहती है कि वह रोगिणी को मार डालेगी, और अंत में सफल ऑपरेशन करती है।

इस समाधान को आदर्शवादी कहा गया है, और लेखक ने भूमिका में यह आपत्ति स्वयं दर्ज की है (वही, दो शब्द)। पर पाठ दूसरी ओर संकेत करता है। अनीला पति को क्षमा नहीं करती। ऑपरेशन से पहले वह उससे मिलती तक नहीं, और अंत में सामना होने पर डॉक्टर की तरह इतना कहकर कि ऑपरेशन सफल रहा, केशव

के साथ निकल जाती है। पुराना नाम पुकारते सतीशचंद्र को उत्तर उसके बड़े भाई कर्नल माधव देते हैं, 'मधुलक्ष्मी मर चुकी है। यह डाक्टर अनीला, और तुम्हारे लिये केवल डाक्टर' (वही 131)। पत्नी की भूमिका से निकलकर व्यवसाय की पहचान में खड़ा होना ही यहाँ प्रतिरोध है। फिर भी एक खटका रह जाता है। अंतिम वाक्य अनीला के भाई का है, उसका अपना नहीं, और अपने भीतर की गाँठ तक भी उसे दो पुरुष पहुँचाते हैं, भाई और केशव। प्रभाकर की स्वावलंबी स्त्री अपने पैरों पर खड़ी है, पर उसकी कथा का भाष्य अब भी पुरुष–स्वर में होता है।

'टूटते परिवेश' की मनीषा इस स्वर को अपने हाथ में ले लेती है। नाटक के आरंभ में ही वह कहती है, 'मैं अपना मार्ग आपको चुनने का अधिकार नहीं दे सकती' ('टूटते परिवेश')। वह दूसरे धर्म के युवक से विवाह करती है और घर को फोन पर सूचना भर देती है। यहीं प्रभाकर की दुविधा दिखती है। निर्णय का अधिकार उन्हें स्वीकार है, पर जब वह दायित्व से कटकर आता है, जैसे पिता के लापता होने पर भी मनीषा का न रुकना, तो उनका गांधीवादी मन विचलित होता है। स्त्री की इच्छा और पारिवारिक दायित्व के बीच का तनाव यहाँ सुलझता नहीं, खुला छोड़ दिया जाता है।

समाजशास्त्रीय और स्त्रीवादी दृष्टि का अंतर्संबंध :

तीनों नाटकों को साथ रखने पर विवाह, पीढ़ी और स्त्री के प्रश्न एक–दूसरे के भीतर से गुजरते दिखते हैं। पितृसत्ता यहाँ उस व्यवस्था का नाम है जो विवाह के माध्यम से तय करती है कि कौन किसके घर जाएगा, किस नाम से जाना जाएगा और किसकी अनुमति से। पीढ़ीगत संघर्ष इस व्यवस्था में दरार डालता है, पर दरार भरने का काम भी वही लोग करते हैं जिन्होंने उसे डाला था। डेनिज कांदियोती की 'पितृसत्ता से सौदेबाजी' की धारणा यहाँ काम आती है। उनके अनुसार स्त्रियाँ व्यवस्था के भीतर अपने लिए सुरक्षा के छोटे क्षेत्र बनाती हैं और उम्र के साथ, सास बनकर, उसी की संरक्षक हो जाती हैं (कांदियोती 1988)। बहू के धर्म पर अड़ी शारदा इसी का उदाहरण है।

कल्याण सिंह, प्यारेलाल और प्रदीप का विद्रोह उन्हें कुछ समय के लिए घर से बाहर करता है, उनकी पहचान नहीं छीनता। स्त्री के लिए दाँव बड़ा है। मधुलक्ष्मी को नया नाम गढ़ना पड़ता है और जैनेट से नाम छोड़ने को कहा जाता है। इसी कारण इन स्त्रियों की स्वायत्तता घर के बाहर के किसी आधार पर टिकी मिलती है। शारदा का आधार आंदोलन है, जैनेट दफ्तर में काम करती है और अनीला का अपना नर्सिंग होम है। जहाँ ऐसा आधार नहीं, वहाँ निर्णय पुरुष के हाथ में रहता है, भले वह पुरुष सुधारक हो।

निष्कर्ष :

प्रभाकर के नाटकों में विवाह हैसियत, बिरादरी और धर्म की सीमाओं को साधने वाली संस्था है, जिसकी कधिमत सबसे पहले स्त्री चुकाती है। हर विद्रोही अगली पीढ़ी का नियंत्रक बन जाता है, इसलिए 'क्रांति' हर युग में फिर से करनी पड़ती है। स्त्री की निर्णय–स्वायत्तता रामकली के संकोच से शारदा के धरने, अनीला के पेशे और मनीषा की घोषणा तक क्रमशः बढ़ती है, पर नाटककार की स्वीकृति हर चरण पर एक–सी नहीं रहती। दायित्व और करुणा के साथ आई स्वायत्तता के पक्ष में वे साफ खड़े हैं, पर मनीषा की तरह जब वह संबंधों से कटती दिखती है तो उनका स्वर संशय का हो जाता है।

इसे उनकी सीमा कहना चाहिए, क्योंकि अनीला और मनीषा से वह मूल्य चुकाने की अपेक्षा है जो सतीशचंद्र या विवेक से नहीं की जाती। पर इसी संशय के कारण ये नाटक नारे बनने से बचे रहते हैं और उस

प्रश्न को खुला रखते हैं कि स्वतंत्रता और संबंध साथ–साथ कैसे निभें। अंतर्जातीय और अंतर्धार्मिक विवाहों पर आज भी उठने वाले विवाद बताते हैं कि जैनेट से नाम बदलने की माँग करने वाला घर अभी इतिहास नहीं हुआ है। प्रभाकर उसी घर के भीतर बैठकर लिखते हैं, और इन नाटकों को आज पढ़ने का कारण मुझे यही लगता है।

संदर्भ सूची :

1. प्रभाकर, विष्णु. डॉक्टर. प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1958.
2. प्रभाकर, विष्णु. विष्णु प्रभाकर के सम्पूर्ण नाटक. प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1988. ('टूटते परिवेश' इसी ग्रंथमाला में संकलित है।)
3. विष्णु प्रभाकर. तृतीय सेमेस्टर (बी.सी.ए.) हिंदी अध्ययन–सामग्री, 2020. nhck.in/wp-content/uploads/2020/06/IIISEM-BCA.pdf
4. 'युगे–युगे क्रांति नाटक की तात्विक समीक्षा.' हिंदी व्याकरण, 5 जुलाई 2023. www.hindivyakran.com/2023/07/yuge-yuge-kranti-ki-tatvik-samiksha.html
5. 'टूटते परिवेश.' पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड की ग्यारहवीं कक्षा की हिंदी पाठ्यपुस्तक के पाठ 34 पर आधारित अध्ययन–सामग्री, PSEB Solutions, 9 दिसंबर 2021. psebsolutions.com/pseb-11th-class-hindi-solutions-chapter-34/
6. Kandiyoti, Deniz. "Bargaining with Patriarchy." Gender and Society, vol. 2, no. 3, 1988, pp. 274-290.
7. Uberoi, Patricia, editor. Family, Kinship and Marriage in India. Oxford University Press, Delhi, 1993.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 140-143

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा में रामायण और महाभारत का वैज्ञानिक व सांस्कृतिक योगदान

प्रथम भनोत्रा

सहायक प्राध्यापक, इतिहास,

शासकीय महाविद्यालय, कन्नौद (म. प्र)

सारांश :-

भारतीय ज्ञान परंपरा अत्यंत प्राचीन, बहुआयामी और वैज्ञानिक दृष्टि से समृद्ध रही है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य न केवल धार्मिक और नैतिक शिक्षा प्रदान करते हैं, बल्कि इनमें विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, गणित, युद्धकला, पर्यावरण ज्ञान तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के कई तथ्य भी शामिल हैं। यह शोध–पत्र दोनों महाकाव्यों में विद्यमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी आयामों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, साथ ही यह बताता है कि किस प्रकार ये ग्रंथ भारतीय सभ्यता के वैज्ञानिक विकास की पुष्टि करते हैं।

भूमिका :-

भारतीय ज्ञान परंपरा में इतिहास का अर्थ केवल घटनाओं के क्रम से नहीं, बल्कि धर्म, विज्ञान, संस्कृति और समाज के समन्वय से है। इस परंपरा में ज्ञान का हर रूप 'चाहे वह दार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो या सामाजिक' एक–दूसरे से गहराई से जुड़ा हुआ है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य इसी समन्वित परंपरा के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। ये ग्रंथ भारतीय समाज के नैतिक मूल्यों, धार्मिक धारणाओं और दार्शनिक दृष्टिकोण का तो आधार हैं ही, साथ ही इनमें विज्ञान और तकनीकी ज्ञान के कई आयाम भी अंतर्निहित हैं। इन महाकाव्यों में भौतिक विज्ञान, गणित, औषधि और वनस्पति विज्ञान, खगोल और काल–गणना, युद्ध विज्ञान तथा पर्यावरण संबंधी समझ जैसी विविध वैज्ञानिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि प्राचीन भारतीय समाज प्राकृतिक घटनाओं, मानव व्यवहार और सामाजिक संरचना को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने के प्रति सजग था। इसी बहुआयामी परंपरा को ध्यान में रखते हुए इस शोध–पत्र में रामायण और महाभारत का अध्ययन भारतीय विज्ञान, तकनीकी विचारों और सामाजिक ज्ञान प्रणाली के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में किया गया है। इन ग्रंथों में निहित वैज्ञानिक संकेत केवल ऐतिहासिक संदर्भ नहीं, बल्कि यह दर्शाते हैं कि भारतीय संस्कृति में वैज्ञानिक चिंतन जीवन के हर क्षेत्र में समाहित था। भारतीय संस्कृति में ज्ञान केवल धार्मिक मान्यताओं तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें विज्ञान, दर्शन, समाज और तकनीक का गहरा समन्वय मिलता है। रामायण और महाभारत दोनों ग्रंथ मानव जीवन, समाज व्यवस्था और प्राकृतिक जगत को समझने के व्यापक साधन रहे हैं। इनमें इतिहास, विज्ञान और अध्यात्म को एक साथ पिरोया गया है, जो यह बताता है कि प्राचीन भारत में ज्ञान की दृष्टि बहुआयामी थी।

रामायण-महाभारत में विज्ञान, तकनीक, युद्धविद्या और खगोल-गणितीय ज्ञान का समन्वय :-

रामायण और महाभारत केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टि, तकनीकी कल्पना शक्ति और युद्धविद्या के विकसित स्वरूप को दर्शाने वाले अद्वितीय महाकाव्य हैं। रामायण में लक्ष्मण द्वारा युद्धभूमि में रावण के विशिष्ट अंग पर किया गया सटीक प्रहार प्रक्षेप्य गति, वेग, कोण और दूरी के वैज्ञानिक आकलन का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार, पुष्पक विमान की कथा 'जो दिशा का चयन कर सकता था, उच्च गति से यात्रा करता था और दूरस्थ स्थानों को जोड़ता था' यह संकेत देती है कि प्राचीन भारत में उड्डयन तकनीक और नेविगेशन से संबंधित अवधारणाओं की प्रारूपिक कल्पना विद्यमान थी। एक अन्य उदाहरण हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी की पहचान है, यह प्रसंग बताता है कि वनस्पति विज्ञान, औषधीय पौधों और भू–पर्यावरणीय विविधताओं की पारंपरिक समझ कितनी उन्नत थी। महाभारत में यह वैज्ञानिक चेतना और स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अर्जुन की धनुर्विद्या केवल नैपुण्य नहीं, बल्कि गति, दाब, गुरुत्वाकर्षण, ध्वनि–तरंगों और प्रतिक्रिया समय जैसी भौतिकी के सिद्धांतों की व्यावहारिक समझ को प्रकट करती है– उदाहरण के लिए, अर्जुन द्वारा चलते हुए पक्षी की आँख को लक्ष्य बनाना उच्च–स्तरीय गणितीय दृष्टि एवं मानसिक एकाग्रता दोनों का संयोजन है। युद्ध शुरू करने के मुहूर्त का निर्धारण नक्षत्रों, ग्रहों और समय–गणना के अनुसार किया जाना खगोल विज्ञान की परिपक्वता का प्रमाण है, जबकि चक्रव्यूह जैसी जटिल सैन्य संरचनाएँ ज्यामिति, भू–आकृतिक समझ और रणनीतिक गणना के उच्चतम स्तर को दर्शाती हैं।

रामायण और महाभारत की वैज्ञानिक महत्ता केवल तकनीकी ज्ञान तक सीमित नहीं है, दोनों ग्रंथ समाजशास्त्र, नीति–दर्शन, मनोविज्ञान और पर्यावरणीय चेतना के भी गहन स्रोत हैं। रामायण में रामराज्य का वर्णन 'जहाँ न्याय व्यवस्था, सामाजिक संतुलन और लोककल्याण को प्राथमिकता दी गई' एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक ढांचे का उदाहरण प्रस्तुत करता है। उदाहरणस्वरूप, महाभारत में विदुर नीति, भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिया गया राज्यशास्त्रीय मार्गदर्शन, और कृष्ण–अर्जुन संवाद 'विशेषकर 'कर्मयोग' की अवधारणा' मानव मनोविज्ञान, नेतृत्व, निर्णय–प्रक्रिया तथा नैतिक दर्शन के विस्तृत उदाहरण प्रदान करते हैं। इन ग्रंथों में चिकित्सा और पर्यावरण का ज्ञान भी अनेक रूपों में प्रकट होता है। उदाहरण के लिए, रामायण में जड़ी–बूटियों और वनस्पतियों का उपयोग, तथा महाभारत में आयुर्वेद, चोट उपचार और योग–ध्यान के उल्लेख स्वास्थ्य विज्ञान के व्यावहारिक स्वरूप को दर्शाते हैं। वनवास के प्रसंगों में प्रकृति संरक्षण, जल स्रोतों की उपयोगिता और वन्य जीवों के साथ सह–अस्तित्व के विचार आधुनिक पर्यावरण विज्ञान से मेल खाते हैं।

आज भी कई शोधों में यह स्वीकार किया गया है कि इन महाकाव्यों में वर्णित प्राकृतिक चिकित्सा, खगोल गणना, गणितीय अवधारणाएँ और सामाजिक संरचना के सिद्धांत आधुनिक दृष्टिकोण में भी प्रासंगिक हैं– उदाहरणस्वरूप, महाभारत में '**अहिंसा परमो धर्मः**' और '**धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्**' जैसी उक्ति सामाजिक एवं नैतिक चिंतन का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार, रामायण और महाभारत केवल प्राचीन साहित्य नहीं, बल्कि वैज्ञानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञान की निरंतर परंपरा हैं, जिनका अध्ययन आज भी शोध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आधुनिक दृष्टि से मूल्यांकन :-

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जब रामायण और महाभारत का विश्लेषण किया जाता है, तो यह स्पष्ट

होता है कि इन महाकाव्यों में वर्णित कई प्रसंग प्रतीकात्मक या रूपकात्मक हो सकते हैं, फिर भी इनमें समाहित ज्ञान का एक बड़ा हिस्सा ठोस वैज्ञानिक आधार रखता है। औषधीय जड़ी–बूटियों का प्रयोग, शरीर–स्वास्थ्य से जुड़े उपदेश, गणितीय संरचनाओं पर आधारित युद्ध विन्यास, ग्रह–नक्षत्रों के सटीक वर्णन, जल–वन संरक्षण की चेतना और योग–ध्यान की मानसिक–शारीरिक प्रभावशीलता – ये सभी तत्व आधुनिक शोधों द्वारा भी समर्थित पाए जाते हैं। इन ग्रंथों में प्रकृति, मानव मनोविज्ञान और सामाजिक व्यवहार का जो वैज्ञानिक अवलोकन मिलता है, वह यह सिद्ध करता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन केवल आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं था, बल्कि वह अनुभव, प्रयोग और तर्क पर आधारित वैज्ञानिक समझ से भी सशक्त था।

इस प्रकार, आधुनिक मूल्यांकन यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में वैज्ञानिक दृष्टि किसी विशेष वर्ग तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह संस्कृति, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, शिक्षा और दैनिक जीवन में गहराई से रची–बसी थी। रामायण और महाभारत में संचित यह बहुआयामी ज्ञान आज के वैज्ञानिक अध्ययन, अनुसंधान पद्धतियों और मानवीय विकास–चिंतन के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना अपने समय में था। इन ग्रंथों का आधुनिक विवेचन यह स्थापित करता है कि भारतीय सभ्यता ने वैज्ञानिक सोच को न केवल जन्म दिया, बल्कि उसे जीवन का अभिन्न अंग बनाकर आगे बढ़ाया।

निष्कर्ष :–

समग्र रूप से देखा जाए तो रामायण और महाभारत भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐसे आधार–स्तंभ हैं, जिनमें धार्मिक भावना से कहीं अधिक व्यापक बौद्धिक संसार समाहित है। ये महाकाव्य न केवल आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की स्थापना करते हैं, बल्कि विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष, पर्यावरण और समाजशास्त्र जैसी विविध ज्ञान प्रणालियों को भी एकीकृत करते हैं। रामायण में वर्णित युद्ध कौशल, औषधीय वनस्पतियों का प्रयोग, पर्यावरणीय सजगता और तकनीकी कल्पनाएँ 'जैसे पुष्पक विमान' यह दर्शाती हैं कि प्राचीन भारतीय समाज प्रकृति, भौतिक बलों और मानव–व्यवहार को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने में अत्यंत सक्षम था। वहीं महाभारत में अस्त्र–विद्या, ज्यामितीय युद्ध संरचनाएँ, ग्रह–नक्षत्रों की गणना, राजनीतिक सिद्धांतों और मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो इस बात का संकेत हैं कि उस समय विज्ञान और बुद्धि–विवेक जीवन के हर क्षेत्र में सक्रिय था। इन दोनों महाकाव्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रस्तुत वैज्ञानिक और सामाजिक विचार किसी औपचारिक प्रयोगशाला ज्ञान से नहीं, बल्कि जीवन के अनुभव, प्रकृति के अवलोकन और मानवीय संबंधों की सूक्ष्म समझ से उत्पन्न हुए थे।

यही कारण है कि इनके सिद्धांत आधुनिक संदर्भ में भी उतने ही प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। आज जब विज्ञान, तकनीक और पर्यावरण के क्षेत्र में नए शोध किए जा रहे हैं, तो इन महाकाव्यों में निहित अनेक अवधारणाएँ 'जैसे खगोल गणना, प्राकृतिक चिकित्सा, रणनीति, नेतृत्व और नैतिक निर्णय' आज भी महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करती हैं। अतः, रामायण और महाभारत केवल प्राचीन कथाएँ नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की बौद्धिक परिपक्वता, वैज्ञानिक चेतना और नवाचारी दृष्टि के प्रमाण हैं। ये महाकाव्य आने वाली पीढ़ियों के लिए विचार, प्रेरणा, अनुसंधान और नवाचार का गहन स्रोत बने रहेंगे। इनके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति का वैज्ञानिक दृष्टिकोण केवल आधुनिक युग की देन नहीं, बल्कि हजारों वर्षों पुरानी एक सशक्त और समृद्ध परंपरा है, जिसे समझना और संरक्षित करना समय की अनिवार्य आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

१. तिवारी, वि. कु., रामायण कथा की विश्व यात्रा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस।

२. दुबे, उ. कु., चौधरी, ज. ज., और जैन, : नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परम्परा का परिचय. श्री विनायक पब्लिकेशन.

३. मिश्र, गौ. कु., चमोली, गु., रोमा, और शर्मा, आ. (2025). हिंदी साहित्य और भारतीय ज्ञान परंपरा. यशित्ता प्रकाशन प्रा. लिमिटेड.

४. सिंह, प्रि. भारतीय साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा. एस. एस. जैन पब्लिकेशन।

५. दुबे स्वर्णकार, म. (2025). भारतीय ज्ञान परंपरा : एक परिचय - AG Publishing House (AGPH Books).

६. द्विवेदी, मीरा. (2021). भारतीय ज्ञान–परम्परा में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी. विद्यानिधि प्रकाशन.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 144-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का कानपुर के वस्त्र उद्योग पर प्रभाव (1858–1947)

विजेता दीक्षित

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,

खुन खुन जी गर्ल्स पीजी कॉलेज, लखनऊ।

सार :

औपनिवेशिक काल के दौरान कानपुर में कपड़ा मिलों का विकास ब्रिटिश औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों से गहराई से जुड़ा था। इन नीतियों ने एक ओर तो साम्राज्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा दिया, तो दूसरी ओर स्थानीय उद्योगों के विकास को सीमित किया। यह अध्ययन 19वीं सदी के उत्तरार्ध और 1947 में भारत की आजादी के बीच कानपुर के कपड़ा उद्योग पर औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के प्रभाव की जांच करता है। इसमें टैरिफ नियमों, आयात–निर्यात नीतियों, रेलवे के विस्तार, कराधान, श्रम प्रथाओं और कच्चे माल की आपूर्ति जैसे प्रमुख नीतिगत उपायों का विश्लेषण किया गया है। शोध इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे ब्रिटिश निवेश और बुनियादी ढांचे के विकास ने एल्गिन मिल्स, म्योर मिल्स और कानपुर वूलन मिल्स जैसी बड़ी कपड़ा मिलों की स्थापना में मदद की, जिससे कानपुर पूर्व का मैनचेस्टर बन गया। हालाँकि, ये विकास कार्य मुख्य रूप से औपनिवेशिक व्यापारिक और सैन्य हितों को पूरा करते थे, जिसके परिणामस्वरूप श्रमिकों का शोषण हुआ, आयातित मशीनों पर निर्भरता बढ़ी, ब्रिटिश निर्मित कपड़ों के साथ असमान प्रतिस्पर्धा हुई और स्थानीय औद्योगिक स्वामित्व सीमित रहा।

मुख्य शब्द : औपनिवेशिक आर्थिक नीतियां, कानपुर, कपड़ा उद्योग, ब्रिटिश भारत, औद्योगिकीकरण, एल्गिन मिल्स, म्योर मिल्स, कानपुर वूलन मिल्सए आर्थिक इतिहास।

परिचय :

कपड़ा उद्योग ने औपनिवेशिक भारत के आर्थिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और यह उन प्रमुख क्षेत्रों में से एक था जिसके माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य ने अपने वाणिज्यिक और औद्योगिक हितों को आगे बढ़ाया। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी की शुरुआत के दौरान, ब्रिटिश औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों ने भारत की पारंपरिक विनिर्माण प्रणाली को वैश्विक शाही अर्थव्यवस्था में एकीकृत करके नया आकार दिया। इन नीतियों ने कच्चे माल के निर्यात को प्रोत्साहित किया, ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के आयात को बढ़ावा दिया और औपनिवेशिक प्रशासनिक और सैन्य आवश्यकताओं को पूरा करने वाले चुनिंदा उद्योगों को विकसित किया। वर्तमान उत्तर प्रदेश में गंगा के तट पर स्थित कानपुर, अपनी रणनीतिक स्थिति, प्रचुर श्रम आपूर्ति, रेलवे कनेक्टिविटी और कपास उत्पादक

क्षेत्रों से निकटता के कारण ब्रिटिश शासन के तहत सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक केंद्रों में से एक के रूप में उभरा। परिणामस्वरूप, शहर कपड़ा उत्पादन का एक प्रमुख केंद्र बन गया और पूर्व का मैनचेस्टर (रॉय, 2011, बागची, 1972) का खिताब अर्जित किया। औपनिवेशिक औद्योगीकरण से पहले, कानपुर मुख्य रूप से पारंपरिक बुनाई और हस्तशिल्प गतिविधियों वाला एक व्यावसायिक शहर था। हालाँकि, 1857 के विद्रोह के बाद, ब्रिटिश प्रशासन ने उत्तरी भारत में शाही नियंत्रण को मजबूत करने के लिए शहर को एक सैन्य और औद्योगिक केंद्र में बदल दिया। एल्गिन मिल्स (1862), मुइर मिल्स (1882), और कॉनपोर वूलन मिल्स (1876) जैसी कपड़ा मिलें पर्याप्त ब्रिटिश पूंजी और प्रबंधकीय नियंत्रण के साथ स्थापित की गईं।

इन उद्योगों ने ब्रिटिश भारतीय सेना के लिए सूती और ऊनी कपड़े, वर्दी, तंबू, कंबल और अन्य सैन्य आवश्यकताओं की आपूर्ति की, जिससे औद्योगिक विकास सीधे औपनिवेशिक रणनीतिक उद्देश्यों (मॉरिस, 1965, टॉमलिंसन, 1993) से जुड़ गया। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने कानपुर के कपड़ा उद्योग की संरचना और विकास को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। रेलवे के निर्माण, नहरों के विस्तार, परिवहन नेटवर्क में सुधार और बैंकिंग और बीमा सुविधाओं के विकास ने औद्योगिक विस्तार को सुविधाजनक बनाया। उसी समय, भेदभावपूर्ण टैरिफ नीतियों ने स्वदेशी उत्पादों की तुलना में ब्रिटिश निर्मित वस्त्रों का पक्ष लिया, जबकि कराधान नीतियों और पूंजी तक असमान पहुंच ने भारतीय स्वामित्व वाले उद्यमों के विकास को सीमित कर दिया। हालाँकि मशीनीकृत उत्पादन की शुरूआत से कपड़ा उत्पादन और रोजगार के अवसर बढ़े, लेकिन इसने पारंपरिक हथकरघा उद्योगों को भी कमजोर कर दिया और आयातित मशीनरी और प्रौद्योगिकी पर निर्भरता बढ़ गई।

नतीजतन, औद्योगिक विकास एक ऐसे ढांचे के भीतर हुआ जिसने मुख्य रूप से संतुलित क्षेत्रीय आर्थिक विकास के बजाय ब्रिटिश वाणिज्यिक हितों को लाभ पहुंचाया (बागची, 1972, रॉय, 2011)। श्रम ने कानपुर की कपड़ा अर्थव्यवस्था का एक और महत्वपूर्ण आयाम बनाया। मिलों के तेजी से विस्तार ने संयुक्त प्रांत के आसपास के जिलों से हजारों प्रवासी श्रमिकों को आकर्षित किया। रोजगार पैदा करने के बावजूद, कारखाने के श्रमिकों को कम वेतन, लंबे काम के घंटे, खराब आवास की स्थिति और सीमित श्रम अधिकारों का अनुभव हुआ। औपनिवेशिक श्रम कानून का उद्देश्य मुख्यतः श्रमिकों के कल्याण में सुधार के बजाय औद्योगिक उत्पादकता को बनाए रखना था। इन स्थितियों ने बीसवीं सदी की शुरुआत में कानपुर में श्रमिक आंदोलनों और ट्रेड यूनियन गतिविधियों के उद्भव में योगदान दिया, जिससे शहर औपनिवेशिक भारत में औद्योगिक श्रमिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया (चंदावरकर, 1994)। ब्रिटिश निवेश ने आधुनिक औद्योगिक बुनियादी ढांचे की शुरुआत की और कानपुर को एक प्रमुख विनिर्माण केंद्र में बदल दिया, औद्योगीकरण के लाभ असमान रूप से वितरित रहे। औपनिवेशिक आर्थिक ढांचे ने स्वदेशी उद्यमिता और तकनीकी आत्मनिर्भरता को प्रतिबंधित करते हुए शाही बाजारों और सैन्य मांगों को पूरा करने वाले उत्पादन को प्रोत्साहित किया। औपनिवेशिक औद्योगीकरण के इस दोहरे चरित्र ने शहरी और औद्योगिक विकास और संरचनात्मक असमानताओं के लिए अवसर पैदा किए जो स्वतंत्रता के बाद भी कायम रहे।

अध्ययन का उद्देश्य :

यह अध्ययन व्यापार नीतियों, औद्योगिक निवेश, बुनियादी ढांचे, श्रम स्थितियों और उनके दीर्घकालिक आर्थिक परिणामों का विश्लेषण करके जांच करता है कि कैसे औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों ने कानपुर के कपड़ा

उद्योग के विकास को आकार दिया। यह भारत के सबसे महत्वपूर्ण कपड़ा केंद्रों में से एक में ब्रिटिश आर्थिक नीतियों द्वारा बनाए गए अवसरों और बाधाओं दोनों का मूल्यांकन करते हुए औपनिवेशिक शासन और औद्योगीकरण के बीच संबंधों की एक ऐतिहासिक समझ प्रदान करना चाहता है।

अनुसंधान क्रियाविधि :

यह अध्ययन 1858 से 1947 की अवधि के दौरान कानपुर के कपड़ा उद्योग पर औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के प्रभाव की जांच करने के लिए एक ऐतिहासिक और गुणात्मक अनुसंधान डिजाइन को अपनाता है। अनुसंधान प्रकृति में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक है, शोध डेटा के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। भारतीय आर्थिक इतिहास, सहकर्मी–समीक्षित जर्नल लेख, थीसिस, सरकारी रिपोर्ट, जनगणना प्रकाशन, कारखाना निरीक्षण रिपोर्ट, विधान परिषद की कार्यवाही, अभिलेखीय रिकॉर्ड और औद्योगिक आयोग (1916–1918) की रिपोर्ट पर पुस्तकों से जानकारी एकत्र की गई है। भारत सरकार, उत्तर प्रदेश राज्य अभिलेखागार और भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार के प्रासंगिक प्रकाशन जहां भी उपलब्ध हों, परामर्श लिया गया है।

भारत में औपनिवेशिक आर्थिक नीतियां :

ब्रिटिश औपनिवेशिक आर्थिक नीतियां मुख्य रूप से भारत में संतुलित औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के बजाय ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की पूर्ति के लिए बनाई गई थीं। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के बाद, भारत कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता और ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के बाजार में बदल गया। टैरिफ, कराधान, व्यापार और निवेश से संबंधित नीतियों ने असमान प्रतिस्पर्धा के माध्यम से स्वदेशी उद्योगों के विकास को प्रतिबंधित करते हुए कपास और अन्य कच्चे माल के निर्यात को प्रोत्साहित किया। हालाँकि इस अवधि के दौरान कुछ आधुनिक उद्योग स्थापित किए गए, लेकिन उन्होंने बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय आर्थिक विकास के बजाय शाही वाणिज्यिक और सैन्य आवश्यकताओं को पूरा किया (बागची, 1972, रॉय, 2011)।

औद्योगिक केन्द्र के रूप में कानपुर का उदय :

1857 के विद्रोह के बाद कानपुर उत्तरी भारत के प्रमुख औद्योगिक शहरों में से एक के रूप में विकसित हुआ। गंगा के तट पर इसकी रणनीतिक स्थिति और कपास उगाने वाले क्षेत्रों से इसकी निकटता को पहचानते हुए, ब्रिटिश प्रशासन ने रेलवे नेटवर्क, सड़कों और सैन्य बुनियादी ढांचे में निवेश किया। इन विकासों ने ब्रिटिश पूंजी को आकर्षित किया, जिससे एल्गिन मिल्स (1862), कॉनपोर वूलन मिल्स (1876), और मुइर मिल्स (1882) जैसी बड़ी कपड़ा मिलों की स्थापना हुई। बीसवीं सदी की शुरुआत तक, कानपुर भारत के सबसे महत्वपूर्ण कपड़ा विनिर्माण केंद्रों में से एक बन गया था और अपने विस्तारित कपास और ऊनी उद्योगों (मॉरिस, 1965, टॉमलिंसन, 1993) के कारण इसे पूर्व का मैनचेस्टर का खिताब मिला था।

कपड़ा उद्योग का विकास :

कानपुर के कपड़ा उद्योग का विस्तार औपनिवेशिक आर्थिक प्राथमिकताओं से निकटता से जुड़ा हुआ था। ब्रिटिश स्वामित्व वाली मिलें सूती कपड़े, ऊनी कपड़े, सैन्य वर्दी, तंबू, कंबल और औपनिवेशिक सरकार और ब्रिटिश भारतीय सेना के लिए आवश्यक अन्य सामान का उत्पादन करती थीं। रेलवे परिवहन की उपलब्धता से कच्चे कपास और तैयार उत्पादों को ले जाने की लागत कम हो गई, जबकि मशीनीकृत उत्पादन से औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई। हालाँकि, उद्योग आयातित मशीनरी, ब्रिटिश प्रबंधकीय विशेषज्ञता और औपनिवेशिक वित्तीय

संस्थानों पर बहुत अधिक निर्भर रहा, जिससे स्वदेशी औद्योगिक क्षमताओं का विकास सीमित हो गया (रॉय, 2011)।

व्यापार और टैरिफ नीतियों का प्रभाव :

औपनिवेशिक व्यापार और टैरिफ नीतियों का कानपुर के कपड़ा उद्योग पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश निर्मित वस्त्रों को भारतीय बाजारों में तरजीह दी जाती थी, जबकि भारतीय कपड़ा उत्पादकों को भेदभावपूर्ण टैरिफ संरचनाओं के कारण असमान प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता था। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा अपनाई गई मुक्त व्यापार नीति ने ब्रिटेन से आयात को प्रोत्साहित किया लेकिन भारतीय निर्माताओं को सीमित सुरक्षा प्रदान की। यद्यपि कानपुर में बड़ी ब्रिटिश स्वामित्व वाली कपड़ा मिलों को शाही समर्थन से लाभ हुआ, पारंपरिक हथकरघा बुनकरों और छोटे पैमाने के कपड़ा उत्पादकों को गंभीर आर्थिक गिरावट का सामना करना पड़ा क्योंकि वे सस्ती मशीन–निर्मित आयात (बागची, 1972) के साथ प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ थे।

बुनियादी ढांचा और औद्योगिक विकास :

कानपुर के औद्योगिक विकास में बुनियादी ढांचे का विकास औपनिवेशिक शासन के प्रमुख योगदानों में से एक था। रेलवे, टेलीग्राफ सेवाओं, सड़कों, नहरों और बैंकिंग संस्थानों के विस्तार ने औद्योगिक उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों को सुविधाजनक बनाया। रेल कनेक्टिविटी ने कपड़ा मिलों को आसपास के क्षेत्रों से कच्चा कपास प्राप्त करने और तैयार माल पूरे भारत और विदेशी बाजारों में वितरित करने में सक्षम बनाया। फिर भी, इन निवेशों का मुख्य उद्देश्य समावेशी क्षेत्रीय औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के बजाय औपनिवेशिक प्रशासन, सैन्य रसद और निर्यात–उन्मुख व्यापार को मजबूत करना था (टॉमलिन्सन, 1993)।

कपड़ा मिलों में श्रम की स्थितियाँ :

कपड़ा मिलों की तीव्र वृद्धि ने आस–पास के ग्रामीण जिलों से पलायन करने वाले हजारों श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर पैदा किए। रोजगार में वृद्धि के बावजूद, कारखाने के मजदूरों को कम वेतन, लंबे समय तक काम करने, अपर्याप्त आवास और खराब कार्यस्थल सुरक्षा का अनुभव हुआ। औपनिवेशिक श्रम कानून केवल सीमित सुरक्षा प्रदान करता था और मुख्य रूप से इसका उद्देश्य औद्योगिक उत्पादकता को बनाए रखना था। इन कठिन कामकाजी परिस्थितियों ने अंततः बीसवीं सदी की शुरुआत में कानपुर में श्रमिक संघों और औद्योगिक आंदोलनों के उदय में योगदान दिया, जिससे शहर संगठित श्रमिक सक्रियता का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया (चंदावरकर, 1994)।

दीर्घकालिक आर्थिक परिणाम :

औपनिवेशिक आर्थिक ढांचे ने कानपुर के कपड़ा उद्योग के लिए एक मिश्रित विरासत तैयार की। एक ओर, ब्रिटिश निवेश ने आधुनिक औद्योगिक प्रौद्योगिकी, बुनियादी ढांचे और कारखाने–आधारित उत्पादन की शुरुआत की जिससे शहरीकरण और आर्थिक विकास में तेजी आई। दूसरी ओर, औद्योगिक विकास काफी हद तक औपनिवेशिक पूंजी, आयातित मशीनरी और शाही बाजारों पर निर्भर रहा। स्वदेशी उद्यमिता, तकनीकी नवाचार और संतुलित औद्योगिक विविधीकरण को सीमित प्रोत्साहन मिला। नतीजतन, औपनिवेशिक काल से विरासत में मिली कई संरचनात्मक चुनौतियाँ भारत की आजादी के बाद भी कानपुर के कपड़ा क्षेत्र को प्रभावित करती रहीं।

तालिका 1. औपनिवेशिक काल में कानपुर में स्थापित प्रमुख वस्त्र मिलें

वस्त्र मिल	स्थापना वर्ष	स्वामित्व	प्रमुख उत्पाद	प्रमुख योगदान
एल्गिन मिल्स	1862-64	ब्रिटिश	सूती कपड़ा, धागा	कानपुर की पहली बड़ी सूती वस्त्र मिल
कानपुर वूलन मिल्स (लाल इमली)	1876	ब्रिटिश	ऊनी कपड़ा, कंबल	सेना के लिए वर्दी एवं कंबलों का निर्माण
म्योर मिल्स	1874	ब्रिटिश	सूती वस्त्र	बड़े पैमाने पर सूती वस्त्र उत्पादन
कानपुर कॉटन मिल्स	1882-83	ब्रिटिश	सूती धागा, कपड़ा	इसके उत्पाद काकोमी नाम से प्रसिद्ध थे।
विक्टोरिया मिल्स	1885-86	ब्रिटिश	सूती कपड़े	औद्योगिक उत्पादन का विस्तार
स्वदेशी कॉटन मिल्स	1906	भारतीय	सूती वस्त्र	स्वदेशी उद्यमिता को बढ़ावा

1862 से 1906 के बीच प्रमुख वस्त्र मिलों की स्थापना यह दर्शाती है कि ब्रिटिश शासन के दौरान कानपुर में तीव्र औद्योगीकरण हुआ। प्रारम्भिक अधिकांश मिलें ब्रिटिश पूँजी और प्रबंधन के अधीन थीं, जो औपनिवेशिक आर्थिक प्राथमिकताओं को प्रतिबिंबित करती हैं। भारतीय स्वामित्व वाली मिलों की स्थापना अपेक्षाकृत बाद में हुई, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्वदेशी उद्योगपतियों के लिए निवेश और औद्योगिक विकास के अवसर सीमित थे।

तालिका 2. वस्त्र उद्योग पर औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का प्रभाव

औपनिवेशिक नीति	सकारात्मक प्रभाव	नकारात्मक प्रभाव
रेलवे विस्तार	कच्चे माल एवं तैयार वस्त्रों के परिवहन में सुविधा	मुख्यतः औपनिवेशिक व्यापारिक हितों की पूर्ति
शुल्क (टैरिफ) नीति	ब्रिटिश स्वामित्व वाली मिलों का विस्तार	स्वदेशी वस्त्र उद्योग का पतन
विदेशी पूँजी निवेश	आधुनिक मशीनों एवं मिलों का विस्तार	ब्रिटिश पूँजी पर निर्भरता
कच्चे माल की आपूर्ति	कपास की नियमित उपलब्धता	संसाधनों का निर्यात–उन्मुख दोहन
बैंकिंग एवं वित्त	ब्रिटिश उद्योगों को ऋण सुविधा	भारतीय उद्यमियों को सीमित वित्तीय सहायता

औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों ने एक ओर औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया, वहीं दूसरी ओर आर्थिक निर्भरता को भी बढ़ाया। अवसंरचना विकास से उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई, लेकिन व्यापार एवं वित्तीय नीतियों का लाभ मुख्यतः ब्रिटिश उद्योगों को मिला, जबकि भारतीय उद्योग प्रतिस्पर्धा में पिछड़ गए।

तालिका 3. कानपुर की वस्त्र मिलों में रोजगार एवं श्रमिकों की स्थिति

संकेतक	टवलोकन
श्रमिकों का स्रोत	आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवासी श्रमिक
कार्य अवधि	प्रतिदिन 10–12 घंटे
वेतन स्तर	औद्योगिक उत्पादन की तुलना में कम
कार्य वातावरण	अस्वच्छ एवं असुरक्षित
श्रमिक अधिकार	औपनिवेशिक शासन में सीमित कानूनी संरक्षण

वस्त्र मिलों के विस्तार से बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उत्पन्न हुए तथा कानपुर में नगरीकरण को बढ़ावा मिला। इसके बावजूद श्रमिकों को कम वेतन, लंबे कार्य घंटे, असुरक्षित कार्य परिस्थितियों तथा सीमित श्रमिक अधिकारों का सामना करना पड़ा। यही परिस्थितियाँ आगे चलकर श्रमिक संगठनों एवं ट्रेड यूनियनों के उद्भव का कारण बनीं।

तालिका 4. औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के दीर्घकालिक प्रभाव

आयाम	दीर्घकालिक प्रभाव
औद्योगिक अवसंरचना	स्वतंत्रता के बाद वस्त्र उद्योग के विकास की मजबूत आधारशिला
स्वदेशी उद्यमिता	औपनिवेशिक प्रतिबंधों के कारण सीमित विकास
तकनीकी विकास	आयातित मशीनों पर निर्भरता
आर्थिक संरचना	निर्यात–उन्मुख औद्योगिक व्यवस्था
सामाजिक प्रभाव	औद्योगिक श्रमिक वर्ग एवं श्रमिक आंदोलनों का विकास

औपनिवेशिक नीतियों के दीर्घकालिक प्रभाव मिश्रित रहे। एक ओर आधुनिक अवसंरचना एवं कारखाना–आधारित उत्पादन प्रणाली ने औद्योगिक आधुनिकीकरण को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश पूँजी, तकनीक और विदेशी बाजारों पर निर्भरता ने आत्मनिर्भर औद्योगिक विकास को बाधित किया। ये संरचनात्मक कमजोरियाँ स्वतंत्रता के बाद भी कानपुर के वस्त्र उद्योग को प्रभावित करती रहीं।

निष्कर्ष :

औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का कानपुर के कपड़ा उद्योग के विकास पर गहरा और लंबे समय तक रहने वाला प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश शासन ने कपड़ा मिलों, रेलवे नेटवर्क, परिवहन बुनियादी ढांचे और व्यावसायिक संस्थानों में निवेश के माध्यम से कानपुर को एक क्षेत्रीय व्यावसायिक शहर से भारत के प्रमुख औद्योगिक केंद्रों

में से एक में बदल दिया। मिलों की स्थापना ने औद्योगिक उत्पादन, रोजगार के अवसरों और शहरी विकास को काफी हद तक बढ़ाया हालाँकि, औपनिवेशिक औद्योगिकीकरण का मुख्य उद्देश्य भारत में संतुलित औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के बजाय ब्रिटिश आर्थिक और रणनीतिक हितों को आगे बढ़ाना था। व्यापार और टैरिफ नीतियों ने ब्रिटिश स्वामित्व वाले उद्यमों का पक्ष लिया, जबकि भारतीय उद्यमियों को पूंजी, आधुनिक तकनीक और संस्थागत समर्थन तक सीमित पहुंच का सामना करना पड़ा। आयातित मशीनरी, विदेशी निवेश और निर्यात–उन्मुख उत्पादन पर निर्भरता ने स्वदेशी औद्योगिक क्षमताओं और तकनीकी आत्मनिर्भरता के विकास को सीमित कर दिया। श्रमिकों को कम वेतन, लंबे समय तक काम करने के घंटे, अपर्याप्त आवास और सीमित कानूनी सुरक्षा का सामना करना पड़ा जिसने श्रमिक संगठनों और ट्रेड यूनियन आंदोलनों के उदय में योगदान दिया। निष्कर्षतः, कानपुर का कपड़ा उद्योग औपनिवेशिक औद्योगिकीकरण की उपलब्धियों और विरोधाभासों दोनों का प्रतिनिधित्व करता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. बागची, ए. के. (1972). भारत में निजी निवेश, 1900–1939. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. चंदावरकर, आर. (1994). भारत में औद्योगिक पूंजीवाद की शुरुआत : बॉम्बे में व्यावसायिक रणनीतियाँ और श्रमिक वर्ग, 1900–1940. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. भारत सरकार. (1918). भारतीय औद्योगिक आयोग की रिपोर्ट, 1916–1918. गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस।
4. भारत सरकार. (विभिन्न वर्ष). भारत की जनगणना. रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त का कार्यालय।
5. मॉरिस, एम. डी. (1965). भारत में औद्योगिक श्रम शक्ति का उदयरू बॉम्बे कॉटन मिलों का अध्ययन, 1854–1947. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
6. नेशनल आर्काइव्स ऑफ इंडिया. (विभिन्न रिकॉर्ड). कानपुर टेक्सटाइल मिलों से संबंधित फैक्ट्री रिकॉर्ड और औपनिवेशिक प्रशासनिक रिपोर्ट. नई दिल्ली।
7. रे, आर. के. (1982). भारत में औद्योगिकीकरण : निजी कॉर्पोरेट क्षेत्र में विकास और संघर्ष, 1914–1947. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. रॉय, टी. (2011). भारत का आर्थिक इतिहास, 1857–1947 (तीसरा संस्करण) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. रॉय, टी. (2019). ब्रिटिश शासन ने भारत की अर्थव्यवस्था को कैसे बदला : राज का विरोधाभास. पालग्रेव मैकमिलन।
10. टॉमलिंसन, बी. आर. (1993). आधुनिक भारत की अर्थव्यवस्था, 1860–1970. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. त्रिपाठी, डी., और जुमानी, जे. (2007). भारतीय व्यापार का संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड इतिहास. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. संयुक्त प्रांत सरकार. (विभिन्न वर्ष). फैक्ट्री निरीक्षण रिपोर्ट और औद्योगिक आँकड़े. गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद।
13. उत्तर प्रदेश राज्य अभिलेखागार. (विभिन्न रिकॉर्ड). कानपुर टेक्सटाइल उद्योगों से संबंधित औद्योगिक और व्यावसायिक रिकॉर्ड. लखनऊ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 151-157

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

An Ethnographic Study on Non-Brahmanical Wandering Priests in North India : The Living Embodiments of Shiva

Dr. Manu Sharma

Associate Professor, Department of History

Guru Nanak Dev University, Amritsar, Punjab.

Abstract :

This paper examines the non-Brahmanical ascetic order of North India called as *'Jangam'* who traces its origin from Veerashaiva or Lingayat tradition within Hinduism, emerged in the 12th century under the influence of Basavanna. Though the order has its roots in South India, it has a notable presence in North India through itinerant mendicants. In Haryana, Jangam as an ethnic community predominates in the districts such as Kurukshetra, Kaithal, Ambala, and Jind, where adherents function as nomadic religious mendicants residing near Shiva temples and wandering across adjoining regions including Punjab, Uttar Pradesh, and Himachal Pradesh.[1] They are classified among nomadic and semi-nomadic tribes by state policy, reflecting their traditional lifestyle of alms-seeking and devotional service.[2] Jangam sadhus from northern states periodically converge for religious gatherings, embodying their role as "wandering shrines of Lord Shiva" and maintaining ascetic practices amid regional Hindu pilgrimage circuits.[3] It is noteworthy to add that Jangam Jogis are engaged in the form of oral traditions not only to disseminate the knowledge but also to maintain the cultural continuity. The studies of Jangam community remain sparse, leaving significant gaps in our understanding of their historical, cultural, and sociological evolution. The major gaps are the lack of demographic documents, survival through Oral tradition than written archives and their social and religious transitions from traditional nomadic roles to settled modern livelihoods lacks contemporary empirical study. It will be interesting to know about the origin, practices, culture and traditions of this community which is still not much known because of the nature of their ethnic community and how these communities are undergoing through the shift from wanders to settlers due to globalisation. To study the rich, complex, and evolving traditions of the Jangam community, research methodology is combined with historical-archival methods with empirical and qualitative fieldwork. A mixed method qualitative approach with multi-sited ethnographic field work will be used to collect the primary data.

Keywords : *Caste Identity, Intangible Cultural Heritage, Jangam, Multi-sited Ethnography, Oral traditions, Socio-economic marginalisation*

Introduction :

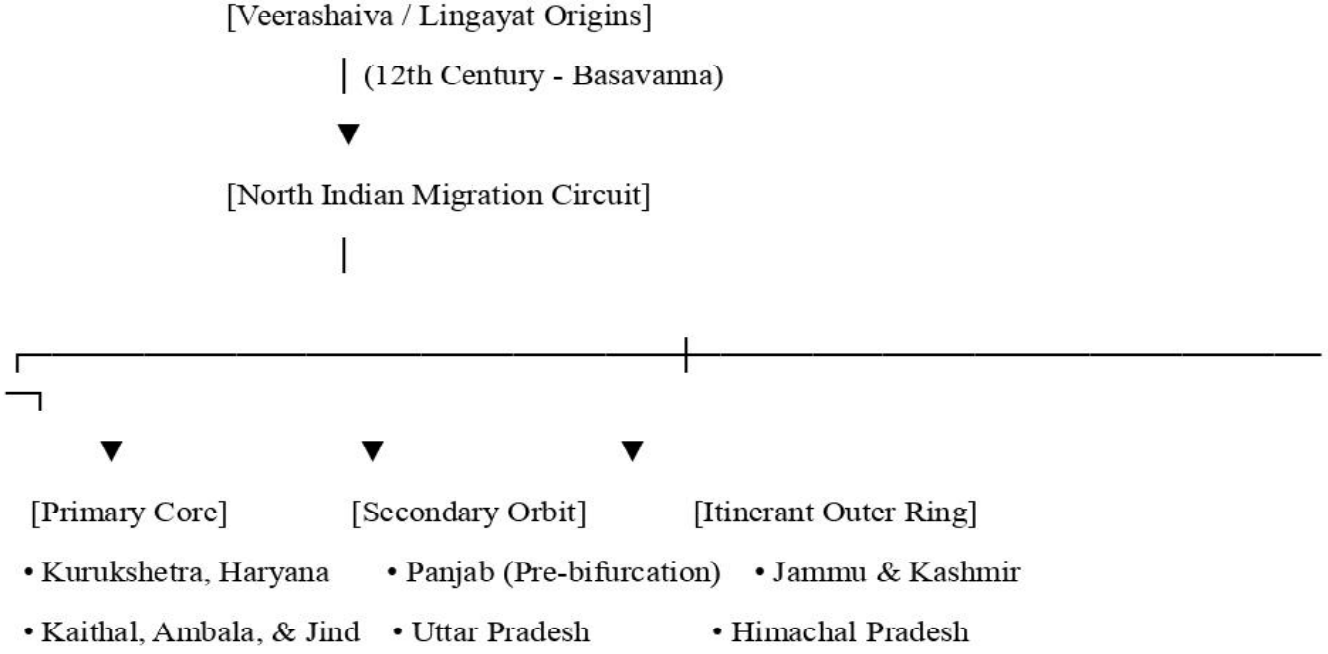
The **Jangams** constitute a distinct, **non-Brahmanical ascetic order** primarily operating within the cultural geography of North India. Demographically rooted in the **Veerashaiva (or Lingayat) tradition** of Hinduism, the order traces its historical and theological origins to the **12th-century socio-religious reform movement** spearheaded by the philosopher-statesman **Basavanna** in South India. Despite these Southern origins, the Jangam order established a resilient, institutionalised presence across Northern territories via communities of itinerant mendicants.

Theologically, the etymology of the term *Jangam* denotes a **'moving' or 'dynamic' linga** (*cara linga*). Within Veerashaiva metaphysics, this dynamic manifestation is conceptualised as spiritually superior to the *sthira linga* (the static, temple-bound iconographic representation of Lord Shiva). As documented in the hagiographical narratives of the **Basava Purana**, the Jangams are not merely devotees but are structurally identified as living embodiments of the divine will of Lord Shiva.

Mythological Origins and Geographical Distribution :

According to indigenous cosmogony and community mythology, the Jangams claim a divine genealogy, asserting they were manifested directly from the loins of Shiva rather than through human procreation. In the contemporary geopolitical landscape of North India, their primary demographic and institutional cluster is located within the state of **Haryana**, specifically concentrated in the sacred topography of **Kurukshetra** and its contiguous districts, including **Kaithal, Ambala, and Jind**.

Historically, before the administrative bifurcation of the Punjab region, Kurukshetra served as a preeminent epicentre for **Pasupata Shaivism**. From this geographic base, the Jangams traditionally engaged in cyclical migratory circuits, wandering as mendicant singers across adjoining northern states, including **Punjab, Uttar Pradesh, Himachal Pradesh, and Jammu & Kashmir**.



Ritual Performance, Material Culture, and Orality :

The foundational essence of Jangam identity is inextricably linked to the preservation of **Jangam Gayan**, a sophisticated oral narrative tradition performed entirely in verse. Characterised by

a complete absence of written codification, this corpus of sacred poetry is transmitted strictly through intergenerational oral pedagogy from father to son.

The Phenomenology of Ritual Performance :

- **Seasonal Calendars :** During the auspicious Hindu month of *Phagun*—which marks the cosmological celebration of the divine marriage between Shiva and Parvati—Jangams are ritually invited into domestic spaces and temple precincts.
- **Socio-Spiritual Reception :** The arrival of a Jangam at a household is ontologically conflated with a visitation by Lord Shiva himself. The householders offer alms (*bhiksha*) to secure the ascetic's blessings and to cultivate auspicious *samskaras* (moral and spiritual impressions) within the family unit.
- **Spatial Arenas :** Performance spaces range from intimate domestic courtyards to institutionalized contexts, such as the *prangan* (courtyards) of major Shaivite temples during large religious congregations, as well as secular village squares.

Materiality and Iconography of Vestments :

The visuality of the practicing Jangam is highly coded and communicates complex metaphysical symbols through material culture :

1. **The Vestments :** Practicing ascents don a signature, unblemished white Haryanvi attire, representing ritual purity.
2. **The Headgear (*Mukut*) :** The headwear acts as a visual microcosm of Shaivite iconography. It features an integrated plume of peacock feathers secured by a black thread, which represents Nandi (Shiva's zoomorphic vehicle).
3. **Symbolic Adornments :** The headpiece further incorporates iconographic replicas of the crescent moon, the hood of the sacred serpent, and the ceremonial chanting bells associated with the goddess Parvati. Brass flowers are also traditionally worn behind the ears to finalize this ritual uniform.
4. **Acoustic and Ritual Implements :** Musically, the narrative recitations are supported by small folk idiophones and membranophones, specifically the *dafli* and the *khanjari*. When executing the mendicant ritual circuit, the *Samana Jangam* (the initiated householder ascetic) fastens a specialized garland of bells known as a *jang* below the right knee and bears a symbolic cobra-headed cane.

Sociological Stratification and Traditional Pedagogical Structures :

The internal social structure of the community displays an intersection between ascetic ideals and domesticity. The **Samana Jangam** represents the normative, initiated tier of the community. Unlike cloistered ascetics, the *Samana* is permitted to enter matrimony, manage domestic households, conduct marriages for others, look after temple properties, or sustain his family through agrarian labor.

IIistorically, pedagogical reproduction within the community was strictly institutionalized: upon undergoing the *diksha* (initiation ritual), a male child was formally surrendered to the custody of a senior Jangam master. This child was reared within a *matha* (monastery) under rigorous spiritual mentorship.

The *Jangam Gayan* itself is structurally bifurcated into two distinct performative phases :

- **The Katha :** The exegetical, storytelling segment where the performer employs prose to narrate folk tales, animal fables, and divine mythologies.
- **The Recitation :** The formal, rhythmic chanting of the core poetic verses.

Performative Format & Roles :

- **Choral Singing :** The core narrative poem is sung collectively in a chorus rather than as a solo performance.
- **Multi-Role Integration :** The performers do not just sing; they simultaneously double up as **actors and musicians**.
- **Dramatic Enactment :** The singers physically dramatize the sequential events of the story to bring the narrative to life.

Musical Accompaniment :

The auditory backdrop of the oral performance relies on specific symbolic instruments :

- **The Damru :** A small, traditional drum explicitly associated with Lord Shiva.
- **Bells :** Used alongside the damru to provide rhythmic and ritualistic accompaniment.

Performance Spaces :

The oral tradition is highly spatial and brought directly to the public through two main venues :

- **Shiva Temple Courtyards :** Staged before massive religious gatherings.
- **Village Squares :** Enacted as public performances for the general community.

Core Narrative Themes :

The oral tradition revolves around a unique thematic framework detailing the relationship between Shiva and Parvati:

- **The Divine Wedding :** The central plot of the poem focuses entirely on the narrative and preparations leading up to the wedding of Shiva and Parvati.
- **Anthropomorphic Transformation :** The poem uniquely describes the process of Shiva transforming from a wild, intoxicated deity surrounded by dangerous serpents into a human family man.
- **Earthly Passion as Realization :** It frames Shiva's experience of mortal love and earthly passion as a journey leading to the true realization of one's being.
- **Parvati's Journey :** The story explicitly traces the birth of Parvati, her growth into an accomplished woman, her dream of marrying Shiva, and her actions guiding a Brahmin matchmaker to Shiva's untamed abode.

Contemporary Modernization, Economic Precarity, and Institutional Threats :

In the contemporary era, the continuity of the Jangam oral tradition faces severe structural vulnerabilities driven by late-stage modernization, socio-economic shifts, and globalization.

Demographic Decline and Sociological Stigma :

Empirical estimates provided by community scholars indicate a drastic demographic contraction among practicing ascetics. The population of authentic, practicing Jangams in North India has precipitously declined from approximately **3,000 individuals to a mere 1,000–1,500 over the last two decades**—representing a **50% contraction**.

This decline is heavily driven by a shifting generational consciousness. The contemporary internet-savvy youth ("Gen-X" and Millennials) often misinterpret the ritualized act of *bhiksha* (sacred alms-seeking) through a secularized lens, conflating the ascetics with economic beggars. This socio-cultural stigma has caused a severe crisis of self-esteem among younger members of the community, driving them away from their hereditary lineage.

Economic Factors and Professional Divergence :

The traditional economy of the Jangam has become financially unsustainable in the face of modern inflationary pressures. With average daily ritual earnings often failing to exceed **₹100**, practicing ascetics cannot meet basic household subsistence costs. Consequently, young Jangams are aggressively pursuing secular, formal education. This has triggered a massive professional diaspora out of the hereditary religious sector and into lucrative modern industries:

Traditional Sphere	**Contemporary Professional Diaspora**
• Hereditary *Jangam Gayan*	• Medical Sciences
• Temple Administration	• Jurisprudence & Legal Practice
• Monastic Mendicancy (*Matha*)	• Engineering & Technology
• Domestic Ritual Services	• Real Estate & Corporate Management
	• Insurance Advisement & Financial Services

This structural shift is also accompanied by a distinct lifestyle secularization. For instance, the younger generation has largely abandoned the traditional, ritualized consumption of *bhang* (cannabis), restricting it purely to a nominal token of *prasad* during the annual *Mahashivratri* festival.

The Phenomenon of Identity Misrepresentation :

According to institutional bodies like the **Veera Siva Samaj of North India (VSSNI)**, led by community authorities such as Prof. Ram Niwas Jangam, the most immediate threat to the integrity of the tradition is the proliferation of **counterfeit or fake Jangams**. These unsanctioned actors adopt the outward material signifiers of the tribe—such as the peacock-feathered headgear and brass ear ornaments—to exploit public piety for purely commercial gain.

Because these unauthorized practitioners operate outside the community's ethical and Agamic frameworks, they bring significant disrepute to the authentic lineage. In response, community institutions have been forced to lobby state apparatuses (including the Governors of Punjab and Haryana) to legally intervene and apprehend these deceptive actors, in a desperate bid to preserve the sacred identity of this unique cultural group.

Conclusion :

The Jangam tradition of North India stands at a critical historical and sociological crossroads. As a non-Brahmanical ascetic order, its identity has safely rested for centuries upon two pillars: a profound theological lineage tracing back to the 12th-century Veerashaiva movement, and the fluid, performative mastery of *Jangam Gayan*. Through the rhythmic beat of the *damru* and collective choral performances, the Jangams have preserved a unique Shaivite theology—one that beautifully humanizes the wild deity Shiva through earthly passion and domestic integration. By bringing this narrative directly into temple courtyards and village squares, they have historically served as living, moving embodiments of the divine (*cara linga*) within the sacred landscape of North India.

Ultimately, the survival of the Jangam heritage depends on balancing tradition with modernity. While the community's shift toward formal education and lucrative careers reflects a positive trend of social adaptation, it threatens to silence an irreplaceable oral epic that has been passed down strictly through generations. To prevent *Jangam Gayan* from fading into historical obscurity, institutional bodies like the VSSNI must continue lobbying for state administrative protection against identity theft. Furthermore, there is an urgent need for institutional documentation and cultural preservation efforts. Only by recognizing *Jangam Gayan* as a vital piece of intangible cultural heritage can society ensure that the moving verses of Shiva and Parvati's wedding continue to echo across the public spheres of North India.

References :

1. *Jangam Shaiva Guru with Ceremonial turban - Amarnath Yatra (Pilgrimage) - Kashmir*. (n.d.). Loupiote Photography. https://www.loupiote.com/photos/jangam-shaiva-guru-with-ceremonial-turban-amarnath-yatra-pilgrimage-kashmir-3748274775.shtml
2. Ministry of Culture, Government of India [Indian Culture]. (n.d.). Jangam Gyan. In *https://www.indianculture.gov.in/intangible-cultural-heritage/performing-arts/jangam-gayan*. National Virtual Library of India. Retrieved February 24, 2026, from https://www.indianculture.gov.in/intangible-cultural-heritage/performing-arts/jangam-gayan
3. Nadimath, 1942, 'A Hand book of Veerasaivism', Mangalore, Basel Mission Press
4. Rani, S. (2021, June 24). *Art History, Aesthetics and Folk Studies's post*. Facebook. Retrieved February 24, 2026, from https://www.facebook.com/100063829491855/posts/jangams-the-religious-folk-singers-of-old-punjabjangams-are-very-popular-in-old-/276772850864270/
5. R.N. Nandi, 1975, "Origin of Virasaiva Movement" in The Indian Historical Review, Vol.II, and No:1
6. Secretary Sangeet Natak Akademi National Academy of Music, Dance and Drama. (n.d.). IGNCA INVENTORY ON THE INTANGIBLE CULTURAL HERITAGE: Jangam Gyan.

In *http://www.sangeetnatak.org/*. Indira Gandhi National Center of Arts. https://ignca.gov.in/ICH/ich_detail/ich00026.pdf

7. Singh, V. (2011, August 7). Dying tradition. *The Tribune, Spectrum*. https://www.tribuneindia.com/2011/20110807/spectrum/main3.htm#:~:text=%22More%20and%20more%20Jangams%20are,its%20ritualistic%20prasad%20on%20Shivratri.
8. https://www.instagram.com/p/CA__f7KpA0U/?hl=en
9. https://www.hindustantimes.com/cities/others/jangam-sadhus-enchant-as-wandering-shrines-of-lord-shiva-101736964574999.html
10. https://en.wikipedia.org/wiki/Jangam#:~:text=The%20Jangam%20or%20Jangamuru%20or,Brahmins%20become%20known%20as%20Jangamas.
11. http://indianculture.gov.in/intangible-cultural-heritage/performing-arts/jangam-gayan
12. https://prharyana.gov.in/en/haryana-government-has-decided-to-include-five-castes-1-jogi-jangam-jogi-nath-2-maniar-3-bhat-4

manu.history@gndu.ac.in
9988421694

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 158-164

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी बाल साहित्य की विधाएँ और बाल मन : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

हेमलता अहिरवार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय – छतरपुर (म.प्र.)

प्रोफेसर सरोज गुप्ता

शोध निर्देशक, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, शासकीय कला एवं वाणिज्य (अग्रणी) महाविद्यालय सागर, (म.प्र.)

सारांश :

बाल साहित्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह बालक के मन को कितनी गहराई से समझता है। इक्कीसवीं सदी में एकल परिवार, डिजिटल माध्यमों का प्रसार और प्रतिस्पर्धा का दबाव बालक के मनोजगत को नए ढंग से प्रभावित कर रहे हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में इक्कीसवीं सदी में प्रकाशित हिन्दी बाल साहित्य की प्रमुख विधाओं – लोरी, बालगीत, बाल कहानी, बाल नाटक, बाल उपन्यास तथा बाल पत्रिका – का अध्ययन बाल मनोविज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में किया गया है। विश्लेषण का आधार फ्रायड का व्यक्तित्व–सिद्धांत, एडलर की हीनता–श्रेष्ठता संबंधी अवधारणा, जुंग का अन्तर्मुखी–बहिर्मुखी वर्गीकरण तथा बाल विकास की अवस्थाएँ हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि प्रत्येक विधा बालक की किसी विशिष्ट मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति करती है – लोरी संवेगात्मक सुरक्षा देती है, पशु–पक्षी कथाएँ कल्पना और तादात्म्य को पोषित करती हैं, विज्ञान–कथाएँ जिज्ञासा को संतुष्ट करती हैं, बाल नाटक संवेगों की अभिव्यक्ति का अवसर देते हैं और बाल उपन्यास भय को विवेक में बदलने में सहायक होते हैं। शोध–पत्र यह भी रेखांकित करता है कि आयु–वर्ग के अनुरूप विधा का चयन ही बाल साहित्य की प्रभावशीलता की मूल शर्त है।

बीज शब्द : इक्कीसवीं सदी, हिन्दी बाल साहित्य, बाल मनोविज्ञान, विधा, कल्पना, जिज्ञासा, संवेग, तादात्म्य

1. प्रस्तावना :

बालक का मन कोमल मिट्टी के समान होता है, जिस पर पड़ी छाप जीवन भर बनी रहती है। भारतीय परंपरा ने इस सत्य को बहुत पहले पहचान लिया था, इसीलिए पंचतंत्र और हितोपदेश जैसी कृतियों में नीति को सीधे उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया। आधुनिक मनोविज्ञान ने इसी अनुभूत सत्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। फ्रायड के अनुसार 'बाल्यावस्था के ये नाटकीय अनुभव वाले क्षण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जो कि एक वयस्क व्यक्ति का आधार हैं।'[1] यदि बाल्यावस्था के अनुभव ही व्यक्तित्व की नींव हैं, तो उस अवस्था में बालक जो पढ़ता और सुनता है, उसका महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

इक्कीसवीं सदी ने बालक के परिवेश को अभूतपूर्व रूप से बदल दिया है। संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवार, दादी–नानी की कहानियों के स्थान पर टेलीविजन और मोबाइल, तथा खेल के स्थान पर प्रतिस्पर्धा ने बचपन की प्रकृति को प्रभावित किया है। इन परिस्थितियों में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि इस सदी का हिन्दी बाल साहित्य बालक की बदली हुई मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को किस सीमा तक समझ रहा है। डॉ. सोनाली निनामा ने इस चुनौती की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि इक्कीसवीं सदी विज्ञान और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के क्षेत्र में पत्रिकाओं के लिए और अधिक प्रतिस्पर्धा का वातावरण उत्पन्न करेगी, अतः प्रकाशित बाल साहित्य को अपनी उपयोगिता और श्रेष्ठता बनाए रखनी होगी।[2]

बाल साहित्य की विविध विधाएँ इस चुनौती का उत्तर अलग–अलग ढंग से देती हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र इन्हीं विधाओं को बाल मनोविज्ञान की कसौटी पर परखने का प्रयास है।

2. शोध के उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध–पत्र के उद्देश्य इस प्रकार हैं – (क) बाल मनोविज्ञान के प्रमुख सिद्धांतों के आधार पर बाल साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी निर्धारित करना, (ख) इक्कीसवीं सदी के बालक की प्रमुख मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पहचान करना, (ग) इक्कीसवीं सदी के हिन्दी बाल साहित्य की प्रमुख विधाओं का इन आवश्यकताओं की दृष्टि से विश्लेषण करना, तथा (घ) बालक की आयु–अवस्था और विधा के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करना।

3. शोध-प्रविधि :

यह अध्ययन गुणात्मक, पाठ–आधारित और विश्लेषणात्मक है। इसकी मूल पद्धति मनोवैज्ञानिक है, जिसके अंतर्गत बाल मनोविज्ञान के सिद्धांतों को विश्लेषण का उपकरण बनाया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में सन् 2001 से 2011 के बीच प्रकाशित प्रतिनिधि बाल रचनाएँ ली गई हैं, तथा द्वितीयक स्रोत के रूप में बाल साहित्य और बाल मनोविज्ञान से संबंधित आलोचनात्मक ग्रंथों का उपयोग किया गया है। अध्ययन का क्षेत्र हिन्दी भाषा तक सीमित है और इसमें बाल पाठकों पर क्षेत्रीय सर्वेक्षण सम्मिलित नहीं है।

4. सैद्धांतिक आधार : बाल मनोविज्ञान :

क्रो एवं क्रो के अनुसार 'बाल मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो बालकों के विकास का अध्ययन गर्भकाल से किशोरावस्था तक करता है।'[3] यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि बालक कोई स्थिर इकाई नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होने वाला व्यक्तित्व है, और प्रत्येक अवस्था की अपनी आवश्यकताएँ हैं। बाल साहित्य के मूल्यांकन के लिए बाल मनोविज्ञान के चार आधार विशेष रूप से उपयोगी हैं।

फ्रायड का व्यक्तित्व-सिद्धांत : फ्रायड ने व्यक्तित्व को इदम् (सहज इच्छाएँ), अहम् (यथार्थ से संतुलन) और पराहम् (नैतिक चेतना) में विभाजित किया। उन्होंने कल्पना, स्वप्न और तादात्म्य जैसी मानसिक प्रक्रियाओं की भी व्याख्या की। कल्पना के संबंध में कहा गया है कि 'व्यक्ति के कल्पना जगत् में अचेतन की इच्छाओं की संतुष्टि हो जाती है। वह अपनी अपूरित आकांक्षाओं की पूर्ति कल्पना जगत् द्वारा करता है।'[4] बाल साहित्य बालक को ठीक यही कल्पना–जगत् प्रदान करता है।

एडलर का सिद्धांत : एडलर के अनुसार 'हीनता और उच्चता की भावनाएँ सामान्य मानवीय स्थितियाँ हैं जो मानव व्यवहार को दिशा देती हैं।'[5] बालक में श्रेष्ठता प्राप्त करने की स्वाभाविक आकांक्षा होती है, और यदि

उसे सकारात्मक दिशा न मिले तो वह उद्दंडता या अंतर्मुखता के रूप में प्रकट हो सकती है।

जुंग का वर्गीकरण : जुंग ने व्यक्तियों को अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी में विभाजित किया। अन्तर्मुखी बालक संकोची होता है, जबकि बहिर्मुखी बालक वातावरण के अनुसार स्वयं को सहजता से ढाल लेता है।[6] बाल साहित्य की विभिन्न विधाएँ इन दोनों प्रकार के बालकों को अलग–अलग ढंग से आकर्षित करती हैं।

कल्पना और विकास की अवस्थाएँ : ओमप्रकाश कश्यप के अनुसार कल्पना एक उच्च कोटि की मानसिक क्रिया है, और 'बालक दैनिक जीवन में जो कुछ देखता है, सुनता है तथा अनुभव करता है, कल्पना उन सभी पर आधारित है।'[7] शैशवावस्था, बाल्यावस्था और किशोरावस्था में यह कल्पना–शक्ति, भाषा–क्षमता और तर्क–शक्ति क्रमशः विकसित होती है, इसलिए प्रत्येक अवस्था के लिए उपयुक्त साहित्य भी भिन्न होता है।

5. इक्कीसवीं सदी का बालक : मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ :

उपर्युक्त सैद्धांतिक आधार और वर्तमान परिवेश को साथ रखकर देखें तो इक्कीसवीं सदी के बालक की चार प्रमुख मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ सामने आती हैं। पहली है संवेगात्मक सुरक्षा – एकल परिवारों और कामकाजी माता–पिता के कारण अनेक बालक उस स्नेह और साहचर्य से वंचित हैं जो पहले परिवार सहज रूप से देता था। दूसरी है कल्पना का अवसर – तैयार दृश्य–सामग्री की अधिकता बालक के मन में स्वयं चित्र गढ़ने के अवसर कम कर रही है। तीसरी है तनाव से मुक्ति – प्रतिस्पर्धा का दबाव इदम् और पराहम् के बीच तनाव बढ़ा रहा है। चौथी है जिज्ञासा की संतुष्टि – आज का बालक अधिक प्रश्नशील और विश्व से जुड़ा हुआ है। आगे इन्हीं चार आवश्यकताओं की कसौटी पर विधाओं का विश्लेषण किया गया है।

6. विधाओं का मनोवैज्ञानिक विवेचन :

6.1 लोरी और बालगीत : संवेगात्मक सुरक्षा और भाषा-संस्कार :

शैशवावस्था में बालक शब्दों का अर्थ नहीं, उनकी ध्वनि, लय और उनमें निहित स्नेह ग्रहण करता है। लोरी माँ की आवाज, थपकी और लय के माध्यम से शिशु को वह संवेगात्मक सुरक्षा देती है जो उसके व्यक्तित्व की पहली नींव है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने बालगीत को परिभाषित करते हुए कहा है – 'बाल अनुभूति की सरल और गेय शब्दों में छंदबद्ध संगीतमय अभिव्यक्ति ही बालगीत है।'[8] इस परिभाषा में 'बाल अनुभूति' और 'गेयता' – दोनों ही मनोवैज्ञानिक तत्व हैं।

बालगीत की सफलता की एक अनिवार्य शर्त यह है कि वह बालक के अनुभव–क्षेत्र के भीतर हो। निरंकारदेव सेवक का मत है कि 'बच्चे अपने सीमित अनुभव ज्ञान के कारण उन्हीं विषयों पर लिखे गए बालगीतों में रस ले सकते हैं जो उनकी समझ की सीमा में किसी न किसी प्रकार आ सकते हैं।'[9] यही कारण है कि पशु–पक्षी, ऋतुएँ, त्योहार और घर–परिवार बालगीतों के सबसे लोकप्रिय विषय हैं। बालगीतों की आवृत्ति और तुक बालक की स्मरण–शक्ति को सुदृढ़ करती है तथा भाषा–विकास में सहायक होती है।

6.2 बाल कहानी : कल्पना, तादात्म्य और जिज्ञासा :

कहानी बाल साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है, और इक्कीसवीं सदी में इसके विविध रूप विकसित हुए हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन्हें चार वर्गों में देखा जा सकता है।

- **पशु–पक्षी कथाएँ :** रमाकांत की 'जंगल की कहानियाँ' (2001) और 'बिल्ली को मिली सीख', कमल सोगानी की 'चिड़िया और खजाना' (2001) तथा चंपारानी की 'मधुमक्खी' (2002) जैसी रचनाएँ बालक की उस

प्रवृत्ति पर आधारित हैं जिसमें वह मानवेतर प्राणियों में भी अपने जैसी भावनाएँ देखता है। बोलते पशु–पक्षियों से वह सहज तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उनके अनुभव को अपना अनुभव मानकर उनसे मिली सीख ग्रहण करता है। फ्रायड द्वारा वर्णित तादात्म्य की प्रक्रिया यहाँ सबसे स्पष्ट रूप में दिखाई देती है।

- **परीकथाएँ :** आज के बुद्धिवादी युग में परीकथाओं के औचित्य पर प्रश्न उठाए जाते हैं, किंतु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका महत्व बालक को कल्पनाशील बनाने में है। जयप्रकाश भारती के शब्दों में – 'धरती पर ऐसा कौन–सा देश है, जहाँ परीकथाएँ न हों, बालक परियों के गीत न गाते हों।'[10] राधेश्याम प्रगल्भ की 'राजकुमारी उड़ने वाली' (2006), जाकिर अली रजनीश की 'एक थी टिमी' (2006) और शांता ग्रोवर की 'परियाँ आएगी केक लाएँगी' (2006) जैसी रचनाएँ बालक के कल्पना–जगत् को समृद्ध करती हैं, जहाँ उसकी अपूरित आकांक्षाएँ सुरक्षित रूप से पूरी होती हैं।
- **विज्ञान–कथाएँ :** डॉ. हरिकृष्ण देवसरे की 'अंतरिक्ष सूट में बंदर' (2001), लीना मेहेंदले की 'अंतरिक्ष यात्रा' (2001) और जाकिर अली रजनीश की 'मौत से जंग' (2006) इक्कीसवीं सदी के बालक की बढ़ी हुई जिज्ञासा का उत्तर हैं। ये कहानियाँ 'क्या', 'क्यों' और 'कैसे' जैसे प्रश्नों को कथा के रोमांच के साथ जोड़ती हैं, जिससे बालक की बौद्धिक आवश्यकता और मनोरंजन की इच्छा एक साथ पूरी होती है।
- **साहसिक एवं वीर–कथाएँ :** सत्यनारायण तोतला की 'चेतक का बलिदान' (2001), धर्मपाल शास्त्री की 'भारत के साहसी वीरों की गाथाएँ' (2002) और डॉ. राष्ट्रबंधु की 'स्वतंत्रता की रक्षा' (2003) जैसी रचनाएँ बालक की अनुकरण–प्रवृत्ति को सकारात्मक आदर्श देती हैं। एडलर के सिद्धांत के आलोक में ये कथाएँ बालक की श्रेष्ठता की आकांक्षा को साहस और कर्तव्य जैसी रचनात्मक दिशाओं में मोड़ती हैं।

डॉ. देवसरे द्वारा संपादित 'बच्चों की 100 कहानियाँ' के आवरण पर यह उल्लेख कि यह संकलन 'बच्चों के कल्पना जगत को विकसित करेगा, उनका मनोरंजन करेगा।'[11] – बाल कहानी के इन्हीं दो मूल मनोवैज्ञानिक प्रयोजनों को रेखांकित करता है।

6.3 बाल नाटक : संवेगों की अभिव्यक्ति और सामूहिकता :

बाल नाटक बालक को केवल पाठक नहीं, सहभागी बनाता है। डॉ. संध्या पाण्डेय के अनुसार 'बाल नाटक एक ऐसी विधा है जिसके पढ़ने से तथा मंच पर प्रदर्शित होते देखकर उसके रसास्वादन से बच्चों के मन पर छाप पड़ती है।'[12] डॉ. देवसरे का मत है कि 'बच्चों में नाटक ऐसे होने चाहिए कि वे उनकी कल्पनाशक्ति को जागृत करें ... और साथ ही उनके अनुभव क्षेत्र का प्रसार करने में समर्थ हों।'[13]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभिनय बालक को अपने दबे हुए संवेगों को सुरक्षित ढंग से व्यक्त करने का अवसर देता है। इक्कीसवीं सदी के 'मनोविज्ञान नाटकों' – जैसे डॉ. राष्ट्रबंधु का 'राज पिताजी को' (2001) और उषा सक्सेना का 'हँसते गाते चेहरे' (2001) – में बाल जगत की समस्याओं को बालक की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। मनोरंजन–प्रधान नाटक, जैसे सत्येन्द्र शरत् का 'मजेदार मामाजी' (2003) और वेद राही का 'झूठ का अलार्म' (2003), तनाव–मुक्ति का माध्यम बनते हैं। जुंग के वर्गीकरण की दृष्टि से नाटक बहिर्मुखी बालकों को अपनी ऊर्जा की अभिव्यक्ति का मंच देते हैं, और अन्तर्मुखी बालकों को समूह में सहभागिता के माध्यम से संकोच से उबरने में सहायता करते हैं।

6.4 बाल उपन्यास : यथार्थ से साक्षात्कार और भय से विवेक तक :

बाल उपन्यास अपेक्षाकृत बड़े बालकों और किशोरों की विधा है, जिनकी तार्किक क्षमता और एकाग्रता विकसित हो चुकी होती है। डॉ. देवसरे के अनुसार 'बच्चे साहसिक, रोमांचक, ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक विषयों को पढ़ने में अधिक रुचि लेते हैं, बाल उपन्यास उन्हें पूरा मनोरंजन एवं संतोष देते हैं।'[14] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना ने उपन्यास को 'बच्चों के मन का विषय' कहा है – 'यह ऐसी कल्पना है जो बालक के निजी जीवन से जुड़ी है।'[15]

इक्कीसवीं सदी में बालमन को केंद्र में रखने वाले उपन्यासों में रतन शर्मा का 'काजू और किशमिश' (2001), क्षमा शर्मा का 'गोपू का कछुआ' (2004) और रोहिताश्व अस्थाना का 'स्वप्न लोक' (2005) उल्लेखनीय हैं। डॉ. देवसरे का 'एक और भूत' (2003) एक विशिष्ट उदाहरण है, जिसमें भूत वास्तव में समाज में व्याप्त अंधविश्वास का प्रतीक है। अज्ञात का भय बाल्यावस्था के सबसे प्रबल नकारात्मक संवेगों में से है, जो उपन्यास इस भय को तर्क और विवेक में बदलता है, वह बालक के संवेगात्मक स्वास्थ्य में प्रत्यक्ष योगदान करता है।

6.5 बाल पत्रिकाएँ : नियमितता, सहभागिता और आत्मविश्वास :

बाल पत्रिकाएँ नियमित अंतराल पर बालक तक पहुँचकर उसकी पढ़ने की आदत को स्थायी बनाती हैं। जयप्रकाश भारती के अनुसार 'एक अच्छी बाल पत्रिका मित्रवत् बालक को सही दिशा प्रदान करती है ... एकांत में उसका मनोरंजन करती है।'[16] 'एकांत में मनोरंजन' का यह पक्ष इक्कीसवीं सदी के एकल परिवारों के संदर्भ में विशेष अर्थ रखता है। पत्रिकाओं में प्रकाशित पहेलियाँ, प्रतियोगिताएँ और बच्चों की अपनी रचनाएँ उसे पाठक से सहभागी बनाती हैं, जिससे उसमें आत्मविश्वास और अभिव्यक्ति–क्षमता का विकास होता है।

7. विवेचन : आयु–अवस्था, विधा और मनोवैज्ञानिक आवश्यकता :

उपर्युक्त विश्लेषण को सार रूप में निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया जा सकता है –

आयु-अवस्था	प्रमुख विधा	पूरित मनोवैज्ञानिक आवश्यकता	इक्कीसवीं सदी के उदाहरण
शैशवावस्था (0-5 वर्ष)	लोरी, शिशुगीत	संवेगात्मक सुरक्षा, लय-बोध	लोरियाँ एवं शिशुगीत
पूर्व बाल्यावस्था (5-8 वर्ष)	बालगीत, पशु-पक्षी कथा, परीकथा	कल्पना, तादात्म्य, भाषा-विकास	'जंगल की कहानियाँ' (2001), 'राजकुमारी उड़ने वाली' (2006)
उत्तर बाल्यावस्था (8-12 वर्ष)	विज्ञान-कथा, साहसिक कथा, बाल नाटक	जिज्ञासा, अनुकरण, संवेग-अभिव्यक्ति	'अंतरिक्ष सूट में बंदर' (2001), 'राज पिताजी को' (2001)
किशोरावस्था (12 वर्ष से आगे)	बाल उपन्यास, पत्रिका	तर्क, यथार्थ-बोध, आत्मविश्वास	'एक और भूत' (2003), 'गोपू का कछुआ' (2004)

सारणी से स्पष्ट है कि बाल साहित्य की विधाएँ परस्पर प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि पूरक हैं। वे बालक के विकास के साथ–साथ चलती हैं और प्रत्येक अवस्था में उसकी प्रधान मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। (आयु–सीमाएँ सांकेतिक हैं, व्यक्तिगत भिन्नता के कारण इनमें अंतर संभव है।) साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इक्कीसवीं सदी के कुछ बाल साहित्य में अब भी उपदेश की अधिकता और आयु–वर्ग की अनदेखी दिखाई देती है। ऐसी रचनाएँ बालक के इदम् – उसकी आनंद की सहज इच्छा – की उपेक्षा करती हैं और इसी कारण बालक को आकर्षित नहीं कर पातीं।

8. निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि इक्कीसवीं सदी का हिन्दी बाल साहित्य अपनी विविध विधाओं के माध्यम से बालक की बदली हुई मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को संबोधित कर रहा है। लोरी और बालगीत संवेगात्मक सुरक्षा और भाषा–संस्कार देते हैं, पशु–पक्षी कथाएँ और परीकथाएँ कल्पना तथा तादात्म्य को पोषित करती हैं। विज्ञान–कथाएँ बढ़ी हुई जिज्ञासा को संतुष्ट करती हैं। साहसिक कथाएँ अनुकरण–प्रवृत्ति को सकारात्मक आदर्श देती हैं। बाल नाटक संवेगों की अभिव्यक्ति और सामूहिकता का अवसर देते हैं। बाल उपन्यास भय को विवेक में बदलते हैं और बाल पत्रिकाएँ एकल परिवारों के बालक को 'एकांत का साथी' प्रदान करती हैं।

अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि बाल साहित्य की प्रभावशीलता की मूल शर्त आयु–अवस्था के अनुरूप विधा और विषय का चयन है। बाल साहित्यकार, अभिभावक और शिक्षक – तीनों के लिए यह आवश्यक है कि वे बालक को उसकी अवस्था के अनुरूप साहित्य उपलब्ध कराएँ। भावी शोध के लिए यह सुझाव है कि बाल पाठकों की रुचियों पर क्षेत्रीय सर्वेक्षण तथा डिजिटल बाल साहित्य के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अनुभवजन्य अध्ययन किया जाए।

संदर्भ सूची :

1. वारेकर, डॉ. चित्रा, बाल मनोविज्ञान : बालमन की जिज्ञासा, आरोग्य निधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 30
2. निनामा (सिसोदिया), डॉ. सोनाली, 21वीं सदी का बाल साहित्य, वान्या पब्लिकेशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2022, पृ. 39
3. क्रो एवं क्रो, शिक्षा मनोविज्ञान, पृ. 1
4. शर्मा, डॉ. गिरिधर प्रसाद, हिन्दी उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ. 22
5. एडलर, अल्फ्रेड, द साइंस ऑफ लिविंग, पृ. 15
6. फोर्डहम, फ्रीडा, एन इंट्रोडक्शन टू जुंग्स साइकोलॉजी, पृ. 32
7. कश्यप, ओमप्रकाश, बचपन और बाल साहित्य के सरोकार, पेनमेन इन्फोटेक प्रा. लि., गाजियाबाद, 2021, पृ. 209
8. देवसरे, डॉ. हरिकृष्ण, हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन, आत्माराम एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1969, पृ. 241
9. सेवक, निरंकारदेव, बालगीत साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1966, पृ. 85

10. भारती, जयप्रकाश, भारतीय बाल साहित्य का इतिहास, अखिल भारतीय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002
11. देवसरे, डॉ. हरिकृष्ण (संपा.), बच्चों की 100 कहानियाँ, आवरण पृष्ठ।
12. पाण्डेय, डॉ. संध्या, श्रेष्ठ बाल नाटक, पृ. 2
13. देवसरे, डॉ. हरिकृष्ण, हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन, आत्माराम एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1969, पृ. 8
14. देवसरे, डॉ. हरिकृष्ण, बाल साहित्य : मेरा चिंतन, मेधा बुक्स, दिल्ली, 2000, पृ. 137
15. अस्थाना, डॉ. रोहिताश्व एवं डॉ. शेषपाल सिंह 'शेष', साठोत्तरी हिन्दी बाल साहित्य, समय प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 113
16. कालरा, डॉ. शकुन्तला, हिन्दी बाल साहित्य : आधुनिक परिदृश्य, नमन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृ. 89

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 165-170

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

The Role of Sleep in Athletic Recovery and Performance : A Systematic Review

Mr. Gagandeep Singh, Research Scholar
Prof. Suresh Malik, Guide
Department of Physical Education, Chaudhary Bansi Lal University, Bhiwani (Haryana)

Abstract :

Sleep is an important part of an athlete's health, recovery, and performance. It helps the body repair muscles, restore energy, support immunity, and maintain hormonal balance. It also supports attention, memory, decision-making, emotional control, and learning of sports skills. However, athletes may not get enough good-quality sleep because of demanding training, late competitions, travel, stress, study, screen use, and irregular routines. This paper reviews literature on the relationship between sleep, athletic recovery, and sports performance. It uses a narrative synthesis to group the reported findings into key themes. The reviewed literature generally links adequate and good-quality sleep with better recovery, concentration, endurance, strength, and readiness to compete. Poor sleep is linked with fatigue, slower reactions, mood changes, and a possible increase in injury risk. Practical steps include regular sleep schedules, sleep education, relaxation, reduced screen use before bed, and monitoring sleep patterns. Research focused on Indian athletes remains limited, so further studies are needed across different sports and athlete groups. The paper concludes that sleep should be treated as a core part of training, alongside nutrition, exercise, and psychological support.

Keywords : Sleep quality, athletic recovery, sports performance, sleep hygiene, sleep duration, athlete well-being.

1. Introduction :

Sports performance depends on more than physical fitness and skill. Athletes also need enough time to recover between training sessions and competitions. Sleep is one of the most accessible and low-cost ways to support this recovery. During sleep, the body carries out processes that help restore energy, repair tissues, and prepare the brain and body for the next day. For this reason, sleep is an important part of long-term athlete development.

Modern athletes often face heavy training schedules, travel, academic or work commitments, and pressure to perform. These demands can reduce sleep time or disturb sleep quality. Late training, competition anxiety, caffeine, screen use before bedtime, noise, and changes in routine may also affect rest. Student-athletes can face an added challenge because they must balance classes, examinations, and sports.

Sleep supports both physical and mental performance. Deep non-rapid eye movement sleep is linked with physical restoration, while rapid eye movement sleep contributes to memory, learning, and emotional processing. Good sleep may help athletes maintain strength, endurance, coordination, attention, and confidence. In contrast, sleep loss may increase tiredness and affect reaction time, judgment, and motivation. These effects matter especially in sports that require quick decisions and accurate movements.

Research on sleep and sports has grown, but studies differ in the sports studied, participant groups, sleep measures, and performance outcomes. Evidence from India is also comparatively limited. A short review of the available literature can help explain the main links between sleep, recovery, and performance and identify areas where more research is needed.

2. Objectives and Research Questions :

The main objective is to review published literature on the role of sleep in athletic recovery and sports performance. The review focuses on : (1) the relationship between sleep quality, sleep duration, and recovery; (2) the effects of sleep on strength, endurance, reaction time, and coordination; (3) the role of sleep in concentration, learning, and emotional well-being; (4) common causes of sleep disturbance among athletes; (5) practical sleep-management strategies; and (6) research needs, especially in India.

The review asks three central questions: How does sleep support physical and psychological recovery? What may happen to performance when athletes do not sleep well or for long enough? What practical steps can athletes, coaches, and sports organisations take to improve sleep?

3. Research Methodology :

This paper uses a systematic-review approach as described in the source manuscript. The literature sources named in that manuscript include Scopus, Web of Science, PubMed, SPORTDiscus, ScienceDirect, SpringerLink, Taylor & Francis Online, and Google Scholar. Indian journals and university repositories were also considered for relevant material.

The search terms included combinations such as "sleep quality" and "athletic performance," "sleep duration" and "sports performance," "sleep" and "athlete recovery," "sleep hygiene" and "competitive athletes," and "sleep deprivation" and "exercise performance." Reference lists of relevant

papers were also checked.

Studies were considered relevant when they were published in peer-reviewed journals, involved athletes, examined sleep or sleep-related interventions, and reported outcomes linked to recovery, performance, cognition, injury, or physiology. Studies focused only on non-athletes, editorials, conference abstracts, or unrelated clinical sleep disorders were excluded. The manuscript describes screening titles and abstracts, checking full texts, extracting study details, and assessing study quality. Because the studies differed in methods and outcomes, findings were grouped by theme rather than combined statistically.

Methodological Note : The source manuscript does not provide the number of records found, screened, excluded, or finally included. Therefore, no PRISMA flow counts or pooled effect sizes are reported in this shortened version.

4. Findings :

4.1 Sleep quality and recovery :

The reviewed literature generally links restorative, uninterrupted sleep with better recovery and less perceived fatigue. Sleep supports muscle repair, energy restoration, immune function, and normal hormonal activity. Poor or broken sleep may leave athletes tired for longer and reduce readiness for the next training session. Sleep duration is important, but the quality of sleep also matters.

4.2 Sleep duration and physical performance :

Adequate sleep is associated with better endurance, strength, sprint ability, reaction time, movement accuracy, and sports skills. Sleep restriction has been linked with slower reactions, lower power, reduced endurance, and a greater feeling of effort during exercise. Some studies also suggest that extending sleep can help athletes, especially during demanding training periods.

4.3 Thinking skills and emotional well-being :

Sport often requires athletes to notice changes quickly, make decisions, remember tactics, and learn new skills. Sleep helps attention, memory, and learning. It is also linked with emotional control and confidence. Athletes who sleep poorly may experience irritability, stress, anxiety, low motivation, and weaker concentration, which can affect training and competition.

4.4 Sleep loss and injury risk :

The reviewed studies report a relationship between repeated sleep loss and a greater risk of injury. Poor sleep can affect balance, coordination, and reaction time. It may also weaken immune function and make recovery from illness or injury more difficult. These findings support including sleep in athlete health and injury-prevention plans, although the strength of the relationship may differ by sport and athlete.

4.5 Common causes of sleep problems :

Common barriers include late training sessions, competition-related worry, travel and time-zone changes, academic pressure, caffeine, screen use before bed, noise, and changing schedules. Student-athletes may be especially affected when academic and sports demands occur at the same time.

4.6 Sleep-management strategies :

Practical strategies include keeping a regular sleep and wake time, making the sleeping environment quiet and comfortable, reducing screen use close to bedtime, using relaxation or mindfulness techniques, and planning travel and training schedules carefully. Coaches can provide sleep education and encourage athletes to report persistent sleep problems. Sleep diaries or suitable monitoring tools may help identify patterns, but technology should support—not replace—professional advice when problems continue.

4.7 The Indian context :

The source manuscript notes that research focused on Indian athletes is limited compared with international research. Training loads, travel, academic responsibilities, and competition stress may affect sleep among Indian university and elite athletes. Schools, universities, sports academies, and training centres could include sleep education in athlete support programmes and encourage more local research.

5. Discussion :

The reviewed literature presents sleep as an active part of recovery rather than simply a period of rest. Its benefits extend across the body and brain: it supports physical restoration, learning, attention, mood, and preparation for future training. Sleep quality and duration should therefore be considered together when planning an athlete's recovery.

Sleep should not be treated as a replacement for good training, nutrition, or medical care. Instead, it works alongside these factors. A practical approach is to help athletes build regular routines and to consider sleep when planning early training, late matches, travel, and heavy competition periods. Coaches and support staff can make a difference by treating sleep as a normal topic in training discussions rather than a personal issue athletes must manage alone.

At the same time, the findings should be interpreted carefully. Studies use different methods to measure sleep and performance, and a link between poor sleep and injury does not prove that sleep loss is the only cause. More consistent methods and longer follow-up studies would improve understanding of how sleep affects different sports and athlete groups.

6. Practical Recommendations :

- Athletes should aim for a regular sleep and wake schedule and allow enough time for rest.
- Coaches should include basic sleep education in training and recovery programmes.
- Teams should consider the effects of late training, travel, and competition schedules on sleep.
- Athletes can keep a simple sleep diary to note bedtime, wake time, restfulness, and daytime fatigue.
- Universities and sports academies in India should promote sleep awareness and support research on local athletes.
- Persistent sleep problems should be discussed with a qualified healthcare professional.

7. Limitations and Future Research :

This review is limited by differences in study design, sports, participant groups, and sleep measures. The source manuscript does not report detailed screening counts, a complete study-by-study evidence table, or a statistical analysis. In addition, the amount of research focused on Indian athletes appears limited. Future studies should follow athletes over longer periods, compare sleep needs across sports, include female and youth athletes, and test practical sleep interventions in Indian schools, universities, academies, and elite training centres.

8. Conclusion :

Sleep is an important part of athletic recovery and performance. Good-quality sleep helps the body recover, supports concentration and learning, and helps athletes manage pressure. Poor sleep is associated with tiredness, weaker reactions, mood problems, reduced readiness, and a possible increase in injury risk. Athletes and coaches can support better sleep through regular routines, sleep education, careful scheduling, and simple monitoring. Sleep should be planned alongside training, nutrition, and psychological preparation. More high-quality research—especially research involving Indian athletes—is needed to develop advice that fits different sports and competition levels.

References :

1. Halson, S. L. (2014). Sleep in elite athletes and nutritional interventions to enhance sleep. Sports Medicine, 44(Suppl. 1), S13-S23.
2. Fullagar, H. H. K., Skorski, S., Duffield, R., Hammes, D., Coutts, A. J., & Meyer, T. (2015). Sleep and athletic performance: The effects of sleep loss on exercise performance and physiological and cognitive responses to exercise. Sports Medicine, 45(2), 161-186.
3. Watson, A. M. (2017). Sleep and athletic performance. Current Sports Medicine Reports, 16(6), 413-418.

4. Walsh, N. P., Halson, S. L., Sargent, C., et al. (2021). Sleep and the athlete: Consensus statement. British Journal of Sports Medicine, 55(7), 356-368.
5. Mah, C. D., Mah, K. E., Kezirian, E. J., & Dement, W. C. (2011). The effects of sleep extension on the athletic performance of collegiate basketball players. Sleep, 34(7), 943-950.
6. Milewski, M. D., Skaggs, D. L., Bishop, G. A., et al. (2014). Chronic lack of sleep is associated with increased sports injuries in adolescent athletes. Journal of Pediatric Orthopaedics, 34(2), 129-133.
7. Simpson, N. S., Gibbs, E. L., & Matheson, G. O. (2017). Optimizing sleep to maximize performance: Implications and recommendations for elite athletes. Scandinavian Journal of Medicine & Science in Sports, 27(3), 266-274.
8. Bonnar, D., Bartel, K., Kakoschke, N., & Lang, C. (2018). Sleep interventions designed to improve athletic performance and recovery: A systematic review. Sports Medicine, 48(3), 683-703.
9. Gupta, L., Morgan, K., & Gilchrist, S. (2017). Does elite sport degrade sleep quality? A systematic review. Sports Medicine, 47(7), 1317-1333.
10. Nédélec, M., Halson, S., Abaidia, A. E., Ahmaidi, S., & Dupont, G. (2015). Stress, sleep and recovery in elite soccer: A critical review. Sports Medicine, 45(10), 1387-1400.
11. Lastella, M., Halson, S., Vitale, J. A., Memon, A. R., & Vincent, G. E. (2021). To nap or not to nap? A systematic review evaluating napping behavior in athletes and the impact on performance. Sports Medicine, 51, 841-862.
12. O'Donnell, S., Beaven, C. M., & Driller, M. W. (2018). From pillow to podium: A review on understanding sleep for elite athletes. Nature and Science of Sleep, 10, 243-253.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 171-178

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

छिंदवाड़ा जिले में सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि उत्पादकता का योगदान

डॉ. विनोद कुमार नागले
उच्च. माध्य. शिक्षक (अर्थशास्त्र)
शासकीय उ. मा. विद्यालय निमोटी, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

सारांश –

किसी भी देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है। कृषि से केवल भोजन तथा कच्चे माल की प्राप्ति नहीं होती है, बल्कि जनसंख्या के एक बड़े भाग को रोजगार भी उपलब्ध कराता है। कृषि तथा उद्योग परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते है। एक क्षेत्र का विकास होने पर दूसरे क्षेत्र का भी विकास होता है। एक क्षेत्र का उत्पादन दूसरे क्षेत्र के लिए आगत बन जाता है। एक क्षेत्र के विकास होने का अर्थ है दूसरे क्षेत्र को अधिक आगतों का प्रवाह। ''दूसरे की सहायता करो यदि आप अपनी सहायता चाहते है।'' यही दोनों क्षेत्रों की निर्भरता का सारांश है। जैसे–जैसे किसी देश का सामाजिक एवं आर्थिक विकास होता है, वैसे–वैसे कृषि की भूमिका में भी परिवर्तन आ जाता है। जब द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों का विकास होता है तो कृषि की महत्ता कम हो जाती है। कुछ समय पश्चात् कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में हिस्सा भी कम हो जाता है, परन्तु कृषि क्षेत्र का अन्य क्षेत्रों पर निर्भरता बढ़ जाती है। कृषि तथा उद्योग दोनों एक दूसरे के पूरक है, प्रतियोगी नहीं। बिना कृषि के आधुनीकरण के औद्योगिक विकास सम्भव नहीं है क्योंकि यदि कृषि विकास नहीं होगा तो अधिकतर जनसंख्या के पास क्रयशक्ति नहीं होगी तथा बाजार का विस्तार भी नहीं होता। अतः यह बात भी सत्य है कि बिना औद्योगिकरण के कृषि विकास भी सम्भव नहीं है। अतः कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र का साथ–साथ विकास होना चाहिए। किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है।

मुख्य शब्द : कृषि उत्पादकता, सामाजिक एवं आर्थिक विकास, कृषि अर्थव्यवस्था।

प्रस्तावना :–

कृषि किसी देश के अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है। कृषि से केवल कच्चे माल की प्राप्ति नहीं होती, बल्कि जनसंख्या के एक बड़े भाग को रोजगार भी उपलब्ध कराता है। निम्न तथ्यों को पढ़ने के बाद आप समझ जायेंगे कि सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि का क्या महत्व है या सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि किस प्रकार सहायक होता है।

सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि का महत्व :

1. भोजन आवश्यकता की पूर्ति :

सभी देश अपनी भोजन सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने को पहली प्राथमिकता देते है। कोई भी देश अपनी सभी खाद्य आवश्यकताओं को दूसरे देश से आयात करके पूरा नहीं कर सकता है। अगर कोई देश अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आयात पर निर्भर है तो उसे बहुत अधिक मात्रा में आय को खर्च करना पड़ेगा और खाद्य वस्तुओं पर ज्यादा व्यय से सभी योजनाएं बिगड़ सकती है। इसलिए सरकार को खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के प्रयास करने चाहिए।

2. कच्चे माल की उपलब्धता :

सामाजिक एवं आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि से सम्बन्धित उद्योगों का विकास होता है। जैसे चीनी, सूती वस्त्र, जूट उद्योग इत्यादि केवल तभी सफल हो सकते है जब उन्हें कच्चे माल की पर्याप्त उपलब्धता हो। अतः इन उद्योगों के तीव्र विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल की उपलब्धता होनी चाहिए।

3. क्रय शक्ति :

यदि किसी देश की कृषि की स्थिति ठीक नही है तो कृषकों की आय भी कम होगी। कृषकों की आय कम होने से औद्योगिक वस्तुओं को नहीं खरीद पायेगें तथा औद्योगिक विकास रूक जायेगा। कृषि क्षेत्र की सम्पन्नता से ही औद्योगिक विकास होता है। किसी उद्योग का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक वस्तुओं का विक्रय करना होता है और यह तभी सम्भव है जब कृषि क्षेत्र विकसित हो।

4. बचत तथा पूंजी निर्माण :

कृषि क्षेत्र के समृद्ध होने से कृषकों की आय में वृद्धि होती है। आय में वृद्धि होने से कृषकों की बचत में वृद्धि होती है और बचत कृषकों द्वारा बैंकों व अन्य बचत संस्थाओं में जमा होता है। इन बचतों का प्रयोग पूंजी निर्माण के लिए किया जाता है, जिससे सामाजिक एवं आर्थिक विकास होता है। अगर कृषकों की आय कम होगी तो बचत भी कम होगी तथा पूंजी निर्माण भी कम होगा। सामाजिक एवं आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में जनसंख्या का अधिकत्तर भाग कृषि में कार्यरत होता है, अतः औद्योगिक क्षेत्र के तीव्र विकास के लिए कृषि क्षेत्र की सम्पन्नता ज्यादा जरूरी है।

5. श्रम-शक्ति की पूर्ति :

कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक है। कृषि पर जनसंख्या का दबाव अधिक होने से कृषि उत्पादन भी विपरीत रूप से प्रभावित होता है। इसलिए जनसंख्या के कुछ हिस्से को हटाकर औद्योगिक क्षेत्र में लगाया जा सकता है, इससे औद्योगिक क्षेत्र का भी तेजी से विकास होगा। अधिक विकसित कृषि में श्रम की आवश्यकता कम होती है।

6. विदेशी मुद्रा की प्राप्ति :

कृषि प्रधान देशों में औद्योगिक वस्तुएं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता नहीं कर पाती है, क्योंकि औद्योगिक वस्तुएं घटिया किस्म की होती है। अतः कृषि वस्तुएं ही ऐसी है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता का सामना कर सकती है तथा विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकती है।

कृषि उत्पादकता का योगदान :

कृषि उत्पादकता से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष में प्रति हेक्टेयर उत्पादन से है। कृषि उत्पादकता में मिट्टी, जलवायु, कृषि तकनीक, पूंजी एवं उर्वरकों का विशेष महत्व होता है। कुछ क्षेत्रों में अधिक उर्वरकों के प्रयोग से भी अनूकूल उत्पादन नहीं प्राप्त हो पाता है।

कृषि सभी उद्योगों की जननी, मानव जीवन की पोषक, प्रगति की सूचक तथा सम्पन्नता का प्रतीक मानी जाती है। यह एक प्रधान व्यवसाय होने के कारण राष्ट्रीय आय का स्रोत तथा रोजगार एवं जीवनयापन का प्रमुख साधन है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। कृषि का महत्व होने पर भी इसमें पिछड़ापन देखने को मिलता है। यद्यपि नियोजन काल के फलस्वरूप दीर्घकालीन गतिहीनता की स्थिति समाप्त हुई है, कई फसलों की उपज बढ़ाने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। खाद्यान्नों के क्षेत्र में लगभग आत्मनिर्भरता की स्थिति है। भारतीय कृषि में कई खाद्यान्नों का उत्पादन करने में विश्व में प्रमुख स्थान है परन्तु इसमें अभी भी निम्न उत्पादकता पायी जाती है। इसके कारणों को हम वर्गीकृत कर सकते हैं। जैसे– सामान्य कारण, संस्थागत कारण, तकनीकि कारण कृषि उत्पादन को बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा कई प्रयास किये गये हैं।

कृषि उत्पादन व उत्पादकता की प्रवृत्तियां –

कृषि उत्पादन के मुख्य रूप से दो हिस्से है– खाद्यान्न तथा अखाद्यान्न भारत में कुल कृषि उत्पादन में खाद्यान्नों का हिस्सा दो तिहाई से थोड़ा कम है। यह इस बात से स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन के सूचकांकों में खाद्यान्नों व अखाद्यान्नों को क्रमशः 62.9 तथा 37.1 भार दिया गया है। खाद्यान्नों में सबसे महत्वपूर्ण चावल है। दूसरा स्थान गेहूँ का है जिसका भार 14.5 है। अखाद्यान्नों में सबसे अधिक महत्व खाद्य तेलों का है जिनका भार 12.6 है। गन्ने का भार 8.1 तथा रूई का 4.4 है।

कृषि उत्पादन व उत्पादकता की प्रवृत्तिया सारणी में दी गई हैं। पहले सारणी पर विचार करें। जहॉ तक खाद्यान्न उत्पादन का सम्बन्ध है, कुल उत्पादन 1950–51 में 508 लाख टन था जो आठवीं योजना में बढ़कर 1890 लाख टन तथा नौवीं योजना में 2029 लाख टन हो गया। दसवीं योजना के प्रथम वर्ष 2002–03 में सूखे की स्थिति के कारण, खाद्यान्न उत्पादन कम होकर 1748 लाख टन रह गया परन्तु 2003–04 में बढ़कर यह 2132 लाख टन हो गया। दसवीं योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन 2022 लाख टन रहा जो नौवीं योजना के वार्षिक औसत उत्पादन से भी कम था। परन्तु दसवीं योजना के अन्तिम वर्ष 2006–07 में खाद्यान्नों का उत्पादन 2173 लाख टन के उच्च स्तर तक पहुँच गया। 2008–09 में यह और बढ़कर 2344 लाख टन तक जा पहुँचा। 2009–10 में खाद्यान्नों का उत्पादन 2182 लाख टन रह गया।

अध्ययन का उद्देश्य :

किसी भी अध्ययन में अध्ययन का उद्देश्य सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है इन्हीं उद्देश्यो के माध्यम से शोधकर्ता विषय का विश्लेषण करता है। अध्ययन विषय के अंतर्गत उद्देश्य केन्द्र बिन्दु होता है। विषय को प्रतिपादित करने के लिये निम्न विशिष्ट उद्देश्य रखे गये।

1. छिंदवाड़ा जिले में कृषि उत्पादकता की प्रवृत्तियो का अध्ययन करना।
2. फसल प्रतिरूप एवं परिवर्तन का अध्ययन करना।
3. छिंदवाड़ा जिले में कृषि उत्पादन/उत्पादकता पर तकनीकी योगदान का अध्ययन।

4. सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि उत्पादकता के प्रभाव का अध्ययन करना।
5. कृषि क्षेत्र में होने वाली तकनीकी परिवर्तन के प्रभावों का मूल्यांकन करना।
6. विभिन्न फसलो की उत्पादकता पर पडने वाले प्रभावों का मूल्याकंन करना।
7. फसलों के व्यक्तिगत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष का अध्ययन करना।
8. रासायनिक खाद्य, उच्च किस्म के बीज, ऋणो के उपयोग, कृषि उत्पादन में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन करना।

उपकल्पना :

किसी भी शोध अध्ययन में उपकल्पना एक महत्वपूर्ण इकाई है। उपकल्पना के माध्यम से शोधकर्त्ता अध्ययन की सार्थकता की जाँच करता है। शोधकर्ता ने शून्य परिकल्पना को निर्मित किया है जो निम्नलिखित है :–

1. छिंदवाड़ा जिले में सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि उत्पादकता का स्तर बहुत निम्न है।
2. छिंदवाड़ा कृषि तकनीकी अनुप्रयोग कृषि उत्पादकता पर प्रभाव नहीं डाला जिसके फलस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक विकास की दिशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।
3. सामाजिक एवं आर्थिक विकास के पश्चात् कृषक के सामाजिक एवं आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया।
4. छिंदवाड़ा जिले के कृषको के सामाजिक एवं आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति काफी निम्न है, क्योंकि मजदूरी दर कम होने के कारण इनकी स्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं पाया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र :

चूँकि शोधार्थी का अध्ययन क्षेत्र छिंदवाड़ा जिला को लिया गया है। छिंदवाड़ा जिला का क्षेत्रफल 11,815 वर्ग कि.मी है। जनगणना 2011 के अनुसार छिंदवाड़ा जिले की जनसंख्या 20,90,922 है, जिसमें पुरूष 10,64,468 एवं महिला 10,26,454 शेष एवं अन्य वृद्ध एवं बच्चे सम्मिलित है। छिंदवाड़ा जिले का जनसंख्या वृद्धि 13.07% है, जिले का लिंग अनुपात 1000 पुरूष पर 964 महिला है तथा साक्षरता दर 71.16% है जिसमें पुरूष साक्षरता 79.04% एवं महिला साक्षरता 63.01% है। छिंदवाड़ा जिले का जनसंख्या घनत्व 177 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। प्रस्तावित शोध प्रबंध के अध्ययन में मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले को अध्ययन की इकाई मानते हुए कृषि उत्पादकता के क्षेत्र का विश्लेषण किया गया है तथा शोधकर्ता का प्रयास है कि छिंदवाड़ा के संदर्भ में विकासखण्डों (अमरवाड़ा, हर्रई एवं तामिया) को शामिल किया गया है।

शोध प्रविधि :–

सामाजिक शोध की जटिल प्रक्रिया में शोध के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा शोध को सही दिशा देने हेतु एक व्यवस्थित अध्ययन पद्धति को चुना जाता है। शोध के उद्देश्य के आधार पर अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों को स्पष्टता से जानने के लिए पहले से ही एक रूपरेखा बना ली जाती है। शोध की विभिन्न अध्ययन पद्धतियों मे विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक, अनुभवमूलक, सर्वेक्षणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियां प्रमुख हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अध्ययन में अपनायी गयी प्रविधि है कि कृषि व्यवसाय में कृषि यंत्रीकरण से संबधित पत्र–पत्रिकाए, शोध–पत्रों, बुलेटिन, आदि का अध्ययन किया जाएगा। इस कार्यक्रम प्रभावों के मूल्यांकन हेतु

हितग्राहियों का चयन कर गांव के लघु, सीमांत कृषकों, भूमिहीन कृषकों से सम्पर्क किया जाएगा।

इस शोध कार्य के व्यक्तिगत साक्षात्कार पद्धति से प्राप्त सूचनाओं तथ्यों, जानकारियां समंको के द्वारा विश्लेषण करने के बाद निष्कर्ष प्राप्त किए जाएगें। तत्पश्चात् तथ्य समंकलन मास्टर चार्ट निर्माण, बिन्दुरेखीय प्रदर्शन, सारणीयन, चित्रों के द्वारा तथ्यों का विश्लेषण एवं सामान्यीकरण किया जावेगा। प्रस्तुत अध्ययन को व्यवस्थित ढंग से पूर्ण करने के लिए अनुसंधान की दोनों ही प्रविधियां प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष का प्रयोग किया जायेगा। इसी तरह से प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको का प्रयोग भी किया जायेगा। साथ ही प्रकाशित एवं अप्रकाशित स्रोत एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण प्रश्नावली और अनुसूचियों का भी उपयोग किया जायेगा।

शोध का औचित्य :-

किसी शोध कार्य की शुरुआत किसी उद्देश्य को लेकर होती है। यह उद्देश्य अपना एक विशेष महत्व रखता है। किसी भी शोध प्रबंध कार्य को आरम्भ करने से पहले यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है कि वर्तमान शोध क्यों किया जा रहा है ? शोध की समस्याएँ क्या हैं ? इन समस्याओं का अध्ययन कर सही सुझाव एवं परामर्श देकर, संभावित परिणाम एवं निष्कर्ष तक पहुॅचना ही शोध का औचित्य है। किसी भी शोध कार्य को तभी सकल माना जाता है जब उसका वास्तविक निष्कर्ष निकले एवं सही परिणाम सामने आये तथा परिणाम सार्थक हों। इस अध्ययन के माध्यम से यह जाने का प्रयास किया जायेगा कि फसल उत्पादकता के प्रति आज भी म.प्र. के अन्य जिलों की अपेक्षा छिंदवाड़ा जिले में जागरूकता की कमी के कारण सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि उत्पादकता निम्न स्तर की है जबकि छिंदवाड़ा जिला संसाधनों से परिपूर्ण है तथा कृषि क्षेत्र में रोजगार के संभावनाओं का भी अध्ययन किया जायेगा।

सारणी क्र. 1

छिंदवाड़ा जिले में फसल प्रतिरूप में परिवर्तन की प्रवृत्ति

क्र.	फसलें	2014 – 15	2015 – 16	2016 – 17	2017 – 18	2018 – 19	2019 – 20	2020 – 21	2021 – 22	2022 – 23	2023 – 24	2024 – 25
1	धान	678	–	1204	1435	3794	1542	1916	1826	–	1916	1942
2	गेहूँ	1114	–	1650	1622	1894	1894	1919	1914	–	1916	1774
3	ज्वार	850	–	1100	1016	1075	1030	958	1152	–	958	1131
4	मक्का	805	–	1500	1450	900	1454	891	955	–	891	1653
5	चना	975	–	1225	755	1003	985	718	845	–	718	967
6	अरहर	543	–	840	860	1060	794	794	238	–	238	556
7	मूँगफली	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
8	अलसी	254	–	695	356	534	591	591	448	–	448	601
9	तिल	238	–	475	480	428	665	665	578	–	578	612
10	सोयाबीन	533	–	1233	470	1230	1160	1160	1247	–	1247	1260
11	राई एवं सरसों	309	–	695	520	501	707	707	342	–	382	716

स्त्रोत :- जिला सांख्यिकी पुस्तिका छिंदवाड़ा वर्ष 2014–15 से 2024–25 तक

उपरोक्त तालिका का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र छिंदवाड़ा जिले में खाद्यान्न फसलों के प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन में वर्षवार परिवर्तन परिलक्षित होता है। छिंदवाड़ा जिले का भौगोलिक

अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि छिंदवाड़ा जिले की मिट्टी, जलवायु, वर्षा, प्राकृतिक वातावरण एवं सिंचाई के साधन उपर्युक्त फसलों के लिए अनुकूल हैं। तालिका में वर्णित फसलों में धान, गेहूं, ज्वार, मक्का, चना, अरहर, मूंगफली अलसी तिल सोयाबीन, राई एवं सरसों का प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन वर्ष 2014–15 से 2024–25 तक के उत्पादित फसलों को देखकर पता चलता है कि फसलों के उत्पादन में कमी आयी है और उत्पादकता कृषि यंत्रों के उपयोग के बावजूद भी बहुत ही धीमी गति से वृद्धि हुई।

सारणी क्र. 2

कृषि उत्पादकता से किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

क्र.	विकासखण्ड	आय में वृद्धि		जीवनस्तर में सुधार		रोजगार के अवसर में वृद्धि	
		पूर्व वर्षों की तुलना में 2015–16	2015–16 की तुलना में 2024–25	पूर्व वर्षों की तुलना में 2015–16	2015–16 की तुलना में 2024–25	पूर्व वर्षों की तुलना में 2015–16	2015–16 की तुलना में 2024–25
1	रीवा	12	17	16	22	16	20
2	नागौद	12	18	15	20	14	18
3	अमरपाटन	11	17	16	21	13	17
4	मझगवां	9	16	13	17	13	17
	योग	44	68	60	80	56	72
	औसत	11%	17%	15%	20%	14%	18%

(नोट : उपरोक्त आंकड़े प्रतिशत में है)

स्त्रोत : स्वयं के सर्वेक्षण द्वारा।

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि छिंदवाड़ा जिले की चयनित तहसीलों में सर्वेक्षित कृषक उत्तरदाताओं से प्राप्त समंकों के आधार पर पूर्व वर्षों की तुलना में 2015–16 की स्थिति में 11 प्रतिशत की आय में वृद्धि हुई है तथा 2015–16 की तुलना में 2024–25 में 17 प्रतिशत की आय में वृद्धि हुई। तथा पूर्व वर्षों की तुलना में 2015–16 की स्थिति में 15 प्रतिशत की जीवन स्तर में सुधार हुआ है जबकि 2015–16 की तुलना में 2024–25 में 20 प्रतिशत की जीवन स्तर में सुधार आया है और पूर्व वर्षों की तुलना में 2015–16 की स्थिति में 14 प्रतिशत की रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है एवं 2015–16 की तुलना में 2024–25 में 18 प्रतिशत मात्र की रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई।

उपसंहार :–

मानव सभ्यता के विकास में प्रारम्भ से ही कृषि लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन रही है। आज भी कृषि विश्व की अधिकांश जनसंख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्त्रोत है। विकासशील देशो में प्रधान व्यवसाय होने के कारण कृषि राष्ट्रीय आय का सबसे बड़ा स्त्रोत है, रोजगार एवं जीवन–यापन का प्रमुख साधन, औद्योगिक विकास, वाणिज्य एवं विदेशी व्यापार का आधार है। कृषि इन देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़

तथा विकास की कुंजी है। कृषि विकास के सोपान पर चढ़कर ही विश्व के विकसित राष्ट्र आज सामाजिक एवं आर्थिक विकास के शिखर पर पहुँच सके है। इग्लैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान आदि देशों के विकास में कृषि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा अन्य औद्योगिक कदम के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान किया यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक के विचारकों ने कृषि विकास पर पर्याप्त बल दिया है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ एवं विकास की कुंजी है। मानव सभ्यता के विकास के प्रारम्भ से ही कृषि लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन रहा है। पिछले दो दशकों से अधिक अवधि में औद्योगिकरण के संगठित प्रयास के बावजूद कृषि का गौरवपूर्ण स्थान बना हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों की आजीविका का साधन रहा है। आज कृषि विश्व की अधिकांश जनसंख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्त्रोत है।

प्राचीन काल से कृषि विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। आदिकाल से ही विकासशील देशों की जलवायु मानसूनी होने के कारण कृषि का क्षेत्र काफी पिछड़ा था। इसका मुख्य कारण धरातलीय विषमता, मानसूनी जलवायु निर्भरता, अविकसित तकनीक तथा आधुनिक कृषि यंत्रों व उपकरणों की कमी, खेती का आकार छोटा, पड़त भूमि, सिंचाई की कमी, कृषक तथा खेतिहर कृषक, पूँजी की कमी, प्रदेश में कृषि उपयोगी भूमि अपेक्षाकृत कम होने के कारण फसली के उत्पादन को प्रभावित करती रही है।

विश्व के अधिकांश राष्ट्र जो आज औद्योगिक राष्ट्र की श्रेणी में आते है। सामाजिक एवं आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरण में कृषि प्रधान ही थे जो कालान्तर में उद्योग प्रधान हो गये। लेकिन भारत जैसे विकासशील राष्ट्र की अर्थव्यवस्था आज मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाते हुए भी पूर्ण रूप से कृषि प्रधान ही है। कृषि उत्पादन अच्छा होने पर भारतीय अर्थव्यवस्था पुष्यित एवं पल्लवित खेती है। इसके विपरीत कृषि उत्पादन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के फलस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचा चरमरा जाता है। जिस देश में कृषि अर्थव्यवस्था पर इतना प्रभाव रखती है एवं अर्न्तसंरचनात्मक ढाँचे का निर्माण करती हैं वहाँ पर कृषि गाँव से जुड़े हुए लोग, लघु कृषको, कृषि श्रमिकों, लघु एवं कुटीर उद्यमियों तथा ग्रामीण शिल्पकार ही भारत के सच्चे प्रतिनिधी है, कि दशा अत्यंत सोचनीय व दुर्भाग्यपूर्ण है। इसका महत्वपूर्ण कारण नवीन उन्नत उपकरणों की कमी है।

सुझाव :–

छोटे कृषको को भी आधुनिकीकरण के क्षेत्र में लाया जाना चाहिए इसके लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत है :–

- भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से लागू किया जाना चाहिए।
- छोटे कृषको को विभिन्न कृषि क्रय करने के लिए साख सुविधाएँ दी जानी चाहिए।
- उनकी कृषि यंत्र किराए पर मिलने की सुविधा होनी चाहिए।
- छोटे कृषको को सहकारी कृषि समितियों में गठित हो जाने के लिए बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- कृषको को परम्परागत खेती की अपेक्षा आधुनिक खेती या वैज्ञानिक खेती का प्रयोग करना चाहिए ताकि एक वर्ष में दो या तीन फरालो का उत्पादन किया जा सकें।
- गहन कृषि व बहुफसलीय कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- भूवारण एवं पौधे की रक्षा की जानी चाहिए।
- फसल बीमा योजना का विस्तार करना चाहिए।

- सहकारी खेती को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- कृषि के लिए आधुनिक यंत्र (हार्वेस्टर, थ्रेशर, पम्परोटो, हैक्टर, ट्यूबवेल आदि) का उपयोग करना चाहिए।
- सूखा, बाढ़ नियंत्रण हेतु अनुदान का वितरण।
- छोटे कृषको का साधनों का क्रय करने के लिए सहकारी बैंक के माध्यम से छोटे कृषको को ऋण प्रदान करना।
- कृषि उत्पादकता में सुधार हेतु कृषि विशेषज्ञो से सलाह लेना।
- कृषि विशेषज्ञो की सहायता से उत्पादकता फसलो के उत्पादन हेतु कृषि विशेषज्ञो से परार्मश करना।
- ग्रामीण क्षेत्र में परिवहन की ग्रामीण क्षेत्र में परिवहन यातायात का अभाव पाया जाता है। जिसके उपरांत अनाज एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में कठिनाई उत्पन्न होती है।
- कृषको को अपने गांवो तक ही सीमित रहना पड़ता है इसलिए परिवहन की व्यवस्था होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

- अग्रवाल एन.एल. (1996) ''भारतीय कृषि अर्थतंत्र'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- अग्रवाल एन.एल. (1998) ''भारतीय कृषि का अर्थतंत्र'' राजस्थान (हिन्दी ग्रन्थ अकादमी) जयपुर।
- डॉ0 अग्रवाल डी0पी0 ''बुन्देलखण्ड क्षेत्र के कृषि पदार्थ विपणन का विवेचनात्मक'' अनमोल पब्लिकेशन, दिल्ली।
- अरोरा कृष्ण (1973) ''उर्वरक'' (संचलन नियंत्रण) आदेश प्रोफेशनल बुल पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- अरोरा कृष्ण (1985) '' उर्वरक'' (नियंण) आदेश प्रोफेशनल बुल पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
- अरोरा वी.पी.एस. (1986) ''कृषि विपणन एवं कीमत विश्लेषण'' पुस्तक महल, ग्वालियर।
- डॉ0 बंजल विष्णुमोहन एवं डॉ0 शर्मा दिनेश (1991) ''विपणन प्रबंध'' किताब महल, इलाहाबाद।
- भरत झुनझुनवाला (2000) ''भारतीय अर्थव्यवस्था'' राजकमल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
- जैन, एस.सी., (2018) ग्रामीण एवं कृषि विपणन, कैलास पुस्तक सदन, भोपाल।
- गंगराड़े, डॉ. साधना (2018), खेती के उन्नत तरीके, रबी फसलें, कृषक जगत पब्लिशर्स, भोपाल।
- श्रीवास्तव, संजय (2011), खेती के उन्नत तरीके, खरीफ फसलें, कृषक जगत पब्लिशर्स, भोपाल।

घ मिश्रा, डॉ. जय प्रकाश (2014), कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 179-186

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव

(छिंदवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. शीलचन्द्र गुप्ता

प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) चंद्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय सीहोर (म0प्र0)

शक्ति सिंगारे

शोधार्थी (अर्थशास्त्र) आर.पी.ई.जी. बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.)

सारांश :-

भारत सरकार द्वारा ''महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 पारित किया गया है। जम्मू एवं कश्मीर राज्य के अतिरिक्त यह संपूर्ण भारत में लागू है। यह अधिनियम भारत सरकार द्वारा निर्धारित किए गए दिनांक से लागू होगा। विभिन्न राज्यों अथवा राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अधिनियम के लागू होने के दिनांक भिन्न हो सकते हैं। यह भी उपबंधित है कि अधिनियम वर्तमान में अधिसूचित जिलों तक ही सीमित रहेगा। इसे संपूर्ण क्षेत्र में अधिनियमित दिनांक से पॉच वर्ष की अवधि में लागू किया जाएगा। प्रारंभ में अधिनियम के प्रावधानों को दो फरवरी, 2006 से विभिन्न राज्यों के 200 जिलो में लागू किया गया है।

मुख्य शब्द :- मनरेगा, ग्रामीण विकास, रोजगार योजनाएँ।

प्रस्तावना :-

भारत सरकार द्वारा अब तक बहुत सारी जन कल्याणकारी योजनाओं को लागू किया गया और उनका क्रियान्वयन भी हो रहा है, लेकिन महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम एक ऐसी योजना है, जिसके आने से गरीब लोगों या गांव के लोगो में काम का अधिकार, आत्म सम्मान और स्वावलम्बन की भावना का विकास हुआ। इसके अलावा इस योजना से गांवों के विकास और सौन्दर्यीकरण का अच्छा अवसर मिला है। ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम'' (मनरेगा) भारत सरकार की अब तक की सबसे बड़ी रोजगारपरक महत्वाकांक्षी योजना है। जिसमें सम्पूर्ण भारत के गांवों की तस्वीर बदल देने की क्षमता विद्यमान है। आजादी के बाद से ही सरकार के समक्ष ग्रामीण क्षेत्रो का एकीकृत विकास एक महत्वपूर्ण चुनौती रहा है और इसलिए तदनुरूप ग्रामीण विकास योजनायें भी बनती रही है। अभी तक दस पंचवर्षीय योजनायें पूर्ण हो गयी है। और वर्तमान में बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) अस्तित्व में है, जिसमे ग्रामीण विकास की व्यापक रूपरेखा खीचीं गयी है।

नब्बे के दशक में प्रारम्भ उदारीकरण के दौर ने ग्रामीण विकास के समक्ष नई चुनौतियों प्रस्तुत की है। भारत के समग्र विकास मे क्षेत्रीय असन्तुलन भी एक बडा रोग बना है। केन्द्र सरकार के राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम एवं देश के समग्र विकास में गांवों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए इनके प्रति अपनी वचनबद्वता व्यक्त की गयी है। और अपने अग्रभागी कार्यक्रमों में – शिक्षा तथा स्वास्थ्य के दो कार्यक्रमों के साथ शेष चार कार्यक्रमों में राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी अधिनियम, जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण योजना, राजीव गांधी पेयजल मिशन और पूर्ण स्वच्छता अभियान शामिल है। गांव के विकास की मुख्य उपादेयता ग्रामीण विकास मंत्रालय के पास है। जो ग्रामीण भारत की तस्वीर के गरीबी और भूख से मुक्त कराने हेतु प्रयासरत है।

इसलिए हाल के वर्षो में ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक तथा आधार युक्त संरचना के सृजन हेतु कई महत्वपूर्ण पहलकदमियॉ भी की गयी है जिससे शहरी और ग्रामीण के बीच अन्तर मिट सके। इसी दिशा में ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम'' (मनरेगा) जैसी महत्वाकांक्षी परियोजना शुरू की गयी है। मनरेगा को आरम्भ मे देश भर के 200 जिलो में 2 फरवरी 2006 को लागू किया गया और अप्रैल 2008 से देश के सभी 614 जिलो मे यह योजना लागू हो गयी। इस योजना के मद मे केन्द्र और राज्य सरकारों को योगदान क्रमशः 90 प्रतिशत व 10 प्रतिशत है। इस योजना में सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना और काम के बदले अनाज योजना को समाहित कर लिया है। 2012–11 के बजट मे मनरेगा के लिए 40000 करोड़ रूपये आवंटित किये गये है, जो पिछले बजट 2009–10 की तुलना में 144 प्रतिशत अधिक है। एक लम्बे जनसंघर्ष के बाद इस विधेयक का संसद में पारित होना जन मत की एक बड़ी जीत दर्शाता है, क्योंकि काम का अधिकार भारतीय संविधान के अनु0 21 में दिये गये ''गरिमा'' के साथ जीने के अधिकार की पूर्व शर्ते है। संविधान के अनु0 45 में देश के प्रत्येक नागरिक को काम अधिकार की बात की गयी है, जो यह साबित करती है कि यह हमारा मौलिक अधिकार है।

यह सशक्त लोकतन्त्र के लिए बुनियादी बाते है, कि हर हाथ मे काम दो वरना काम का दाम दो। आज वैश्वीकरण एवं निजीकरण के दौर में मजदूर–हित और इनकी गरिमा समाप्त होती जा रही थी। इस प्रकार मनरेगा सामाजिक न्याय की एक ऐसी अवधारणा है जिसके माध्यम से गरीबी मिटाने, भोजन करने का अधिकार देने, शिक्षा का अधिकार देने जैसी योजनाओं का सन्तुलन बनाने में मदद मिल रही है। सरकार 2014 तक गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य रखकर मनरेगा से भी आगे की राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन योजना लाने की तैयारी में है।

ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम एक अभिनव प्रयोग है जो कि जमीनी स्तर पर गरीब लोगों की मदद कर रहा है यह योजना इतनी कारगर हो रही है जिसके प्रमाण के रूप में अब रोजगार के दिनों की संख्या को 100 दिन से बढ़ाकर 200 दिन करने की मांग की जा रही है। 100 दिन के न्यूनतम रोजगार की गारंटी और इसमें भ्रष्टाचार का न होना पिछली सरकार की कामयाबी ही कही जा सकती है। सरकार की इस योजना से गांव के बेरोजगार को सीधे लाभ पहुॅचा कर इस योजना की कामयाबी साबित हो चुकी है।

इन्डियन–डेवलपमेन्ट फाउन्डेशन की स्टडी से पता चला है कि जिन जिलो में रोजगार गारंटी योजना लागू की गयी है, वहां खाने के समान की महंगाई उन जिलों से अधिक थी जहां योजना लागू नही की गयी थी। इससे साबित होता है कि इस योजना ने ग्रामीणों की खर्च करने की ताकत दी है। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्यों से दिल्ली और मुम्बई जाने वालों मजदूरों की संख्या में निरन्तर कमी इस योजना के कारगर होने के परिणाम है। पिछले तीन सालों में 4.47 करोड़ परिवारों को रोजगार मिला है।

सरकार की महत्वाकांक्षी योजना 'मनरेगा' भारतीय डाकघर के पुराने गौरव को लौटने में मदद कर रही है। इस योजना के तहत कारोबारी साल 2008–2009 में डाकघरों में 3.12 करोड़ नये बचत खाते खोले गये।

जिला तथा खण्ड स्तर पर देश भर में 63 हजार कर्मियों को भी मनरेगा में रोजगार मिला है। देश की जनसंख्या के 40.22 करोड़ व्यक्ति मजदूर वर्ग से सम्बन्धित है, जो प्रमुखतः असंठित क्षेत्र में कार्यरत है इस वर्ग को 'मनरेगा' ने ही सहारा दिया है।

शोध का उद्देश्य –

प्रस्तुत शोध पत्र ''महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का प्रभाव एवं मूल्यांकन'' पर आधारित है। इस योजना को भारत सरकार द्वारा 2005, माह–सितम्बर में पारित किया गया था। तब से लगातार इस योजना के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है। इस योजना को लागू करने का मुख्य उद्देश्य सरकार द्वारा संबंधित ग्रामीण क्षेत्र का विकास करना है। अतः शोधपत्र की रचना करते समय मेरे मस्तिष्क में इसके मूल्यांकन का विचार आया। इसकी आर्थिक पृष्ठभूमि को देखते हुए शोध हेतु ''छिंदवाड़ा जिले में ''महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का प्रभाव एवं मूल्यांकन'' 2012–17 तक का आर्थिक अध्ययन करना ही इस लघु प्रबंध का मुख्य उद्देश्य है।

शोध पत्र की रचना निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गई है।

- रोजगार गारंटी योजना के लागू होने से ग्रामीणों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
- मनरेगा के माध्यम से रोजगार प्राप्त परिवारों के जीवन स्तर में सुधार का अध्ययन करना।
- मनरेगा के लागू होने के बाद ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत आपूर्ति, शांति सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का अध्ययन करना।

उपकल्पना :

1. रोजगार गारंटी योजना के लागू होने से ग्रामीण क्षेत्रों के लोगो के सामान्य जीवन–स्तर एवं आय में सुधार हो रहा है।
2. रोजगार गारंटी योजना के लागू होने से कई लोगो में सामाजिक तथा आर्थिक बदलाव हो रहा है।
3. मनरेगा के कारण ग्रामीणो के पलायक मे कमी आयी है। तथा स्थानीय महौल मे काम मिल रहा है।
4. मनरेगा के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र के निवास करने वाले प्रत्येक परिवार के वयस्क सदस्य को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध हो रहा है।
5. मनरेगा ने गरीबो का जीवन स्तर बदल दिया है। अब वह साफ–सुथरे वातावरण में रह रहे है।

अध्ययन का क्षेत्र एवं शोध प्रारूप –

छिंदवाड़ा भारत के मध्य प्रदेश प्रान्त में स्थित एक प्रमुख शहर है। छिंदवाड़ा नगर, दक्षिण–मध्य मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत, कुलबेहरा की धारा बोदरी के तट पर स्थित है। यह 671 मीटर की ऊँचाई पर सतपुड़ा के खुले पठार पर स्थित है और उपजाऊ कृषि भूमि से घिरा है, जिसमें बीच–बीच में आम के बाग हैं और इसके पश्चिमोत्तर में कम ऊँचाई वाले ऊबड़ खाबड़ पहाड़ तथा दक्षिण में नागपुर के मैदानों की ओर ढलान है। पठार के दक्षिणी और पूर्वी हिस्से में चौराई गेहुं के उपजाऊ मैदान हैं। नागपुर का मैदान कपास और ज्वार की खेती

का समृद्ध इलाका है और इस समूचे क्षेत्र का सबसे संपन्न और सर्वाधिक आबादी वाला हिस्सा है। वैनगंगा, पेंच और कन्हन नदियाँ इस क्षेत्र को अप्रवाहित करती हैं। यहाँ की मिट्टी बजरीयुक्त और जल्दी सूखने वाली है। अपेक्षाकृत कम बारिश के बावजूद यहाँ का मौसम विशेष रूप से स्वास्थ्यवर्द्धधक और खुशनुमा है। यहाँ की जनसंख्या 20.91 लाख है।

चूँकि शोधार्थी का अध्ययन क्षेत्र छिंदवाड़ा जिला को लिया गया है। छिंदवाड़ा जिला का क्षेत्रफल 11,815 वर्ग कि.मी है। जनगणना 2011 के अनुसार छिंदवाड़ा जिले की जनसंख्या 20,90,922 है, जिसमें पुरूष 10,64,468 एवं महिला 10,26,454 शेष एवं अन्य वृद्ध एवं बच्चे सम्मिलित है। छिंदवाड़ा जिले का जनसंख्या वृद्धि 13.07% है, जिले का लिंग अनुपात 1000 पुरूष पर 964 महिला है तथा साक्षरता दर 71.16% है जिसमें पुरूष साक्षरता 79.04% एवं महिला साक्षरता 63.01% है। छिंदवाड़ा जिले का जनसंख्या घनत्व 177 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व :

प्रस्तावित शोध अध्ययन के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि ''मनरेगा'' जो कि एक महत्वूपर्ण अधिनियम एवं ग्रामीण पुननिर्माण कार्यक्रम है उसे और उसे और कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है जिससे वह निर्धारित उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल हो सके। प्रस्तुत अध्ययन शोध क्षेत्र में इस बात की योगदान करेगा कि यह राष्ट्रीय कार्यक्रम किस प्रकार से प्रभावी बनाया जा सकता है।

शोध प्रविधि :

प्रस्तावित शोध अध्ययन के व्यवस्थित पूर्ण करने हेतु समकालिक, मौलिक स्त्रोतो, स्थल सर्वेक्षणों और सहायक ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए शोध को दोनों (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष) ही पद्धतियों का सहयोग लिया जायेगा। इसके साथ ही व्यक्तिगत निरीक्षण प्रश्नावली साक्षात्कार एवं अनुसूचियों का भी प्रयोग किया जायेगा।

समंको का संकलन एवं प्रयुक्त विधियॉ :

समंक किसी भी अध्ययन के निकाले गये निष्कर्षो के लिये आधार प्रदान करता है। समंको के मुख्यतः दो स्त्रोत है। पहला प्राथमिक स्त्रोत और दूसरा द्वितीयक स्त्रोत है। प्राथमिक स्त्रोत के अंतर्गत मुख्यतः निरीक्षण या अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची व प्रश्नावली के माध्यम से सूचनाएँ एकत्र की गयी है। अपने शोध प्रबंध में प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य सामग्री का प्रयोग किया है, जो कि पत्र–पत्रिकाओं, वार्षिक प्रतिवेदन अखबारों, शेाध रिपोर्ट आदि से एकत्र किया जाएगा।

प्रस्तुत शोध पत्र रोजगार गारंटी योजना (छिंदवाड़ा) की आर्थिक स्थिति एवं आय–व्यय पर आधारित है। अतः तथ्यात्मक विश्लेषण के लिये इस अध्ययन में द्वितीयक समंको का प्रयोग किया जाएगा। समंको का मुख्य स्त्रोंत जिला पंचायत द्वारा प्रकाशित वार्षिक प्रतिवेदन के आय–व्यय पत्रक 2016–2026 तक के ऑकड़े, जिला पंचायत कार्यालय, एवं अन्य सूचनात्मक पत्रिकाएँ है। ये वार्षिक विवरण तथा अन्य प्रकाशित सामग्री जिला पंचायत छिंदवाड़ा के कार्यालयों से व्यक्तिगत सम्पर्क करके एकत्रित की जाएगी।

तथ्यों के विश्लेषण द्वारा आवश्यक निष्कर्ष प्राप्त किये जायेंगे एवं निष्कर्षो के आधार पर आवश्यक सुझाव भी प्रस्तुत किये जायेगें।

तालिका नं0 1

आयु के आधार पर वर्गीकरण

क्र0सं0	आयु	संख्या	प्रतिशत
1.	20 से 30	20	40
2.	30 से 40	25	50
3.	40 से अधिक	5	10
योग		50	100

उपरोक्त तालिका में तालिका के अनुसार सर्वाधिक 50 प्रतिशत 30 से 40 वर्ष आयु वर्ग के उत्तरदाता है तथा न्यूनतम 10 प्रतिशत 40 से अधिक आयु वर्ग के हैं। 40 प्रतिशत उत्तरदाता 20 से 30 आयु वर्ग के हैं। अतः स्पष्ट है कि 30 से 40 आयु वर्ग के उत्तरदाता होनें का प्रमुख कारण पारिवारिक जिम्मेदारियों का होना, इसके आधार पर कहा जा सकता है ज्यादातर ये उत्तरदाता परिवार के मुख्य सदस्य हैं।

तालिका न0 2

लिंग के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	लिंग	संख्या	प्रतिशत
1	महिला	10	20
2	पुरूष	40	80
योग		50	100

उपर्युक्त तालिका में सर्वाधिक छिंदवाड़ा जिले में कार्य करने वाले पुरूष 85 प्रतिशत है। एवं महिलाएं मात्र 15 प्रतिशत है।

स्पष्ट है कि आज भी महिलाएं कार्य प्राप्त करने में पीछे है।

तालिका न0 3

जाति के आधार पर वर्गीकरण

स.क्र.	जाति	संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	00	00
2.	हरिजन	76	76
3.	आदिवासी	14	14
4.	पिछड़ा	10	10
योग		100	100

उपर्युक्त तालिका में जाति के आधार पर वर्गीकरण दिखाया गया है। जिसमें हरिजन के सबसे अधिक 76 प्रतिशत एवं सबसे कम पिछड़ा जाति 10 प्रतिशत है तथा सामान्य व्यक्तियों का प्रतिशत शून्य है।

छिंदवाड़ा जिले में हरिजन जाति के सर्वाधिक लोग कार्य करते पाये गये हैं।

तालिका न0 4

शिक्षा के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	शिक्षा का स्तर	संख्या	प्रतिशत
1.	प्राथमिक	10	10
2.	माध्यमिक	8	8
3.	हाईस्कूल	2	2
4.	निरक्षर	80	80
योग		100	100

उपर्युक्त तालिका में उत्तरदाताओं की शिक्षा का वर्णन है। जिसमें 10 प्रतिशत प्राथमिक, 8 प्रतिशत माध्यमिक, 2 प्रतिशत हाईस्कूल तथा शेष 80 प्रतिशत अशिक्षित हैं।

उत्तरदाताओं में शिक्षा जागरूकता का अभाव पाया गया है क्योंकि अधिकांश उत्तरदाता निरक्षर हैं। कुछ तो केवल साक्षर मात्र हैं।

तालिका नं0 5

आवास के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	आवास का प्रकार	संख्या	प्रतिशत
1.	कच्चा	70	70
2.	पक्का	00	00
3.	मिश्रित	30	30
योग		100	100

उपर्युक्त तालिका में आवास के प्रकार का वर्गीकरण दिखाया गया है जिसमें कच्चे आवास 70 प्रतिशत, पक्के मकानो का प्रतिशत शून्य है और मिश्रित मकानों का प्रतिशत 30 है। उत्तरदाताओं में मकानों का सबसे ज्यादा प्रतिशत कच्चे मकानों का है क्योंकि सभी उत्तरदाताओं का मुख्य व्यवसाय मजदूरी है और वे इतनी बचत नहीं कर पाते जिससे वे व्यवस्थित मकान बना सके। जिन उत्तरदाताओं के मकान मिश्रित हैं उन्हें इन्दिरा आवास योजना के लाभ के तहत बनें है।

तालिका नं0 – 6

आय के श्रोत के आधार पर

क्र.सं.	आय के श्रोत	संख्या	प्रतिशत
1.	कृषि	20	20
2.	मजदूरी	70	70
3.	दोनों	10	10
4.	अन्य	00	00
योग		100	100

उपर्युक्त तालिका में आवास के श्रोतों का विवरण दिया गया है। जिसमें कृषि 20 प्रतिशत, मजदूरी 70 प्रतिशत, एवं दोनों तहत प्राप्त आय 10 प्रतिशत हैं।

उत्तरदाताओं के मुख्य आय का साधन मजदूरी है क्योंकि इन उत्तरदाताओं के पास जोतों का अभाव है उत्तरदाताओं के पास अधिक से अधिक 2 बीघा जमीन ही है।

निष्कर्ष :-

- छिंदवाड़ा जिले में मनरेगा से संबंधित सर्वाधिक कार्य पुरूषों ने प्राप्त किया।
- छिंदवाड़ा जिले में सर्वाधिक जनजाति के लोगों ने काम प्राप्त किया।
- योजना में कार्यरत उत्तरदाताओं में शिक्षा का अभाव पाया गया।
- छिंदवाड़ा जिले में कार्यरत अधिकांश लोग कच्चे मकानों में निवास करते हैं।
- छिंदवाड़ा जिले में कार्यरत अधिकांश लोगों की आय 1500 से 2000 के बीच है।
- योजना में कोरकू, गोड एवं भारिया जाति के सर्वाधिक लोग कार्यरत है।
- योजना में कार्यरत उत्तरदाता सामान्यतः सामान्य भोजन करते है।
- योजना में सामान्य आर्थिक स्थिति के लोग कार्यरत है।
- छिंदवाड़ा जिले में कार्य करने से आपसी एकता में वृद्वि हुई है।
- छिंदवाड़ा जिले में कार्य मिलने से आर्थिक बोझ कम हुआ है।
- छिंदवाड़ा जिले के क्रियान्वयन से गांव की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ।
- छिंदवाड़ा जिले में कार्यरत 64 प्रतिशत लोगों को 100 दिन का रोजगार प्राप्त हुआ।
- योजना के क्रियान्वयन से पलायन में कमी आयी है।
- छिंदवाड़ा जिले से पारिवारिक ग्रामीण सम्बन्धों में सुधार हुआ है।

सुझाव :

- रोजगार गारण्टी योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए इसमें और अधिक व्यवहारिकता की आवश्यकता है।
- छिंदवाड़ा जिले में समय से मजदूरी के भुगतान की आवश्यकता है।
- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना में महिलाओं को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।
- इस योजना के उचित अंकेक्षण एवं मूल्यांकन को दृष्टिगत रखते हुए ग्रामीण सहभागिता की आवश्यकता है।
- बेरोजगारी भत्ता के समय से भुगतान की आवश्यकता है।
- स्थानीय स्तर में योजना में पारदर्शिता का अभाव है योजना की कार्य प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।
- योजना की भाषा न समझ पाने वाले के लिए मुख्य धाराओं का प्रकाशन सरल एवं स्थानीय भाषा में हो।
- कार्य करने से पहले इस योजना की पर्याप्त जानकारी की आवश्यकता है, पंचायत स्तर पर इसका अभाव है।

- इस योजना में और अधिक सुधार की जरूरत है। इसके कियान्वयन, जॉबकार्ड, प्रविष्टियां इत्यादि स्पष्ट हो।
- छिंदवाड़ा जिले में प्राप्त कार्य दिवसों में वृद्धि की आवश्यकता है।
- ऐसे प्रयास शासकीय स्तर पर किया जाये जिसके अन्तर्गत प्रावधानों की मानीटरींग और मूल्यांकन मतदाताओं द्वारा समय–समय पर किया जाये इस निरंकुशता की प्रवृति से बचा जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. मुखर्जी रवीन्द्रनाथ, 2014 सामाजिक शोध व सांख्यिकीय, विवेक प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. शास्त्री राजाराम, 2012 समाज कार्य, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
3. हरमैन काइनर, दि युनाइटेड नेशन इकानामिक्स एण्ड सोशल काउसिंल, वर्ल्ड पीस फाउडेशन न्यूयार्क, 1961
4. सेन्ट्रल सोशल वेलफेयर बोर्ड रिपोर्ट ऑफ दि एडवाइजरी कमेटी आन आउटर केयर प्रोग्राफ नई दिल्ली, 1955
5. प्लानिंग कमीशन सोशल वेलफेयर इन इण्डिया, गवर्नमेंट पब्लिकेशन, दिल्ली–6–1955
6. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली 2008–2013
7. मनरेगा–वार्षिक प्रतिवेदन 2008–2015, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
8. जिला सांख्यिकी पुस्तिका जिला –छिंदवाड़ा (म.प्र.)

ब. पत्रिकाऍ :

1. आर्थिक जगत, कलकत्ता प्रकाशन कार्यालय।
2. इण्डिया टुडे, दिल्ली।
3. आउट लुक, दिल्ली।
4. दैनिक भास्कर।
5. दैनिक जागरण।
6. कुरूक्षेत्र।
7. हिन्दुस्तान टाईम्स आदि।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 187-195

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय राजनीति में राजनैतिक दलों का स्वरूप

डॉ. अखिलेश कुमार गुप्ता

प्राचार्य, पं. रामसुंदर शुक्ला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान पहड़िया रीवा (म.प्र.)

सुरेखा द्विवेदी

शोधार्थी (राजनीति विज्ञान) शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

सारांश :

भारतीय राजनीति में राजनैतिक दलों का स्वरूप अत्यंत जटिल, विविधतापूर्ण एवं गतिशील है। यह स्वरूप भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, क्षेत्रीय और भाषाई विविधताओं को प्रतिबिंबित करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में बहुदलीय प्रणाली का विकास हुआ, जिसमें राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दोनों प्रकार के दलों ने सक्रिय भूमिका निभाई। प्रारंभ में कांग्रेस का प्रभुत्व रहा, किंतु समय के साथ अन्य दलों जैसे भारतीय जनता पार्टी, समाजवादी दलों, वाम दलों तथा क्षेत्रीय दलों ने भी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। आज भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों, जातीय राजनीति, विचारधारा आधारित राजनीति और चुनावी रणनीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। राजनैतिक दल सरकार गठन में महत्त्वपूर्ण होते हैं, बल्कि जनमत निर्माण, नीति निर्धारण और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के संचालन में भी उनकी केंद्रीय भूमिका होती है। यह अध्ययन भारतीय राजनीति में दलों की भूमिका, संरचना, विकास और उनके प्रभावों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : भारतीय राजनीति, राजनैतिक दल, बहुदलीय प्रणाली, गठबंधन सरकार, क्षेत्रीय दल, विचारधारा, लोकतंत्र, चुनावी रणनीति, जनमत निर्माण, नीति निर्धारण।

परिचय :

आधुनिक युग में अधिकांश लोकतांत्रिक देशों ने 'सरकार के प्रतिनिधि लोकतांत्रिक रूपों' को अपनाया है जिसमें राजनीतिक दल एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और 'मतदाताओं और निर्वाचित लोगों के बीच की कड़ी' के रूप में कार्य करते हैं। अन्य पड़ोसी देशों की तुलना में यह कहा जा सकता है कि भारत में लोकतंत्र सफल रहा है, हालांकि आपातकाल ने लोकतांत्रिक प्रणाली को आघात पहुंचाया, लेकिन यह अस्थायी था, और लोकतांत्रिक प्रणाली बरकरार रही। आजादी के बाद 17 संसदीय और कई और विधानसभा चुनाव सफलतापूर्वक आयोजित किए गए हैं और भारत में राजनीतिक दलों ने इस यात्रा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय राजनीति में राजनैतिक पार्टियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। ये पार्टियां देशवासियों की आवश्यकताओं, चुनौतियों और अनुभूतियों को समझती हैं और उनके हित में नीतियों को तय करने का कार्य करती हैं। "भारत में संवैधानिक ढंग से स्थापित लोकतंत्र में, राजनीतिक पार्टियों को जनता द्वारा चुने गए

प्रतिष्ठान में सांसदों को चुनने का मौका मिलता है और उन्हें सरकार चलाने का अधिकार प्राप्त होता है। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी के अपने दृष्टिकोण और सिद्धांत होते हैं, जो अकेले उस पार्टी को अन्यों से अलग बनाते हैं। ये पार्टियां विधान सभा और राज्य सभा में भी अपने प्रतिष्ठान को बनाए रखने के लिए प्रतिष्ठित होती हैं और अपने प्रतिष्ठान की रक्षा करने के लिए आम जनता के बीच सीधे संवाद और सहयोग का माध्यम बनाती हैं। राजनीतिक पार्टियों की विभिन्नता और पर्वाह करने का एक तरीका है कि ये अलग–अलग क्षेत्रों, जातियों, और समुदायों के हित में नीतियां बनाती हैं। इसके लिए वे चुनावों में भाग लेती हैं और अपने विचारों को लोगों के सामने रखती हैं ताकि जनता उन्हें अपने प्रतिष्ठान में चुन सके। यह सिस्टम एक उत्कृष्ट और प्रभावी लोकतंत्र की बुनियाद बनाता है जो जनता को सकारात्मक रूप से संबोधित करता है और उसे सरकार का हिस्सा बनाए रखता है।

"राजनीतिक दल आधुनिक लोकतांत्रिक सरकार का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, लेकिन उनके कार्य, संगठन और संख्या में पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है। किसी भी देश में पार्टी प्रणाली कई कारकों से आकार लेती है जैसे कि इसकी राजनीतिक प्रणाली, और चाहे वह संघीय हो या संसदीय। भारतीय दल प्रणाली को इसकी विशिष्ट राजनीतिक और सामाजिक विशेषताओं ने भी आकार दिया है। स्वतंत्रता के बाद संघ स्तर पर एक निर्वाचित प्रतिनिधि संसद और भारत के राज्यों में विधान सभाओं की स्थापना इसी तर्ज पर की गई है। एक संसदीय स्वरूप की स्थापना का उद्देश्य एक जवाबदेह सरकार की स्थापना करना था क्योंकि सरकार के इस रूप में, कार्यपालिका का लगातार विपक्ष द्वारा निरीक्षण और नियंत्रण किया जाता है। संसदीय प्रणाली के इतिहास के विश्लेषण के बाद यह देखा जा सकता है कि इसने भारतीय दल प्रणाली को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एकल–दलीय प्रभुत्व के अंत और गठबंधन युग के उदय के साथ, राजनीतिक दलों का विखंडन अधिक तेजी से हुआ, जिससे देश में बहुदलीय व्यवस्था बनी।

भारतीय राजनीति का इतिहास :

भारतीय राजनीति का इतिहास अत्यंत प्राचीन है और इसमें विविधता और परिवर्तन की अद्वितीय छवियां हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले, भारतीय सुप्रधारी का अधीन एक व्यापक साम्राज्य था, जिसमें विभिन्न राजाओं और सामंतों ने अपने–अपने क्षेत्रों में अपनी शासनकारी प्रणालियां स्थापित की थीं। स्वतंत्रता से पहले के समय में महात्मा गांधी के नेतृत्व में, भारतीय राजनीति ने अपने लोगों को एक समृद्ध और सामाजिक न्याय के माध्यम से स्वतंत्रता की दिशा में एकजुट किया। इसके बाद, स्वतंत्रता के बाद, नेहरूवी काल में भारत ने आपसी सहमति, गणराज्य, और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित एक मजबूत राजनीतिक तंत्र का निर्माण किया। आज के आधुनिक युग में, भारतीय राजनीति ने गतिविधियों के साथ–साथ राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर चुनौतियों का सामना किया है और देश को एक विकासशील, एकता भरी, और आत्मनिर्भर भारत की दिशा में बढ़ावा दिया है। भारतीय राजनीति का इतिहास बहुत विविध और घटित हुआ है, जिसमें कई महत्वपूर्ण घटनाएं और समयांतर बदलाव शामिल हैं। यहां भारतीय राजनीति के कुछ महत्वपूर्ण घटकों का संक्षेप दिया गया है :

ब्रिटिश साम्राज्य का अंत (1947)

- भारतीय राजनीति का आदिकाल संयुक्त ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन था, जो 1947 में स्वतंत्र होकर समाप्त हुआ।

- महात्मा गांधी के नेतृत्व में आपसी सहमति और आम जनता के साथ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने ब्रिटिश साम्राज्य को प्रभावित किया।

नेहरूवी काल (1947–1964)

- पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्रता के बाद पहले प्रधानमंत्री के रूप में कार्यभार संभाला।
- उनके नेतृत्व में भारतीय समाज में आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए कई योजनाएं शुरू की गईं।

भूखंड विभाजन (1947)

स्वतंत्रता के समय, भारत में हिन्दू–मुस्लिम भूखंड विभाजन हुआ, जिससे भारत और पाकिस्तान नामक दो अलग–अलग राष्ट्र बने।

शासकीय उपाधी (1950)

- भारत ने 1950 में गणराज्य का स्थापना किया, जिससे यह दुनिया का एक सशक्त लोकतंत्र बन गया।
- भारतीय संविधान को 26 जनवरी 1950 को पूर्ण रूप से अपनाया गया।

आर्थिक विकास (1950–1990)

भारत ने आर्थिक विकास की दिशा में कई योजनाएं शुरू की, जैसे पंचवर्षीय योजना और ग्रामीण विकास योजना।

आर्थिक उदारीकरण (1991)

1991 में, प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व में आर्थिक उदारीकरण और विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए नई नीतियों की घोषणा की गई।

भारतीय राजनीति में गठबंधन (1990–से लेकर आज तक)

1990 के दशक से लेकर आज तक, भारतीय राजनीति में गठबंधन और दलित, आदिवासी, ओबीसी समुदायों के लिए आरक्षण जैसे मुद्दों पर विवाद हुआ है।

आधुनिक युग (2000 से लेकर आज तक)

2000 के बाद, भारत ने आधुनिक और विकासशील युग में अपनी गतिविधियों को बढ़ाया है, जिसमें तकनीकी विकास, विदेशी निवेश, और साइबर युद्ध का महत्वपूर्ण योगदान है।

इसके अलावा, भारतीय राजनीति में कई राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय चुनौतियां और गतिविधियां हुई हैं, जिनसे देश का नेतृत्व और राजनीतिक परिदृश्य स्थायी रूप से बदला है।

भारत की राजनीति :

"भारत की राजनीति देश के संविधान के दायरे में काम करती है। भारत एक संसदीय धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है जिसमें भारत के राष्ट्रपति राज्य के प्रमुख और भारत के प्रथम नागरिक हैं और भारत के प्रधानमंत्री सरकार के प्रमुख हैं। यह सरकार के संघीय ढांचे पर आधारित है, हालांकि इस शब्द का उपयोग संविधान में ही नहीं किया गया है। भारत दोहरी राजनीति प्रणाली का पालन करता है, प्रकृति में संघीय, जिसमें केंद्र में केंद्रीय प्राधिकरण और परिधि में राज्य शामिल होते हैं। संविधान केंद्र और राज्य दोनों सरकारों की संगठनात्मक शक्तियों और सीमाओं को परिभाषित करता है, यह अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है, तरल (संविधान की प्रस्तावना कठोर है और संविधान में आगे संशोधनों को निर्देशित करने के लिए) और सर्वोच्च माना जाता है। राष्ट्र

के कानूनों को इसके अनुरूप होना चाहिए। एक द्विसदनीय विधानमंडल का प्रावधान है जिसमें एक ऊपरी सदन, राज्यसभा (राज्यों की परिषद) जो भारतीय संघ के राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है, और एक निचला सदन लोकसभा (लोगों का सदन) जो समग्र रूप से भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है।"

भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका :

भारत का राजनीतिक परिदृश्य एक जीवंत बहुदलीय प्रणाली की विशेषता है, जो इसके विविध भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ताने–बाने का प्रतिबिंब है। समय के साथ, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दल देश के लोकतांत्रिक ढांचे के अभिन्न अंगों के रूप में विकसित हुए हैं। जबकि कई दलों के प्रभाव पर बहस जारी है, संसदीय लोकतंत्र के भीतर उनकी भूमिकाओं को समझना महत्वपूर्ण है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपनी अनूठी दृष्टि और विचारधारा लाता है, जो अक्सर उस राज्य या क्षेत्र की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप होती है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। चुनावी समर्थन पर, ये दल भारत की कार्यकारी और विधायी दोनों शाखाओं को नियंत्रित करने की शक्ति रखने वाले वैध शासकों की कमान संभालते हैं।

"राष्ट्र की सेवा के व्यापक लक्ष्य के अलावा, राजनीतिक दल छोटे उद्देश्यों को अपनाते हैं जो सामाजिक कल्याण में योगदान करते हैं। इसमें राजनीतिक और सामाजिक चेतना को बढ़ावा देना, सार्वजनिक चिंताओं को कम करना, सामाजिक संकेतकों का पक्ष लेना और भ्रष्टाचार का मुकाबला करना शामिल है। गठबंधन सरकारों के उदाहरणों में, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दल सहयोग करते हैं, नागरिकों को राष्ट्रीय स्तर पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए एक एकीकृत मंच प्रदान करते हैं। वे शासन के उच्चतम स्तरों पर विविध हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों की सामूहिक आवाज बन जाते हैं।

उद्देश्य :

1. भारतीय दल प्रणाली की विशिष्ट विशेषताओं को समझने पर जोर देने के साथ सामान्य रूप से पार्टी प्रणाली के विभिन्न चरणों का अध्ययन करना।
2. विभिन्न सिद्धांतों के ढांचे में क्षेत्रीय और राज्य आधारित पार्टियों की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करना।

अध्ययन का कार्यक्षेत्र :

इस अध्ययन का उद्देश्य एकल सैद्धांतिक ढाँचे के संदर्भ में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति और विस्तार का पता लगाना कठिन है क्योंकि विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में असमान राजनीतिक व्यवस्थाएँ होती हैं और उनके अपने राजनीतिक विकास होते हैं। राजनीतिक दलों की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए कई विद्वानों के प्रयास हुए हैं, जो राजनीतिक दल के विकास को ज्यादातर पश्चिमी लोकतांत्रिक व्यवस्था से संबंधित देखते हैं। मौरिस डुवर्गर राजनीतिक दलों के उद्भव और निर्माण को दो श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं– पार्टियों का चुनावी और संसदीय मूल। बाहरी रूप से सृजित पार्टियां वे हैं जो विधायिका के बाहर उभरती हैं और लगातार शासक समूह को चुनौती देती हैं और प्रतिनिधित्व की मांग करती हैं।

भारतीय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में, औपनिवेशिक शासन की विरासत के रूप में एक लंबे आंदोलन और राजनीतिक संस्थानों के बाद भारत को आजादी मिली। भारतीय संविधान एक लोकतांत्रिक, संसदीय, संघीय और धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की नींव रखता है। प्रारंभ में, भारत में एकल–दलीय प्रभुत्व प्रणाली या कांग्रेस प्रणाली होती

है। कांग्रेस पार्टी अपने शुरुआती दौर में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करती है और 1952 से 1967 तक पहले चार संसदीय चुनावों के दौरान देश की अग्रणी पार्टी में बदल जाती है। 1967 में हुए संसदीय चुनाव तेजी से प्रतिस्पर्धी राजनीति और पार्टी प्रतिस्पर्धा की दिशा में एक प्रमुख कदम का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो मुख्य रूप से राज्य स्तर पर होता है। 1977 में पहली गठबंधन सरकार बनने तक राष्ट्रीय राजनीति में कांग्रेस का दबदबा बना रहता है। 1989 में क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय स्तर पर अपनी वृद्धि दर्ज करते हैं।

डेटा विश्लेषण :

राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका :

1989 के बाद से गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का अध्ययन निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है :

क्षेत्रीय दलों का योगदान :

1989 के बाद से गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। 1989 में एनडीए (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) सरकार में अकाली दल और शिवसेना जैसे क्षेत्रीय दलों ने गठबंधन की मजबूती और स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 2004 में यूपीए (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) सरकार में डीएमके और एनसीपी जैसे क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय मुद्दों पर महत्वपूर्ण समर्थन प्रदान किया। 2014 में एनडीए सरकार में टीडीपी और शिवसेना ने राष्ट्रीय स्तर पर समर्थन और गठबंधन की भूमिका निभाई।

क्षेत्रीय दलों ने गठबंधन सरकारों के निर्माण और स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण मुद्दों पर समर्थन दिया और विभिन्न समयों में सरकारों को स्थिरता प्रदान की। यह गठबंधन राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जहां क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय मुद्दों पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

तालिका 1 : राष्ट्रीय गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी

वर्ष	गठबंधन सरकार	प्रमुख क्षेत्रीय दल	भूमिका
1989	एनडीए	अकाली दल, शिवसेना	गठबंधन की मजबूती और स्थिरता
2004	यूपीए	डीएमके, एनसीपी	राष्ट्रीय मुद्दों पर महत्वपूर्ण समर्थन
2014	एनडीए	टीडीपी, शिवसेना	राष्ट्रीय स्तर पर समर्थन और गठबंधन
2019	एनडीए	टीडीपी, शिवसेना	राष्ट्रीय स्तर पर समर्थन और गठबंधन

क्षेत्रीय और राज्य दलों की घटती भूमिका :

चुनावों के बाद क्षेत्रीय और राज्यीय दलों की भूमिका का विश्लेषण निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

चुनावी परिणामों का विश्लेषण :

2014 के आम चुनावों के बाद क्षेत्रीय और राज्यीय दलों की भूमिका में कमी आई है। 2014 के चुनावों में भाजपा का प्रभुत्व बढ़ा और राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई। यह बदलाव भारतीय

दल प्रणाली में नए परिवर्तनों को दर्शाता है, जहां राष्ट्रीय दलों का वर्चस्व बढ़ा और क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई।

2014 और 2019 के चुनावों में भाजपा ने अपनी स्थिति मजबूत की और क्षेत्रीय दलों की भूमिका को कम कर दिया। यह परिवर्तन राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की प्रभावशीलता को कम करता है और राष्ट्रीय दलों के प्रभुत्व को बढ़ाता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई है और राष्ट्रीय दलों का प्रभुत्व बढ़ा है।

तालिका 2 : 2014 और 2019 के आम चुनावों में प्रमुख क्षेत्रीय दलों की सीटें

दल का नाम	2014 सीटें	2019 सीटें	परिवर्तन (%)
तृणमूल कांग्रेस	34	22	-35.29%
समाजवादी पार्टी	5	3	-40.00%
बीजू जनता दल	20	12	-40.00%

2014 के आम चुनावों के बाद क्षेत्रीय और राज्यीय दलों की भूमिका का विश्लेषण निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका 3 : राज्यीय दलों की भूमिका का विश्लेषण

वर्ष	चुनाव परिणाम	राष्ट्रीय दल	क्षेत्रीय दल	क्षेत्रीय दलों की भूमिका
2014	भाजपा का प्रभुत्व	भाजपा	निचली भूमिका	राष्ट्रीय राजनीति पर सीमित प्रभाव
2019	भाजपा की वापसी	भाजपा	निचली भूमिका	राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावहीन
2024	भाजपा की बहुमत से वापसी	भाजपा	निचली भूमिका	राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावहीन

परिणामों का विवरण और व्याख्या :

इस अध्ययन के आधार पर भारतीय दल प्रणाली की विशेषताएँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। भारतीय दल प्रणाली का विकास विभिन्न चरणों में हुआ है, जिसमें प्रमुख रूप से कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व, प्रतिस्पर्धी राजनीति का उदय और क्षेत्रीय दलों का महत्वपूर्ण उदय शामिल है। 1952 से 1967 तक कांग्रेस पार्टी ने अपने संगठनात्मक ढाँचे और स्वतंत्रता संग्राम की विरासत के बल पर भारतीय राजनीति में अपना एकछत्र राज्य कायम किया। इस अवधि में कांग्रेस पार्टी ने चार संसदीय चुनावों में विजय प्राप्त की और राष्ट्रीय राजनीति में अपना

वर्चस्व स्थापित किया। यह वह समय था जब विपक्षी दल कमजोर थे और कांग्रेस पार्टी का मुकाबला करने में असमर्थ थे। इसके बाद 1967 में भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव आया जब राज्य स्तर पर विभिन्न क्षेत्रीय दलों ने उभरना शुरू किया। इस समय विभिन्न राज्यों में विपक्षी दलों ने कांग्रेस के खिलाफ अपनी स्थिति मजबूत की और प्रतिस्पर्धी राजनीति की शुरुआत की। यह अवधि 1989 तक चली, जिसमें राज्य स्तर पर क्षेत्रीय दलों का उदय और कांग्रेस का धीरे–धीरे पतन हुआ। 1989 में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई जब राष्ट्रीय राजनीति में गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ। 1989 के बाद गठबंधन सरकारों के गठन में क्षेत्रीय दलों की भूमिका बढ़ गई और उन्होंने राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विभिन्न भाषाई, सांस्कृतिक और सामाजिक मुद्दों के आधार पर क्षेत्रीय दलों की उत्पत्ति और विकास हुआ। तमिलनाडु में डीएमके का गठन 1949 में हुआ, जो भाषा और सांस्कृतिक पहचान पर आधारित था। इसी प्रकार महाराष्ट्र में शिवसेना का गठन 1966 में मराठी अस्मिता और स्थानीय मुद्दों को ध्यान में रखकर हुआ। पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस का गठन 1998 में कांग्रेस पार्टी से विभाजन के बाद हुआ, जो राज्य के मुद्दों पर केंद्रित था। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी का गठन क्रमशः 1992 और 1984 में हुआ, जो जातीय और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर आधारित थे। गठबंधन सरकारों के निर्माण और स्थिरता में क्षेत्रीय दलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1989 के बाद एनडीए और यूपीए जैसी गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1989 में एनडीए सरकार में अकाली दल और शिवसेना ने गठबंधन की स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 2004 में यूपीए सरकार में डीएमके और एनसीपी ने राष्ट्रीय मुद्दों पर महत्वपूर्ण समर्थन प्रदान किया। 2014 में एनडीए सरकार में टीडीपी और शिवसेना ने राष्ट्रीय स्तर पर समर्थन और गठबंधन की भूमिका निभाई। हालांकि, 2014 के बाद से राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका में कमी आई है। 2014 के आम चुनावों में भाजपा का प्रभुत्व बढ़ा और राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई। यह बदलाव भारतीय दल प्रणाली में नए परिवर्तनों को दर्शाता है, जहां राष्ट्रीय दलों का वर्चस्व बढ़ा और क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई। 2014 और 2019 के चुनावों में भाजपा ने अपनी स्थिति मजबूत की और क्षेत्रीय दलों की भूमिका को कम कर दिया। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई है और राष्ट्रीय दलों का प्रभुत्व बढ़ा है।

यह अध्ययन भारतीय राजनीति में दल प्रणाली के विकास और क्षेत्रीय दलों की गतिशीलता को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। विभिन्न तालिकाओं, आंकड़ों और विश्लेषण के माध्यम से, यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राजनीति में विभिन्न चरणों में दल प्रणाली का विकास हुआ है और क्षेत्रीय दलों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, 2014 के बाद से राष्ट्रीय दलों का प्रभुत्व बढ़ा है और क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई है, जो भारतीय राजनीति में एक नए परिवर्तन को दर्शाता है।

भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का उदय :

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का उदय और विकास, विभिन्न राज्यों में उनकी स्थापना, और उनके प्रमुख विशेषताओं का मूल्यांकन करने के लिए महत्वपूर्ण है। इसके पीछे कई कारण हैं जो इन पार्टियों को बनाने और बढ़ाने में सहायक हुए हैं।

1. **भू–भौतिक विविधता :**

भारत में विभिन्न भौगोलिक, सांस्कृतिक, और भौतिक संरचनाएं हैं। अलग–अलग राज्यों में विशेष

स्थानीयता, भाषा, और सांस्कृतिक अंशों की विविधता है जिसने क्षेत्रीय पार्टियों का उत्पत्ति किया।

2. भाषा और सांस्कृतिक अंतर :

भाषा और सांस्कृतिक अंतर, जैसे कि भारत के विभिन्न हिस्सों में होने वाले भाषाई और सांस्कृतिक विभिन्नता, ने लोगों को एक–दूसरे से अलग किया और स्थानीय चिंताओं को प्रोत्साहित किया।

3. स्थानीय मुद्दे :

विभिन्न राज्यों में उच्चतम विद्यार्थी और ग्रामीण समृद्धि के मुद्दे, जैसे कि जल, ऊर्जा, और कृषि, ने स्थानीय राजनीतिक पार्टियों को उत्पन्न करने में सहारा प्रदान किया है।

4. सामाजिक और आर्थिक असमानता :

सामाजिक और आर्थिक असमानता ने राज्यों में उठे विशेष असमंजस को उजागर किया है, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

5. कास्ट और जाति विषय :

कास्ट और जाति विषय भी राज्यों में अपनी बातचीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और कई बार इसने स्थानीय राजनीतिक दलों को उत्पन्न करने में मदद की है।

6. उच्चतम आर्थिक आधार :

कुछ क्षेत्रों में अच्छा आर्थिक आधार होने के कारण, वहां की राजनीतिक दल आर्थिक विकास के मुद्दों पर अपने चयनकर्ताओं को समर्थन प्रदान कर सकते हैं।

7. नए दलों का उत्पत्ति :

नए राजनीतिक दल उत्पन्न हो रहे हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशेष बातचीत कर रहे हैं और इनमें से कुछ क्षेत्रीय बन रहे हैं।

इस प्रकार, भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का उदय विभिन्न कारणों से हुआ है और यह राजनीतिक प्रक्रिया में स्थानीय मुद्दों को उजागर करने का माध्यम बन गया है। इन पार्टियों का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है और यह राजनीतिक स्थिति को स्थानीय स्तर से सुधारने में मदद कर रहा है।

निष्कर्ष :

भारतीय राजनीति में पार्टी प्रणाली का विकास और इसके विभिन्न चरणों का विश्लेषण भारतीय लोकतंत्र की जटिलता और विविधता को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इस अध्ययन ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय दल प्रणाली ने कैसे अलग–अलग ऐतिहासिक युगों में विभिन्न प्रकार की राजनीतिक गतिशीलताओं और चुनौतियों का सामना किया है, और किस प्रकार विभिन्न राजनीतिक दलों ने भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई हैं। इस निष्कर्ष में हम विभिन्न कालखंडों के माध्यम से भारतीय पार्टी प्रणाली के विकास को विस्तार से समझेंगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय राजनीति में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (प्छब्) का एकाधिकार स्थापित हो गया था। कांग्रेस ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्राप्त लोकप्रियता और संगठनात्मक ताकत के आधार पर पहले चार आम चुनावों में शानदार जीत हासिल की। यह स्थिति उस समय के विपक्षी दलों की कमजोर स्थिति और राजनीतिक संगठन की कमी के कारण मजबूत थी। कांग्रेस ने केंद्र में बल्कि विभिन्न राज्यों में भी अपनी राजनीतिक पकड़ मजबूत की, जिससे एक केंद्रीकृत प्रणाली का निर्माण हुआ।

संदर्भ –

- कोठारी, राजनी, "भारत की पार्टी प्रणाली में निरंतरता और परिवर्तन," एशियन सर्वे 10, नं. 11 (1970) 937–948।
- कोठारी, राजनी, "भारत में कांग्रेस 'सिस्टम'," एशियन सर्वे 4, नं. 12 (1964) : 1161–1173।
- कुमार, प्रदीप, "राज्य राजनीति के संदर्भ में क्षेत्रवाद और क्षेत्रीय पार्टियाँ," द इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस 52, नं. 4 (1991) : 554–567।
- मणिवानन, आर., "1991 तमिल नाडु चुनाव : मुद्दे, रणनीतियाँ और प्रदर्शन," इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 27, नं. 4 (25 जनवरी 1992) : 164–170।
- मिश्रा, उदयोन, "उत्तर–पूर्वी क्षेत्रीय पार्टियाँ : ऊँची आशाएँ और कठिन वास्तविकताएँ," इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 22, नं. 24 (1987) : 922–923।
- मोहनपात्रा, बिष्णु एन., "साइक्लोन के बाद ओडिशा की राजनीति," इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 35, नं. 16 (2000) : 1353–1355।
- नूरानी, ए. जी., "भारत की पार्टी प्रणाली का संकट," एशियन अफेयर्स 7, नं. 4 (मार्च–अप्रैल 1980) : 233–247।
- पाई, सुधा, "क्षेत्रीय पार्टियाँ और भारत में उभरता हुआ राजनीति का पैटर्न," द इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस 51, नं. 3 (जुलाई–सितंबर 1990) : 393–415।
- पाई, सुधा, "भारतीय पार्टी प्रणाली का रूपांतरण : लोक सभा चुनाव 1998," एशियन सर्वे 38, नं. 9 (1998) : 836–852।
- पाई, सुधा, "भारतीय पार्टी प्रणाली का रूपांतरण : 1996 के लोक सभा चुनाव," एशियन सर्वे 36, नं. 12 (दिसंबर 1996) : 1170–1183।
- पालमर, नॉर्मन डी., "भारत के चौथे सामान्य चुनाव," एशियन सर्वे 7, नं. 5 (मई 1967) : 275–291।
- पालशिकर, सुहास और यादव, योगेंद्र, "फॉर्चुना और विर्चू के बीच : 2009 में कांग्रेस की अस्पष्ट विजय की व्याख्या," इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 44, नं. 39 (2009) : 33–46।
- पालशिकर, सुहास, "शिवसेना : कई चेहरों वाला एक बाघ?" इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 39, नं. 14/15 (2004) : 1497–1507।
- पालशिकर, सुहास, "कांग्रेस की हार," इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 49, नं. 39 (2014) : 57–63।
- रामानी, श्रीनिवासन, "एक निर्णायक जनादेश," इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 44, नं. 21 (2009) : 11–12।
- रॉय, ए. के., "हंग या हैंग्ड? ग्यारहवीं लोक सभा की स्थिति," इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 31, नं. 28 (13 जुलाई 1996) : 1826–1827।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 196-203

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव का अध्ययन

निधि शर्मा, शोधकर्त्री,
डॉ. कलावती स्वामी, शोध निर्देशिका एवं सह आचार्या,
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान।

प्रस्तावना –

शिक्षा में ज्ञान, उचित आचरण और तकनीकी क्षमता शिक्षण और विद्या प्राप्ति आदि समाविष्ट है। इस प्रकार यह कौशलों, व्यापारों एवं व्यवसायों एवं मानसिक, नैतिक और सौंदर्यविषयक के उत्कर्ष पर केंद्रित है। शिक्षा एक ऐसा साधन है जो मानव को प्राणी जगत के अन्य जीवों से पृथक करती है। शिक्षा का मानव जीवन में काफी महत्व है। शिक्षा के बिना मानव पशु के समान है। शिक्षा मानव को सामाजिक जीवन में अपने कर्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्र के विकास में योगदान देता है। मानव जीवन प्रक्रिया विविध प्रकार के वातावरण से होकर निकलती है। शिक्षा उसको वातावरण के साथ अनुकूलन करने की क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा समाज की उन्नति के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है।

शिक्षा का अर्थ विभिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित है। कहीं इसे ज्ञान का पर्याय माना है, कहीं सत्य का, तो कहीं सूचना प्रदानकर्ता तथा कहीं जीवन जीने की कला के रूप में इसकी व्याख्या की गई है। शिक्षा को एक परिभाषा में बांधने का कार्य अत्यंत कठिन है। मानव का जीवन जिस प्रकार बहु आयामी है उसी प्रकार शिक्षा को भिन्न–भिन्न आधार लेकर समझाने का प्रयास किया गया है।

विद्यालयी शिक्षा में यदि शिक्षक, बालकों के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति व्यक्त नहीं करता है, उनके प्रति कठोर और पक्षपातपूर्ण व्यवहार करता है, उनको अकारण दण्ड देता है और उनकी भावनाओं को कुचलने का प्रयास करता है तो वह शिक्षक, बालक की मानसिक अस्वस्थता और तनाव को अत्यधिक बढ़ावा देता है।

अतः बालकों को अपनी शिक्षा सुचारू रूप से पूरी करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक दोनों दृष्टियों से स्वस्थ रहना आवश्यक होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ बच्चे नकारात्मक संवेगों से मुक्त होते हैं और अपनी परिस्थितियों में सही रूप से समायोजन करते हैं, अपने साथियों के साथ भी और अपने शिक्षकों के साथ भी; और यह उनके सीखने में सहायक होता है। इसके विपरीत मानसिक रूप से अस्वस्थ बच्चे शारीरिक रूप से भी अस्वस्थ होते हैं, उनकी संवेगात्मक स्थिति भी ठीक नहीं होती है, वे नकारात्मक संवेगों से ग्रसित होते हैं, वे चिड़चिड़े स्वभाव के होते हैं और अपनी परिस्थितियों के साथ सही समायोजन नहीं कर पाते हैं और ये सब उनके सीखने में बाधा उत्पन्न करते हैं।

तनाव –

तनाव एक मानसिक विकार है। इस मानसिक विकार के कारण दो सप्ताह या उससे ज्यादा दिनों तक उदासी बनी रहती है। बच्चा किसी भी काम में दिलचस्पी नहीं लेता साथ ही उसमें नकारात्मक विचार हमेशा बने रहते हैं। बच्चे की उर्जा का स्तर लगातार घटता रहता है। उसकी रोजमर्रा की जिंदगी बिलकुल अस्त व्यस्त हो जाती है। ऐसे में बच्चा दूसरों को भी नुकसान पहुँचाता है।

तनाव मन की स्थिति से उपजा विकार है मनःस्थिति व परिस्थिति के बीच संतुलन व सामंजस्य के कारण तनाव उत्पन्न होता है। तनाव एक द्वंद है जो मन व भावनाओं में गहरी दरार पैदा करता है। तनाव अन्य अनेक मनोविकारों का प्रवेश द्वार है। उसमें मन अशांत, भावना अस्थिर व शरीर अस्वस्थता का अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में हमारी कार्यक्षमता प्रभावित होती है और हमारी शारीरिक व मानसिक विकास यात्रा में व्यवधान आता है। सामान्य रूप से हम तनाव का अनुभव तब करते है जब समस्याओं को सुलझाने के हमारे द्वारा किये गये साधारण प्रयत्न सफल नहीं होते हैं। वास्तव में तनाव का अनुभव एक नितान्त व्यक्तिगत मसला है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में आई समस्यात्मक स्थितियों में समायोजन अपने तरीके से करता है और सफलतापूर्वक जीवनयापन करता है। समस्याओं से निपटने के इन्हीं व्यक्तिगत तरीकों में जब अवरोध होता है तब व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है।

न्यादर्श –

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु शोधकर्त्री द्वारा हनुमानगढ़, श्रीगंगानगर, कोटा व सीकर जिलों के राजकीय व गैर राजकीय विद्यालयों के कुल 800 विद्यार्थियों को शामिल किया गया, जिनमें से 400 छात्र तथा 400 छात्राओं को शामिल किया गया।

विधि –

इस शोध अध्ययन में शोधकर्त्री ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया।

उपकरण –

शोधकर्त्री द्वारा राजस्थान राज्य के उच्च माध्यमिक स्तर के राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में तनाव का अध्ययन करने हेतु मानकीकृत परीक्षण के रूप में डॉ. जाकी अख्तर द्वारा निर्मित 'विद्यार्थी तनाव मापनी (SSS-AZ) प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी –

शोध कार्य हेतु शोधकर्त्री द्वारा सांख्यिकी के रूप में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–टेस्ट का प्रयोग किया गया।

शोध के उद्देश्य –

1. उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव का अध्ययन करना।

विश्लेषण –

सारणी संख्या–1

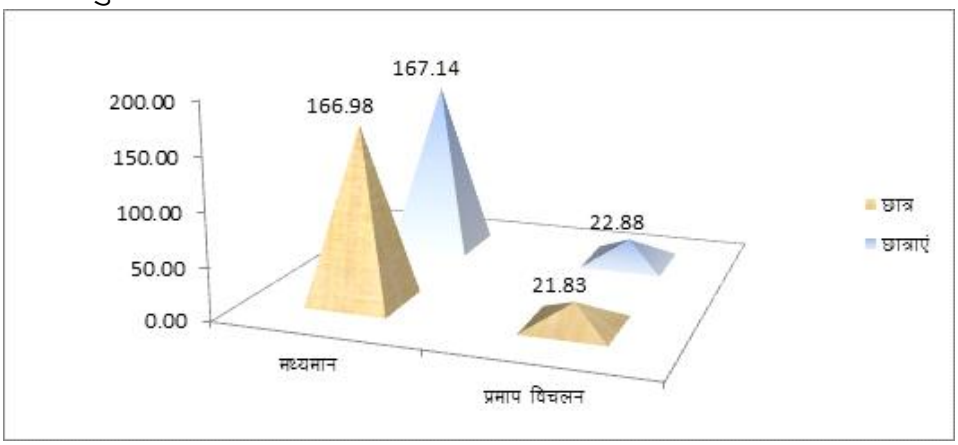
समूह (विद्यार्थी)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
छात्र	200	166.98	21.83	398	0.07	असार्थक
छात्राएं	200	167.14	22.88			

0.01 व 0.05 सार्थकता स्तर

परिणाम एवं व्याख्या–

सारणी संख्या 1 के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव का मध्यमान क्रमशः 166.98 तथा 167.14 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 21.83 व 22.88 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 0.07 है। ये मूल्य 398 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.96 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.58 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

अतः उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव में कोई सार्थक अन्तर प्राप्त नहीं हुआ है जैसा कि लेखाचित्र से भी स्पष्ट हो रहा है–



सारणी संख्या–2

समूह (ग्रामीण विद्यार्थी)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
छात्र	100	170.53	22.16	198	0.57	असार्थक
छात्राएं	100	168.71	23.15			

0.01 व 0.05 सार्थकता स्तर

परिणाम एवं व्याख्या –

सारणी संख्या 2 के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव का मध्यमान क्रमशः 170.53 तथा 168.71 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 22.16 व 23.15 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 0.57 है। ये मूल्य 198 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.97 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.60 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

अतः उच्च माध्यमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव में कोई सार्थक अन्तर प्राप्त नहीं हुआ है जैसा कि लेखाचित्र से भी स्पष्ट हो रहा है –



सारणी संख्या–3

समूह (शहरी विद्यार्थी)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
छात्र	100	163.43	21.01	198	0.69	असार्थक
छात्राएं	100	165.57	22.62			

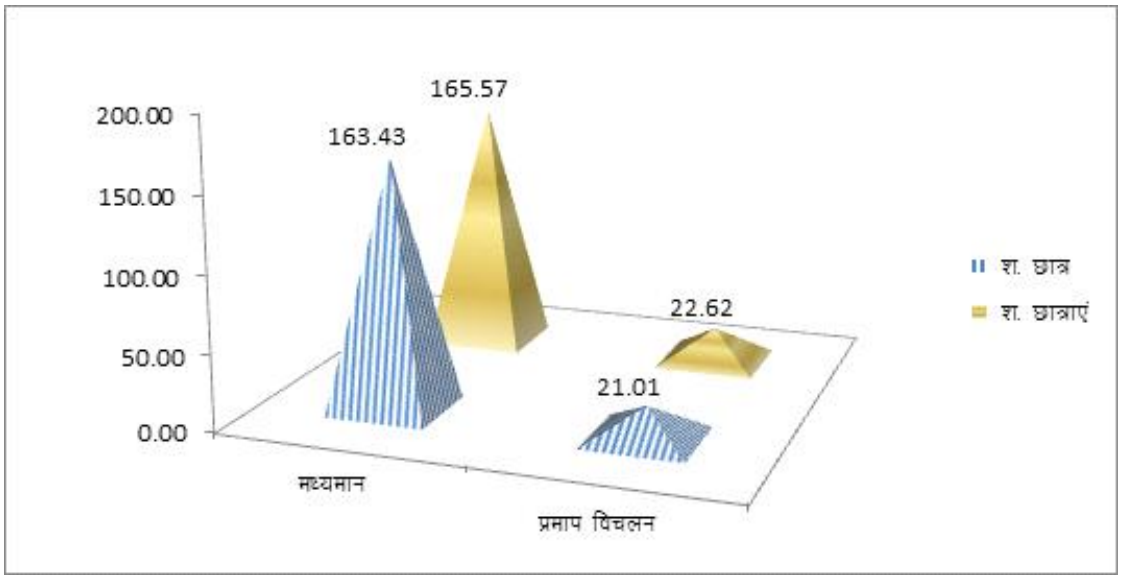
0.01 व 0.05 सार्थकता स्तर

परिणाम एवं व्याख्या –

सारणी संख्या 3 के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव का मध्यमान क्रमशः 163.43 तथा 165.57 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 21.01 व 22.62 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 0.69 है। ये मूल्य 198 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.97 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.60 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

अतः उच्च माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में

तनाव में कोई सार्थक अन्तर प्राप्त नहीं हुआ है जैसा कि लेखाचित्र से भी स्पष्ट हो रहा है–



अतः निर्धारित परिकल्पनाएं 'उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है' को पूर्णतः स्वीकृत किया जाता है।

सारांश –

अध्ययन के परिणाम से उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव के अध्ययन पर प्रकाश डालने में मदद मिलेगी। यह शोध ग्रामीण और शहरी विद्यार्थियों के तनाव का अध्ययन करने में भी मदद करेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अग्रवाल, जे.सी. (2014), शैक्षिक मनोविज्ञान. शिप्रा पब्लिकेशन।
2. गुप्ता, एस. पी. (2014). सांख्यिकी विधियाँ. शारदा पुस्तक भवन।
3. गुप्ता, एस. पी. (2016). सांख्यिकी विधियाँ. शारदा पुस्तक भवन।
4. चन्दराई, के. (2010), ओक्यूपेषनल स्ट्रैस इन टीचस, नई दिल्ली : ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेषन।
5. चौहान, एस. एस. (2010). उन्नत शैक्षिक मनोविज्ञान. विकास पब्लिशिंग हाउस।
6. दत्त, विभा (2010). भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान : अवधारणा एवं व्यक्तित्व. मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
7. पाण्डेय, के. पी. (2012). शैक्षिक मनोविज्ञान. विनोद पुस्तक मंदिर।
8. भटनागर, ए. बी. (2013). आधुनिक शैक्षिक मनोविज्ञान. आर. लाल बुक डिपो।
9. मंगल, एस. के. (2010). उन्नत शैक्षिक मनोविज्ञान. PHI Learning Pvt. Ltd.
10. मंगल, एस. के. (2010). शिक्षा मनोविज्ञान. पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि.।
11. यादव, आर. एस. (2021). किशोर मनोविज्ञान एवं परामर्श. साहित्य भवन।
12. राठौड, अमी (2014), संवेगात्मक बुद्धि, उदयपुर, हिमांशु पब्लिकेशन।
13. राय, पारसनाथ एवं राय, सी. पी. (2014), अनुसंधान परिचय, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
14. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT)– (2020). भारतीय शिक्षा में विद्यार्थियों का

शैक्षणिक तनाव।
15. शर्मा, आर. सी. (2018). शिक्षा एवं मानसिक स्वास्थ्य. आर. लाल बुक डिपो।
16. शर्मा, आर. ए. (2011). शिक्षा अनुसंधान. आर. लाल बुक डिपो।
17. शर्मा, डॉ. आर. ए. (2013), षिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
18. शर्मा, प्रवीण (2010), शिक्षा मनोविज्ञान एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण, नई दिल्ली, शिप्रा प्रकाशन।
19. शर्मा, यदु एवं पारीक अल्का (2014), अधिगम के लिए आकलन, जयपुर, शिक्षा प्रकाशन।
20. सिंह, अरुण कुमार. (2015). मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं शिक्षा में अनुसंधान विधियाँ. मोतीलाल बनारसीदास।
21. सिंह, अरुण कुमार. (2015). शिक्षा एवं मनोविज्ञान में अनुसंधान विधियाँ. मोतीलाल बनारसीदास।
22. World Health Organization. (2022). World Mental Health Report : Transforming Mental Health for All.
23. UNICEF. (2021). The State of the World's Children 2021: On My Mind – Promoting, Protecting and Caring for Children's Mental Health.
24. UNESCO. (2021). Reimagining Our Futures Together : A New Social Contract for Education.
25. National Council of Educational Research and Training. (2024). Promoting Mental Health and Well-Being in School: A Guide for Teachers.
26. Mishra, P., & Choudhuri, R. (2020). Academic Stress in Students : A Review. Journal of Indian Education, 46(3), 117–129.
27. Sarif, M. N., & Vandana. (2022). Stress, Anxiety, and Depression among School Students: A Cross-sectional Study. Journal of Indian Education, 48(3), 135–150.
28. Wuthrich, V. M., Jagiello, T., & Azzi, V. (2020). Academic Stress in the Final Years of School: A Systematic Literature Review. Child Psychiatry and Human Development.
29. Steare, T., Muñoz, C. G., Sullivan, A., & Lewis, G. (2023). The Association Between Academic Pressure and Adolescent Mental Health Problems: A Systematic Review. Journal of Affective Disorders.
30. Khurana, V., & Verma, R. (2025). Stress, Dietary Patterns, and Emotional Eating: A Cross-sectional Study Among Indian High School Students. National Journal of Physiology, Pharmacy and Pharmacology.
31. Meherali, S., et al. (2021). Mental Health of Children and Adolescents Amidst COVID-19 and Past Pandemics: A Rapid Systematic Review. International Journal of Environmental Research and Public Health.
32. Singh, S., Roy, D., Sinha, K., et al. (2020). Impact of COVID-19 and Lockdown on Mental Health of Children and Adolescents. Psychiatry Research.
33. Sirois, F. M. (2023). Procrastination and Stress: A Conceptual Review of Why Context Matters.

International Journal of Environmental Research and Public Health.
34. Government of India. (2020). National Education Policy 2020.
35. National Institute of Mental Health and Neurosciences. (2020). National Mental Health Survey of India (Report).
36. University Grants Commission. (2023). Guidelines for Promotion of Students' Health, Welfare, Psychological and Emotional Well-being.
37. UNICEF India. (2024). Mental Well-being for Young People.
38. World Health Organization. (2021). Adolescent Mental Health.
39. Reshu, Kumar, S., & Rathi, A. (2025). Adolescent Academic Stress and Exam Anxiety in Schools in the Wake of the COVID-19 Pandemic. Acta Psychologica.
40. Sibia, A., Chakraborty, S., & Shukla, R. (2022). Mental Health and Well-being of School Students – A Survey. NCERT.
41. Schulte-Körne, G. (2016). Mental Health Problems in a School Setting in Children and Adolescents. Deutsches Ärzteblatt International.

रिसर्च सर्वे एवं जर्नल्स –

1. बुच, एम. बी., ''ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली, 1974.
2. बुच, एम. बी., ''ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली, 1979.
3. बुच, एम. बी., ''फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', वोल्यूम–1, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1983–86.
4. बुच, एम. बी., ''फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', वोल्यूम–2 एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1983–86.
5. बुच, एम. बी., ''फिफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', वोल्यूम–2 एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1988–92.
6. समन्वयकः नागराजू सी. एस., ''सिक्स्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', वोल्यूम–1 एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1993–2000.
7. इण्डियन एजूकेशन एब्सट्रेक्स, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वोल्यूम–6, नं. 1, 1996.
8. जर्नल ऑफ इण्डियन एजूकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वोल्यूम–6, नं. 1, 1998.
9. जर्नल ऑफ इण्डियन एजूकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वोल्यूम–6, नं. 1, 2007.
10. एजूट्रेक्स, नीलकमल पब्लिकेशन्स प्रा. लि., हैदराबाद, नवम्बर, 2006, वोल्यूम–6, नं. 3.
11. जर्नल ऑफ कम्युनिटी गाइडेन्स एण्ड रिसर्च, नीलकमल पब्लिकेशन्स प्रा. लि. जुलाई, 2014, वोल्यूम 31, नं. 2.
12. जर्नल ऑफ टीचर एजुकेशन, एन.सी.टी.ई. नई दिल्ली, दिसम्बर 2015, वोल्यूम 10, नं. 2.
13. भारतीय शोध पत्रिका, वर्ष–19, अंक 2, जुलाई–दिसम्बर, 2000, पृ. सं. 09.

14. अन्वेषिका, अध्यापक शिक्षा की शोध पत्रिका, एन.सी.ई.टी, नई दिल्ली, मई–अगस्त 2015, वॉल्यूम–10, नम्बर–2, पृ.सं. 51.
15. भारतीय आधुनिक शिक्षा, अप्रैल–2009, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
16. राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका, अप्रैल–2011,सितम्बर–2011.
17. राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका, अप्रैल 2012 से सितम्बर 2012.
18. नई शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक संवाद की पत्रिका, वर्ष – 62 अंक – 5.
19. प्राथमिक शिक्षक, शैक्षिक संवाद की पत्रिका, अप्रैल–जुलाई 2009.
20. शिक्षक अन्तर्दृष्टि, द्विमासिक पत्रिका, जनवरी–फरवरी 2014, वर्ष–1 अंक–4.

Webligraphy -

- http://www.educationinindia.net.
- www.shodhganga.inflibnet.ac.in
- www.shaikshikmanthan.com
- www.education.nic
- http://www.desertation.com
- http://www.ssmrae.com
- http://www.oerj.org
- http://www.ejournal.oiaer.net
- http://www.indianjournals.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 204-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

Socio-Economic Pillars of Maternal and Child Health Transformation : An Economic Analysis with Special Reference to Chhotaudepur District of Gujarat (2014–2024)

Dr. Rakeshbhai R. Vankarsadhu

Assistant Professor, Kapadia NMMS arts and the SNSBS commerce college, Sankheda.

Abstract :

Maternal and child health, gender equality, and basic infrastructure serve as key indicators for the development of any nation (World Health Organization [WHO], 2018). In this context, the present study examines maternal and child health care services in Chhotaudepur district from 2014-15 to 2023-24 from a socio-economic perspective. The institutional delivery rate increased from 81.7% in 2014-15 to 99.7% in 2023-24, representing a dramatic reduction in the burden of rural home deliveries. This structural transformation was strongly driven by targeted financial incentive mechanisms, which substantially reduced catastrophic out-of-pocket and transportation expenditures for low-income tribal families. Spatially, taluka-level data reveals infrastructural, geographic, and economic disparities. The economic hubs of Chhotaudepur and Bodeli talukas record volumes of institutional procedures significantly exceeding baseline local antenatal registrations. In contrast, economically vulnerable talukas such as Jetpur Pavi exhibit net out-migration for childbirth, demonstrating how public transportation infrastructure and wealth distribution shape healthcare-seeking behavior. The study concludes with pragmatic policy recommendations aimed at resource redistribution, continuous antenatal monitoring systems, and local strategies to eliminate the remaining structural and financial bottlenecks.

Keywords : Health, Maternal and Child Care, Institutional Delivery, Out-of-Pocket Expenditure (OOPE), Chhotaudepur

Introduction :

Maternal and child health, gender equality, and general infrastructure serve as foundational indicators for the overall development of any nation (WHO, 2018). In India's rural and predominantly tribal districts, infrastructural constraints ranging from geographic isolation to socio-cultural

dependencies historically resulted in elevated home delivery rates, further complicating essential risk-management interventions (Ministry of Health and Family Welfare [MoHFW], 2022). Key among these barriers were high out-of-pocket expenditures (OOPE), severe infrastructure deficits, and steep transit costs required to travel from remote agrarian settlements to commercial urban hubs.

Formed as a distinct administrative district in Gujarat, Chhotaudepur possesses a high proportion of Scheduled Tribe (ST) population whose livelihoods primarily depend on marginal landholdings, seasonal agricultural labor, and minor forest produce. Historically, rural home delivery was not merely a cultural preference, but an economic compulsion imposed by the lack of liquid capital. This study presents a comprehensive 10-year institutional and economic analysis of Health Management Information data in Chhotaudepur district, investigating how direct state-supported financial interventions dismantled economic barriers that historically forced reliance on unsafe home delivery practices.

The empirical data synthesized for this study is drawn from primary annual health administrative registries maintained by the Office of the Chief District Health Officer (2024), Health Branch, District Panchayat Bhavan Chhotaudepur. This research evaluates the structural factors driving the near-elimination of home deliveries and decomposes the spatial migration dynamics across all six constituent talukas: Bodeli, Chhotaudepur, Jetpur Pavi, Kawant, Nasvadi, and Sankheda.

Methods and Parameter Classification :

The empirical methodology comprises a two-stage evaluation framework adhering to standard primary health assessment guidelines (International Institute for Population Sciences [IIPS], 2021): first, a long-term historical trend analysis spanning a ten-year timeline in maternal safety and child survival; and second, a spatial cross-sectional framework analyzing the latest financial year (2023-24) to isolate regional delivery variances and infrastructural dependencies. Core parameters are categorized into three overarching pillars.

Maternal Care Infrastructure: Encompasses total antenatal registrations, completion of at least three comprehensive pre-delivery screening routines (ANC-3 coverage), and preventive Tetanus Toxoid (TT2 + Booster) immunization regimens designed to eliminate neonatal tetanus vectors.

Intrapartum and Birth Outcomes: Measures the aggregate volume of medical institutional deliveries in recognized clinical settings versus non-medical home births, alongside total live birth and stillbirth outputs.

Postnatal and Child Immunization Infrastructure: Evaluates early pediatric clinical surveillance, including birth registration, Bacillus Calmette-Guérin (BCG) vaccination, Oral Polio Vaccine (OPV-3), Pentavalent-3 series, Measles vaccination, Vitamin A supplementation, and ultimate certification as 'Fully Immunized Children' (MoHFW, 2022).

Longitudinal Analysis : A Decade of Structural and Financial Transformation (2014–2024)

Macro demographic tracking indicates that structural intake peaked during the 2018-19 cycle, when annual antenatal registrations reached 29,040 (Office of the Chief District Health Officer, 2024). Over the final three cycles, macro tracking stabilized, arriving at an active operational baseline of 22,402 registrations in 2023-24, reflecting stabilized crude birth rates alongside widespread welfare education.

Antenatal Care Attrition and Continuous Protection :

A key diagnostic element for preventive public health operations is the proportionate retention of registered women within the ANC-3 framework. In 2014-15, the ANC-3 completion rate stood at 62.5% (14,403 out of 23,065). Mid-decade cycles witnessed noticeable reporting drop-offs, with a pronounced reduction between 2018 and 2020, followed by systemic recovery. In the concluding 2023-24 cycle, active ANC-3 coverage reached 63.6% (14,256 out of 22,402). Concurrently, protective coverage via Tetanus Toxoid (TT2 + Booster) demonstrated remarkable stability, maintaining between 16,000 and 17,000 annual doses, thereby sustaining an indispensable protective biological barrier across the district.

Financial Dynamics and the Timeline of Non-Medical Home Birth Elimination :

The primary structural achievement documented across this decade is the systematic replacement of home deliveries by clinical institutional facilities (Office of the Chief District Health Officer, 2024). Historically, the economic costs of delivery encompassed direct medical charges (clinical fees, pharmaceuticals, and surgical supplies) as well as indirect logistics expenses (emergency transit over unpaved rural tracks and wage losses incurred by accompanying household caregivers). The institutionalization of delivery pathways reflects a permanent realignment of intrapartum healthcare choices driven by targeted public financial subsidies :

Table 1 : Ten-Year Macro Shift in Delivery Environment (2014–2024)

Financial Year	Total Documented Deliveries	Institutional Deliveries	Home Deliveries	Institutional Delivery Rate (%)
2014-15	21,293	17,406	3,887	81.70%
2015-16	23,115	18,820	1,519	81.40%
2016-17	25,055	19,237	1,690	76.80%
2017-18	26,127	20,816	1,626	79.70%
2018-19	18,170	16,435	1,234	90.50%
2019-20	20,613	19,383	1,230	94.00%
2020-21	16,522	15,707	813	95.10%
2021-22	16,222	15,582	640	96.10%
2022-23	17,891	17,550	341	98.10%
2023-24	16,302	16,255	47	99.70%

In the 2014-15 baseline period, home deliveries stood at 3,887 recorded occurrences (18.3% of total births), representing a critical public health and economic vulnerability. This high baseline reflected an environment where direct out-of-pocket health costs imposed an insurmountable hurdle on marginalized families (MoHFW, 2022). Over the subsequent ten cycles, intensive public investment—particularly the expansion of Janani Suraksha Yojana (JSY) and Janani Shishu Suraksha Karyakram (JSSK), offering free emergency transport, free pharmaceuticals, and direct conditional cash transfers—compressed home births down to merely 47 cases across the entire district by 2023-24 (Office of the Chief District Health Officer, 2024). Consequently, clinical institutional delivery coverage surged from 81.7% to an exceptional 99.7%, demonstrating that eliminating out-of-pocket medical expenditure drives immediate uptake of institutional clinical care.

Correlated Trends in Stillbirth Incidence :

The steady expansion of institutional deliveries directly correlates with a secular decline in perinatal mortality (WHO, 2018). In the 2014-15 baseline cycle, the district registered 331 stillbirths. By the concluding 2023-24 cycle, total stillbirths dropped to 146 occurrences—a remarkable reduction demonstrating the protective efficacy of skilled clinical intrapartum management (Office of the Chief District Health Officer, 2024). This secure birth environment ensured that 16,156 infants were successfully delivered live during the terminal financial year, preserving human capital vital for the district's rural economy.

Regional Taluka-Wise Analysis : Sub-District Economic Dynamics :

An in-depth analysis of sub-district operational cross-sections reveals pronounced geographical imbalances and functional interdependencies among individual talukas, masking notable economic variations beneath aggregate district-level indicators (IIPS, 2021; Office of the Chief District Health Officer, 2024).

Table 2 : Taluka-Wise Maternal Care and Immunization Indicators (FY 2023-24)

Taluka Name	Registered Women	ANC-3 Completed	Institutional Deliveries	Home Deliveries	Fully Immunized Children
Bodeli	3,547	2,257	4,660	1	2,670
Chhotaudepur	5,334	2,650	6,482	30	5,652
Jetpur Pavi	3,438	2,044	748	14	2,646
Kawant	4,667	3,136	3,846	2	3,887
Nasvadi	3,060	2,247	2,411	0	2,708
Sankheda	2,356	1,925	908	0	2,322
District Total	22,402	14,256	16,255	47	19,885

The Spatial Delivery Influx Phenomenon: Mathematical analysis of regional figures isolates a prominent structural pattern: concentrated maternal delivery influx migration. Bodeli taluka recorded 3,547 baseline registrations but an impressive 4,660 institutional deliveries (+31.3% influx). Similarly, Chhotaudepur taluka mapped 5,334 registrations against 6,482 active clinical deliveries (+21.5% influx). Conversely, Jetpur Pavi taluka registered 3,438 pregnancies but documented only 748 institutional deliveries—representing a severe net deficit of 78.2% relative to local demand (Office of the Chief District Health Officer, 2024).

Socio-Economic Interpretation of Spatial Disparities: This distribution reflects a distinct centralized hub-and-spoke healthcare infrastructure model intimately linked to local market wealth distribution (IIPS, 2021). The semi-urban centers of Bodeli and Chhotaudepur serve as commercial hubs hosting primary referral networks, Community Health Centres (CHCs), and accredited private clinical providers. Expectant mothers residing in resource-constrained periphery talukas like Jetpur Pavi and Sankheda routinely cross administrative borders during active labor to access these clinical hubs. While this geographic concentration guarantees skilled obstetric care, it imposes indirect logistics costs and transit strains on low-income families.

Economic Geography of Residual Risk: Although home deliveries have approached near-elimination across the district (47 total cases), the remaining occurrences remain heavily concentrated within two specific sub-districts: Chhotaudepur taluka accounts for 30 cases, and Jetpur Pavi accounts for 14 cases. Together, these two administrative units encompass 93.6% of all remaining home births in the district (Office of the Chief District Health Officer, 2024). This concentration highlights localized socio-cultural enclaves and severe physical isolation, particularly in interior tribal settlements situated far from all-weather paved roads (MoHFW, 2022). In these pockets, the baseline economic and physical friction of emergency transit can still outweigh conditional state incentives, rendering home delivery the sole feasible recourse during precipitous labor.

Immunization Continuity Tracking: In marked contrast to intrapartum migration, child immunization programs demonstrate exceptionally equitable geographic tracking (IIPS, 2021; Office of the Chief District Health Officer, 2024). Talukas experiencing significant delivery out-migration nonetheless attain full pediatric immunization volumes commensurate with or exceeding baseline local registration quotas (e.g., Sankheda tracks 2,322 fully immunized infants against 2,356 baseline registrations). This corroborates a robust decentralized follow-up network: while mothers travel across borders to secure clinical safety during childbirth, they promptly return to their local Sub-Centres and Anganwadi networks for longitudinal pediatric immunizations, thereby shielding household

finances from repeated long-distance travel costs.

Discussion : Financial Levers and Strategic Recommendations :

The structural dynamics observed across Chhotaudepur district offer clear lessons for decentralized rural healthcare administration. The decisive transition toward institutional deliveries underscores the efficacy of sustained public health investments and conditional cash transfers in dissolving poverty-driven barriers (MoHFW, 2022). Nevertheless, the resultant clustering of delivery caseloads in designated urban centers creates risks of overburdening facility capacity, escalating operational costs, and generating systemic bottlenecks.

To safeguard infrastructural resilience and close the final remaining coverage gaps, health administrators should implement the following targeted policy interventions :

1. **Resource Rebalancing for High-Volume Referral Hubs :** Given that Bodeli and Chhotaudepur talukas bear an overwhelming share of cross-taluka delivery workloads, their obstetrics wards, specialized labor equipment, and professional nursing staffing must receive proportionally augmented budgetary and personnel allocations to prevent clinical bottlenecks (Office of the Chief District Health Officer, 2024).

2. **Targeted Outreach for High-Risk Home-Delivery Pockets :** To eliminate the final 44 home delivery occurrences and achieve complete institutional coverage, specialized outreach teams should deploy mobile health units and intensify localized counseling via ASHA workers across designated vulnerable settlements in Chhotaudepur and Jetpur Pavi talukas (MoHFW, 2022).

3. **Strengthening Antenatal Continuum of Care :** While institutional delivery rates have achieved near-universal coverage, initial ANC-3 screening completion remains at 63.6%. Strengthening first-trimester tracking will enable earlier detection of high-risk pregnancies, averting complications and mitigating catastrophic emergency treatment expenditures (WHO, 2018).

Conclusion :

The empirical trajectory of maternal and child health indicators in Chhotaudepur district portrays an extraordinary public health success driven by synchronized financial and administrative interventions. Over a ten-year span, concerted public action and the mitigation of out-of-pocket health costs systematically supplanted hazardous home delivery practices with a dependable, institutional healthcare delivery and pediatric tracking architecture. By addressing remaining spatial bottlenecks and localized pockets of vulnerability, Chhotaudepur can consolidate these gains and serve as a replicable economic development benchmark for rural and tribal healthcare systems across developing economies.

References :

- International Institute for Population Sciences. (2021). District level household and facility survey evaluation guidelines for primary health infrastructure nodes. Mumbai, India: IIPS Publishing.
- Ministry of Health and Family Welfare. (2022). National Family Health Survey (NFHS-5) 2019-21: India fact sheet. Demographic and clinical baseline comparisons for rural and tribal district tracking. New Delhi, India.
- Office of the Chief District Health Officer. (2024). Section 4.9: Taluka-wise details of maternal and child health care. In Chapter 4: Birth, death, public health, and family welfare Annual Administrative Health Report 2023-24. Chhotaudepur, India: Health Department, District Panchayat Bhavan.
- World Health Organization. (2018). Trends in maternal mortality: 2000 to 2017. Global estimates developed by WHO, UNICEF, UNFPA, World Bank Group and the United Nations Population Division. Geneva, Switzerland.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 211-222

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

Silk Road Economic Belt

Dr. Nagma Khanam
Assistant professor, Deptt. Of Political Science,
D. V. College, Orai.

ABSTRACT :

One Belt One Road (OBOR) initiative is a historical initiative which connects the people over the world and facilitates various opportunities for global peace. The main purpose of this study is to explore implication of One Belt One Road initiative for global future development. It also analyzes the reasons of origin, strategy, opportunities and challenges of OBOR initiatives on the basis of business, economic, political, social and environmental aspects. This study uses qualitative approach and secondary data particularly journal articles, conference proceedings, various documents of government, books, newspaper articles, magazine articles, and various websites of internet have been extensively used to determine the objectives. This article argues that partner countries and agencies will get economic and political benefits from these initiatives. It facilitates to connect people through road ways, air ways and water ways, coordinating policies of various governments, financial integration through cross border business, productivity and regional energy security. This study also analyzes risks and challenges associated to OBOR initiative implementation. It suggests that strong coordination among partners of OBOR is necessary to get full fruits of OBOR through supportive law, policy, rules and regulations, proper strategy implementation, transparent procurement system, sincere consideration on political, financial, environmental and social factors.

Keywords - Silk Road, strategy, economic development, OBOR, Infrastructure, economic belt, political dimension.

INTRODUCTION :

The One Belt One Road (OBOR) initiative was proposed by Chinese President Xi Jinping in 2013. It is a historical initiative of China to connect the people all over the world. Recently it is known as Belt and Road Initiative. It comprises two major programs entitled to Silk Road Economic Belt and 21st Century Maritime Silk Road. The Silk Road Economic Belt connects three major routes

like China to Europe, the Persian Gulf, the Mediterranean and the Indian Ocean, while the 21st Century Maritime Silk Road is based on waterways among member countries of OBOR initiative. It comprises about 65 countries and 900 projects with an investment volume of 850 billion dollars. The Asian Infrastructure Investment Bank (AIIB) was launched with its startup capital of 100 billion dollars in the context of OBOR . The One Belt denotes to the "Silk Road Economic Belt", a revival of the old land-based Silk Road which connected China to central Asia, the Middle East and Europe. So, it is also known as Modern Silk Road.

The One Road denotes to the "21st Century Maritime Silk Road" which planned to connect Asia, Africa, the Middle East and Europe. This is also known as Maritime Silk Road. The aim of the OBOR is to connect Asia, Europe and Africa through strengthening partnerships among the countries. China's imperial envoy Zhang Qian initiated the old Silk Road 2000 years ago which has been facilitated as a trade route to Arab and central Asia. Since silk was one of the top most exports item of china at that time so this route is known as Silk Road. In 2013, president Xi Jinping declared to establish and revitalize the old Silk Road by establishing a connection among China, all parts of Asia, Europe and Africa through infrastructure development like railways and roads . It is the largest economic platform of the world which will promote global economic growth through strengthening economic cooperation. OBOR is working in two ways viz. Silk Road Economic Belt and 21st Century Maritime Silk Road. The Silk Road Economic Belt consists of three routes connecting China to Europe, the Persian Gulf, the Mediterranean and the Indian Ocean.

On the other hand, the 21st Century Maritime Silk Road is based on water ways among OBOR member countries. OBOR is a mega project which covers two-thirds of the global population and three-fourths of the energy resources . Though some researchers thought that OBOR is an initiative to promote their meltdown economy by creating smooth global markets, it is portrayed to reshape the political and economic order of Asia by developing a network of cultural, political and trading corporation. The OBOR already got 65 countries as member under its initiative. The importance of OBOR initiative cannot be ignored due to its active role on mutual peace and economic development. It connects Asian countries like Bangladesh, Brunei, Singapore, Sri Lanka, Cambodia, Myanmar, Maldives, Nepal, India, Sudan and Pakistan through seaports, oil and gas pipelines and economic corridors. It also finances for free trade economic zones and energy development projects in its member countries.

The policy makers and scholars of US, Japan and India expressed their security threats in the OBOR regions due to the growing influence of OBOR initiative of China. Though China considered it as propaganda against OBOR's peaceful journey, the benefit of the OBOR will be available for all

the people of the world due to its peaceful natures like mutual cooperation, integration and interdependence. A multi-polar world will be established by proper implementation of OBOR through trends of harmony and peace.

The main purpose of this study is to answer the questions :

- What are the implications of the One Belt One Road initiative?
- What are the contexts of origin, strategies, opportunities and challenges of OBOR initiatives?
- Is the OBOR initiative enough for future global development?

These questions lead the researcher team to explore implication of One Belt One Road initiative for global future development. The first section describes about the introduction of OBOR, second and third sections describes about methodology and systematic reviews of literature. Fourth and fifth section describes context of origin, strategy, opportunities, challenges and implications of OBOR for future global development. Final section concludes the article with some recommendations.

METHODOLOGY :

RESEARCH DESIGN :

A conceptual framework is developed for implication of OBOR initiative for future global development through an extensive review of the literature. The research is descriptive in nature based on some indicators of global economic development. The study mainly focuses on context of origin, strategy, opportunities and challenges of OBOR initiatives on the basis of business, economic, political, social and environmental.

SOURCE OF DATA :

Secondary sources have been extensively used related to implication of OBOR initiative, challenges and opportunities in the process of implementation of OBOR strategy and future global economic development. The latest information has been included for a better recommendation for implication of OBOR initiative.

RESEARCH STRATEGY :

Data has been extensively searched from some renowned databases viz google scholar, a web of science, science direct, and Springer link website using important keywords like “one belt one road, economic belt, maritime silk road, OBOR, economic development, policy, strategy, regional development, global economic development, challenges, opportunities, security, geopolitics, and China” for securing authentic information . The data collection and analysis for this study has been done during December 2017. Literature reviews are a significant part of the development of a field. It offers the opportunity to synthesize and reflect on previous research, and thus providing secure grounding for the advancement of knowledge.

DATAANALYSIS :

Data is analyzed from different perspectives of One Belt One Road, challenges and opportunities for implementation, funding sources, involvement of partner countries, suitability of economic corridors, strategy for implementation and future global economic development.

THE BELT AND ROAD INITIATIVE AND THE CHANGING GEOPOLITICAL ORDER :

One of the most significant dimensions of the BRI is its potential influence on the contemporary geopolitical order. The distribution of economic power is undergoing considerable change, with Asian and other emerging economies playing increasingly important roles in global economic and political affairs. The BRI has emerged within this changing international environment as a major connectivity initiative.

The expansion of transportation, energy and maritime networks linking Asia, Europe, Africa and the Middle East can strengthen economic relations among participating states. At the same time, the growing involvement of BRI projects in strategically important ports, transportation corridors and energy routes has generated debate regarding their wider strategic implications. Consequently, the initiative cannot be assessed exclusively in economic terms.

However, interpreting the BRI only as an instrument of power competition would also be analytically restrictive. The political consequences of individual projects depend on institutional arrangements, financial conditions, transparency, local consent and the national interests of participating countries. The BRI therefore contains possibilities for both cooperation and strategic competition.

Accordingly, the BRI may simultaneously be viewed as an instrument of economic globalization, a mechanism of regional integration and an important component of China's international strategic engagement. Its long-term geopolitical influence will depend upon how participating states reconcile the initiative with their national interests and wider regional arrangements.

ECONOMIC CONNECTIVITY AND REGIONAL INTEGRATION :

Economic connectivity constitutes a central operational dimension of the BRI. Many developing countries face structural constraints such as inadequate transportation networks, high logistics costs, limited market access and insufficient energy infrastructure. Cross-border infrastructure can reduce some of these constraints and create opportunities for deeper regional economic integration.

Transport connectivity can facilitate the movement of agricultural products, manufactured goods and raw materials. Energy connectivity can contribute to regional energy security through pipelines, electricity networks and related infrastructure. Trade corridors may also enable smaller and developing economies to participate more effectively in regional and global value chains.

Nevertheless, physical infrastructure alone cannot guarantee economic integration. Efficient

customs procedures, harmonisation of standards, transparent regulatory mechanisms and political stability are equally important. If infrastructure development is not accompanied by appropriate institutional arrangements, the expected economic benefits may remain limited.

Therefore, the success of the BRI should be assessed through broader indicators such as trade facilitation, investment flows, employment generation, technological cooperation, local enterprise participation and institutional capacity. Such an approach shifts the analysis from the number of projects constructed to the developmental outcomes produced by connectivity.

ENVIRONMENTAL SUSTAINABILITY AND THE BRI :

The environmental dimension has become increasingly important in evaluating large-scale infrastructure initiatives. Roads, railways, ports, industrial zones, energy projects and urban development can contribute to economic growth, but they can also place pressure on natural resources and ecosystems when environmental considerations are not integrated into planning.

The geographical diversity of BRI projects makes this issue particularly significant. Projects may pass through mountains, forests, coastal areas and ecologically sensitive regions. Environmental impact assessment and project-specific ecological planning are therefore necessary rather than relying on a uniform development model.

Renewable energy, energy efficiency, environmentally responsible transportation and sustainable construction technologies can help reconcile economic development with ecological responsibility. In the long term, the success of the BRI should be evaluated not only through investment and infrastructure indicators but also through environmental sustainability and responsibility towards future generations.

DIGITAL CONNECTIVITY AND THE DIGITAL SILK ROAD :

Contemporary global economic integration increasingly depends on digital connectivity in addition to physical infrastructure. Telecommunications, digital services, e-commerce, financial technology, data networks and technological cooperation have become important foundations of international economic interaction. The concept of the Digital Silk Road therefore expands the traditional understanding of the BRI.

Digital connectivity can facilitate cross-border trade, financial transactions, logistics management, information exchange and technological cooperation. In developing countries, improved digital infrastructure may also expand access to public services and economic opportunities.

At the same time, digital connectivity raises questions concerning data governance, cybersecurity, technological dependence and digital sovereignty. Participating states therefore need to balance the benefits of technological cooperation with national security and regulatory interests.

From a political science perspective, digital infrastructure is increasingly a component of global governance, international power and the political economy of technology.

INDIA'S PERSPECTIVE ON THE BELT AND ROAD INITIATIVE :

India occupies an important position in discussions concerning the BRI because of its geographical location, economic potential, role in the Indian Ocean region and strategic interests. India recognises the importance of regional connectivity and infrastructure cooperation, but it places considerable emphasis on sovereignty, territorial integrity, transparency and mutual consultation.

From India's perspective, economic connectivity cannot be completely separated from national security and sovereignty. Infrastructure projects involving politically sensitive or disputed territories acquire additional strategic significance. India's position on the BRI therefore reflects not only economic considerations but also questions of national interest, regional security and territorial sovereignty.

At the same time, India itself attaches importance to regional connectivity, cooperation with neighbouring countries and infrastructure development in the Indian Ocean region. BRI and other connectivity initiatives can therefore be examined through both competition and potential cooperation. India's perspective demonstrates that connectivity becomes more sustainable when economic interests are balanced with sovereignty, transparency, security and mutual consent.

PEOPLE-CENTRED DEVELOPMENT AND THE BRI :

The long-term success of a major development initiative ultimately depends on the extent to which its benefits reach ordinary citizens. BRI projects should therefore be evaluated not only through investment and infrastructure indicators but also through employment, skill development, local business participation, education, social services and improvements in livelihoods.

A people-centred approach requires meaningful consultation with local communities. Local employment opportunities, skills training and participation by domestic enterprises can strengthen the developmental impact of infrastructure investment.

Educational cooperation, cultural exchange, tourism and people-to-people contacts can further strengthen mutual understanding beyond formal diplomatic relations. The social dimension of the BRI is therefore closely connected with its economic and political dimensions and is important for its long-term legitimacy.

GOVERNANCE, TRANSPARENCY AND INSTITUTIONAL ACCOUNTABILITY :

The geographical scale of the BRI and its implementation across different legal and administrative systems create complex governance requirements. Differences in regulatory standards,

institutional capacities and administrative procedures can affect project implementation.

Transparent procurement, clear contractual obligations, independent monitoring and effective dispute-resolution mechanisms can strengthen the credibility of international infrastructure cooperation. Strong institutional arrangements are also necessary to reduce corruption risks and ensure efficient utilisation of financial resources.

The institutional dimension of the BRI is therefore not merely an administrative issue. It is central to the legitimacy, efficiency and social acceptance of projects. Effective and accountable institutions can help ensure that economic connectivity contributes to long-term and inclusive development.

AN INTEGRATED MODEL FOR ANALYSING THE BRI :

On the basis of the above discussion, the BRI can be analysed through five interconnected dimensions: economic connectivity, political cooperation, strategic interaction, social development and environmental sustainability. These dimensions should not be treated in isolation because each can influence the effectiveness and legitimacy of the others.

Economic connectivity can encourage political cooperation, while political stability can improve the effectiveness of infrastructure investment. Similarly, social acceptance and environmental sustainability can determine whether infrastructure projects remain viable and beneficial over the long term.

This integrated perspective suggests that the BRI should be understood not simply as a collection of infrastructure projects but as a multidimensional process of international cooperation. Its future trajectory will depend on the balance between economic opportunity and political risk, national interests and regional. cooperation, infrastructure expansion and environmental responsibility, and strategic competition and institutional collaboration.

So many studies have been done by the researchers on OBOR issues but most of them are on the policy issues of OBOR initiatives. Only few studies have been done on the background of the initiative, strategy, opportunities, challenges for implementation and implication for future of global development. This study contributes to the ongoing debate on the positive and negative effect of OBOR initiative through exploring the context of origin, strategy, challenges, opportunities and implication for global future development. It may be the first study which explores the details of the OBOR initiative of China, linking to global effect and future development.

OBOR INITIATIVE- CONTEXT, VISION, SCOPE AND GEOGRAPHICAL COVERAGE

THE CONTEXT :

OBOR initiative of china is the revival of old Silk Road. It is started by declaration of President Xi Jinping in 2013. It is one of the forms of China's Go West policy . The root of OBOR initiative is largely related to the domestic economy of China. According to some scholars, China faces economic slowdown in recent days and the purpose of OBOR initiative is to promote the Chinese economy through creating a large market in the world particularly in the central Asia. Cheap good manufacturing and exporting was the main strategy of China to capture international market in last three decades. This strategy is no longer applicable in future days due to high carbon cost, labor intensive goods, and labor-intensive industries. So, it is difficult for china to manage this transition from traditional pattern of development to new pattern of development for sustainable economic development , while china has already experienced to high sources of overseas direct investment. In the context of challenging situation, China feel for transformation of economic development pattern which requires the revival of Old Silk Road and forms One Belt One Road (Figure 1) which is recently known as Belt and Road initiative.

THE VISION :

The vision of OBOR is to connect the people over the world in terms of political dimensions, economic dimensions and cultural dimensions. The major goals of OBOR initiative are achieving policy coordination among partners, building infrastructure for improving connectivity, promoting trades, motivating financial integration and improving relationships among the people of partner countries. Policy coordination also requires agreement between partners particularly free trade agreement in terms of custom, approval and inspection management. The OBOR initiative already focuses on missing links in existing routes of transportation, port facilities, high quality railways, airways and sea ways, pipeline of oil and gas and telecommunication for enhancing connectivity among partner countries [68]. The Silk Road economic belt connects China to central Asia, Russia, central Asia and west Asia through Gulf Mediterranean Sea and China to Southeast Asia and south Asia through Indian Ocean. On the other hand, the 21st Century maritime Silk Road connects china to Europe and Africa through South China Sea and Indian Ocean.

THE SCOPE :

The scope of OBOR is so wide and ambitious. OBOR initiative is trying to touches almost all fields of development through its two mega and historical projects viz Silk Road Economic Belt and the 21st Century Maritime Silk Road (Table 2). The OBOR initiative mainly focuses infrastructure development, trend of multipolar globe, economic globalization, political coordination, cultural

diversification and advanced IT adoption for achieving policy coordination, improving..

Table 2. Major partners and events of OBOR.

Metric / Item	Description
65 Countries Accounted	Connects 65 countries and estimated 4.4 billion people. Accounted for over 63% of world population and 30% of GDP.
3 Rounds	The 3rd round of China's opening up after development of Special Economic Zones and accession to WTO.
70+ Countries	Over 70+ countries and international organizations have signed cooperation agreements with China.
5 Key Areas	The 5 key areas of cooperation are: policy coordination, facilities connectivity, trade, financial integration and people-to-people ties.
6 Economic Corridors	Set-up 6 economic cooperation corridors: China-Pakistan, New Eurasia Land Bridge, China-Mongolia-Russia, China-Central Asia-West Asia, China Indochina Peninsula, Bangladesh-China-India-Myanmar.
US$ 953 Billion	China's trade value with B & R countries reached US$953 billion in 2016, 25.7% of China's total trade.
8158 Contracts	8158 Contracts were signed by Chinese enterprises in 61 countries in 2016.
EXIM Bank of China	It had started financing over 1000 projects in 49 OBOR countries in 2016.

THE FINANCIAL SUPPORT :

Since OBOR is a mega and historical project so it requires huge amount of finance. US$ 40 billion Silk Road fund is already declared by the Chinese government which will support for implementing OBOR strategy. Some funding bodies like china Investment Corporation, Export-Import bank of China, China Development Bank, and the State Administration of Foreign Exchange have already allocated the fund in 2015 (Table 3). The fund will use for developing infrastructure and industrial projects for improving connectivity among OBOR partners. Infrastructure development directly focuses on roads, railways, sea ports and airports. The Asian Infrastructure Investment Bank (AIIB) was launched in 2014 especially dedicated for dealing the financial matter of OBOR. AIIB already got US$ 100 billon initial capital for dealing the matter of OBOR.

Table 3. The funding mechanism of OBOR initiative.

Institutions	Authorized capital size (US$ billion)	Recent lending per year (US$ billion)	Possible lending per year by early 2020s (US$ billion)
Multilateral Development Banks			
Asian Infrastructure Investment Bank	100	1.7	10 - 15
New Development Bank	100	1-1.5	5 - 7
Silk Road Fund	40	2 - 3	2 - 3
Commercial Banks	-	An estimated US$90 billion annual lending by the "big four" banks in 2016	-
Policy Banks			
China Development Bank (CDB)	-	15 (2015)	-
Export-Import Bank of China	-	24 (2015)	-

IMPLICATION FOR FUTURE OF GLOBAL DEVELOPMENT :

The philosophy of OBOR is not to threat the other nations but bring a sustainable economic growth by combining some key development initiatives. OBOR can influence the Chinese major policy, development strategy, foreign relations and investment in future which will be helpful for regional and global economic development . It also helps to connect its partners in terms of physical, political, cultural, financial, and psychological interactions. It is actually a way for future economic development through developing infrastructure from Asia to Africa and Europe and promoting economic flows among all partner countries. The six economic corridors of OBOR initiative connects the geopolitically important part from Southeast Asia, Central Asia, South Asia and Europe which helps to promote the business, economics, and influence of china over other countries. China already made success to make land links from Southeast China to Southeast Asia which was intended target of Asian Development Bank and others for making land connection. It is happened because of making economic corridor of OBOR initiative. Another corridor connects China from Kunming to Vietnam, Laos, and Myanmar. The economy of central Asia is very smaller than China. Due to OBOR initiative, China will be the top supplier of manufactured goods to Central Asia as well as top consumer of agricultural output and resources of Central Asia. Some geopolitical places would be economically viable after proper implementation of OBOR strategy.

CHALLENGES RELATED TO IMPLEMENTATION OF OBOR :

- Absolute size and scale of understanding in case of infrastructure development is one of the major challenges for OBOR initiative. Private funding is necessary alongside with the funding from Chinese government and AIIB for accomplishment of the infrastructure of OBOR initiative.
- A huge amount infrastructure development requires enough time to accomplish. No infrastructure will be effective for economic return before full accomplishment. Since china is now facing an economic slowdown, challenge of finance from local government and bad debt so in near future funding for infrastructure development may face difficulties and under pressure. So, it is necessary to invite some potential financial partner to improve the situation.
- The infrastructure of OBOR is not enough for bring proper economic benefits from OBOR initiative. The infrastructure of partner countries should be considered during infrastructure development for effectiveness of OBOR initiative. Some advanced countries have no requirement for infrastructure development but some developing countries require enough infrastructure to connect with other partners.
- Geography and topography of all partner countries are not same. It is very difficult to make smooth transportation way connecting high topography to low topographical region. Long distance, high and low topography, densely forest areas and high mountain should be considered during planning and construction of land routes.
- Geopolitical challenges are the major challenge for implementation of OBOR initiative. Relationship between India-Pakistan is not good and favor to OBOR initiative. Since China-Pakistan corridor passes through Pakistan controlled Kashmir which is extremely opposed by the Indian government. Dispute between Russia and Ukraine, civil wars in Syria, Iraq and Afghanistan are not favorable for OBOR initiative. Some other partner countries are suffering from political instability, and sanctions, corruption, expropriation and inefficiencies which affect the success of OBOR initiatives.
- Security challenges are the major challenges for partner countries. Some scholars think that it is very difficult to manage the internal and external national security of partner countries. In some cases, it may be influenced by Chinese military or navy.

CONCLUSION AND RECOMMENDATION :

The study analyzes the suitability of OBOR for future of global development in terms of economic sustainability, political stability and cultural exchange. The study argues that OBOR initiative has a great potential for future of global development. It also analyzes the context of origin, vision, strategy, challenges and opportunities of OBOR initiative considering its applicability for global

development. It also argues that China has a great influence on the OBOR initiative as an initiator and encouraging China's Go-West policy at all but it has a good impact on the economy of its partner as a whole. The article finds out some major challenges of OBOR like absolute size and scale, large infrastructure development, various geography and topography, geographical challenges and security challenges within the region. It suggests that strong coordination among partners of OBOR is necessary to get full fruits of OBOR through supportive law, policy, rules and regulations, proper strategy implementation, transparent procurement system, sincere consideration on political, financial, environmental and social factors. This study contributes to the ongoing debate on the positive and negative effect of OBOR initiative through exploring the context of origin, strategy, challenges, opportunities and implication for global future.

References :

- AIIB (2016) Asian Infrastructure Investment Bank. *Global Governance*, 22, 11-26.
- Andrea, A.J. (2014) The Silk Road in World History: A Review Essay. *Asian Review of World Histories*, 2, 105-127.
- Van Hout, M.C. and Bingham, T. (2013) "Surfing the Silk Road": A Study of Users' experiences. *International Journal of Drug Policy*, 24, 524-529.
- Wolff, P. (2016) China's "Belt and Road" Initiative-Challenges and Opportunities. German Development Institute, Bonn.
- Sheu, J.B. and Kundu, T. (2017) Forecasting Time-Varying Logistics Distribution Flows in the One Belt-One Road Strategic Context. *Transportation Research Part E: Logistics and Transportation Review*, in Press.
- Sarker, M.N.I. (2017) An Introduction to Agricultural Anthropology: Pathway to Sustainable Agriculture. *Journal of Sociology and Anthropology*, 1, 47-52.
- Sarker, M.N.I. and Jie, Z. (2017) Social Security for Vulnerable Groups in Bangladesh on Government Perspective: Contribution of Research Leader. *Journal of Public Policy and Administration*, 1, 1-9.

E.mail - nk1193434@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विशाल सोलंकी

स. आ. इतिहास,

श्री जैन कन्या पी.जी. महाविद्यालय, बीकानेर।

for the paper titled

राजसत्ता से संतत्व तक : गागरोन के राव प्रताप सिंह से संत पीपाजी बनने की यात्रा (युद्धभूमि के योद्धा से भक्ति-पथ के संत बनने तक की अनूठी यात्रा और उनकी वाणी का सामाजिक संदेश)

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 13-16

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

कार्यकारी संपादक, कंचनलता

गुगन निवास, 26, पटेल नगर, भिवानी, हरियाणा।

for the paper titled

डॉ. भरत मिश्र प्राची के त्रिपद काव्य स्वर में जीवन-मूल्य, लोकचेतना और सामाजिक सरोकार

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 17-23

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दिनेश कुमार गोगलू

(एम.ए हिन्दी) जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज.) NET-UGC (हिन्दी)

for the paper titled

प्रगतिवादी कवि नागार्जुन की कविता में मानवीय संवेदना

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 24-29

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

तारक नाथ नायक, शोधार्थी, संस्कृत विभाग,

बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद, झारखंड।

डॉ. मीना कुमारी, शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

एस. एस. एल. एन. टि. महिला महाविद्यालय, धनबाद, झारखंड।

for the paper titled

भर्तृहरि के नीतिशतक और आत्मीय-स्वजनों के प्रति कर्तव्य का दार्शनिक आधार : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एक सैद्धांतिक विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 30-35

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शहनवाज हुसैन, शोधार्थी,

डॉ. तनवीर हुसैन, सहायक प्राध्यापक,

गाँधी फ़ैज़–ए–आम (पी.जी.) कॉलेज, शाहजहाँपुर।

(महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली से सम्बद्ध)

for the paper titled

हाफिज़ रहमत खान और पीलीभीत नगर की स्थापना

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 36-40

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

आलोक कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

for the paper titled

जेन जी और वैश्विक भारत

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 41-44

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रितिक गुप्ता (पीएच.डी. शोधार्थी)

डॉ. प्रतिभा सोलंकी, शोध निर्देशक

माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,
मोती तबेला, इंदौर।

for the paper titled

रजनी गुप्त का उपन्यास 'कुल जमा बीस' और उसमें निहित जीवन मूल्य

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 45-50

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रशान्त कुमार शुक्ल, शोधार्थी असिस्टेंट प्रोफेसर, विभाग हिन्दी
आर. पी. पी. जी. कॉलेज कमालगंज, फर्रुखाबाद, उ. प्र.।

डॉ. आलोक विहारी लाल, शोध निर्देशक असिस्टेंट प्रोफेसर, विभाग हिन्दी
भारतीय महाविद्यालय, फर्रुखाबाद, उ. प्र.।

for the paper titled

समकालीन हिन्दी यात्रा-वृत्तान्त : शिल्पगत नवीनता और अभिव्यक्ति के नए क्षितिज

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 51-60

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शाजिया नसीब

शोधार्थी, शिक्षा संकाय,
वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक।

for the paper titled

डिजिटल युग में निजता का अधिकार और मानवाधिकार : भारत के संदर्भ में अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 61-66

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रियांशु प्रियदर्शनी, शोधार्थी

डॉ. नीरज कुमार, सहायक प्रोफेसर

राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. सी. वी. रमन यूनिवर्सिटी, वैशाली, बिहार।

for the paper titled

भारतीय नागरिक समाज का विकास : सैद्धांतिक विमर्श से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तक

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 67-74

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रंजू कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखंड)

for the paper titled

बौद्ध धर्म और शिक्षा का एक संक्षिप्त अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 75-77

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

गौरव कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।

for the paper titled

भारत की गुरू शिष्य–परंपरा का मूलाधार 'आचार्य देवो भव'

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 78-81

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Ashwani Kumar Srivastava

Asst. Prof., Department of Business Management.
Constituent College (Sultanpur), Dr. Ram Manohar Lohiya Avadh University Ayodhya. UP

for the paper titled

The Fear of Missing Out in Digital Marketing : The Interplay of Consumer Culture, Social Influence and Purchase Urgency in Shaping Consumer Buying Behaviour

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 82-92

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सुनीति कुमारी

पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

for the paper titled

गांधी : सामाजिक क्रांति के सूत्रधार

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 93-98

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रूपेश रघुवंशी, शोधार्थी
राजा शंकर शाह विश्वविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
डॉ. सुशील ब्यौहार, शोध निर्देशक, प्राध्यापक, हिन्दी
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

for the paper titled

पंचवटी की पर्णकुटी : रामकथा और लोकस्मृति का सांस्कृतिक संगम

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 99-103

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अर्चना सिन्हा

पूर्व छात्रा–वाणिज्य, भिलाई महिला महाविद्यालय,
हॉस्पिटल सेक्टर, भिलाई, जिला–दुर्ग (छ.ग.)

for the paper titled

डिजिटल युग में व्यक्तिगत वित्त प्रबंधन के प्रति युवाओं की जागरूकता एवं वित्तीय व्यवहार का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 104-116

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Neeta Gupta

Assistant Professor, Department of English
Dayanand Vedic College, Orai.

for the paper titled

An Ecocritical Approach To Different Shades of Nature In Ezekiel's Poetry

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 117-121

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

मोनिका

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

हल्द्वानी, नैनीताल–263139

for the paper titled

आधुनिक हिंदी काव्य के आधार पर महाभारत के चरित्रों का चित्रण

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 122-126

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. प्रदीप कुमार मीणा

वि.सं.यो, सहायक आचार्य (संस्कृत साहित्य)

ति. श्री गो. राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, नाथद्वारा, राजस्थान।

for the paper titled

पाणिनीयव्याकरणं तथा कम्प्यूटेशनल् लिङ्ग्विस्टिक्स् : तुलनात्मकम् अध्ययनम्

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 127-134

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

उषा रानी

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में विवाह-संस्था, पीढ़ीगत संघर्ष और स्त्री की निर्णय-स्वायत्तता : समाजशास्त्रीय एवं स्त्रीवादी अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 135-139

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रथम भनोत्रा

सहायक प्राध्यापक, इतिहास,
शासकीय महाविद्यालय, कन्नौद (म. प्र)

for the paper titled

भारतीय ज्ञान परंपरा में रामायण और महाभारत का वैज्ञानिक व सांस्कृतिक योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 140-143

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विजेता दीक्षित

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
खुन खुन जी गर्ल्स पीजी कॉलेज, लखनऊ।

for the paper titled

औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का कानपुर के वस्त्र उद्योग पर प्रभाव (1858–1947)

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 144-150

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Manu Sharma

Associate Professor, Department of History
Guru Nanak Dev University, Amritsar, Punjab.

for the paper titled

An Ethnographic Study on Non-Brahmanical Wandering Priests in North India : The Living Embodiments of Shiva

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 151-157

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

हेमलता अहिरवार, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय – छतरपुर (म.प्र.)
प्रोफेसर सरोज गुप्ता, शोध निर्देशक,
पं0 दीनदयाल उपाध्याय, शासकीय कला एवं वाणिज्य (अग्रणी)
महाविद्यालय सागर, (म.प्र.)

for the paper titled

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी बाल साहित्य की विधाएँ और बाल मन : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 158-164

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Mr. Gagandeep Singh, Research Scholar

Prof. Suresh Malik, Guide

Department of Physical Education,
Chaudhary Bansi Lal University, Bhiwani (Haryana)

for the paper titled

The Role of Sleep in Athletic Recovery and Performance : A Systematic Review

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 165-170

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. विनोद कुमार नागले

उच्च. माध्य. शिक्षक (अर्थशास्त्र)

शासकीय उ. मा. विद्यालय निमोटी, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

for the paper titled

छिंदवाड़ा जिले में सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि उत्पादकता का योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 171-178

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. शीलचन्द्र गुप्ता, प्राध्यापक (अर्थशास्त्र)

चंद्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय सीहोर (म0प्र0)

शक्ति सिंगारे, शोधार्थी (अर्थशास्त्र)

आर.पी.ई.जी. बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.)

for the paper titled

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव (छिंदवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 179-186

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अखिलेश कुमार गुप्ता, प्राचार्य,

पं. रामसुंदर शुक्ला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान पहड़िया रीवा (म.प्र.)

सुरेखा द्विवेदी, शोधार्थी (राजनीति विज्ञान)

शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

for the paper titled

भारतीय राजनीति में राजनैतिक दलों का स्वरूप

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 187-195

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

निधि शर्मा, शोधकर्त्री,

डॉ. कलावती स्वामी, शोध निर्देशिका एवं सह आचार्या,

श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान।

for the paper titled

उच्च माध्यमिक स्तर के गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं में तनाव का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 196-203

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Rakeshbhai R. Vankarsadhu

Assistant Professor, Kapadia NMMS arts and the SNSBS commerce college, Sankheda.

for the paper titled

Socio-Economic Pillars of Maternal and Child Health Transformation : An Economic Analysis with Special Reference to Chhotaudepur District of Gujarat (2014–2024)

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 204-210

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Nagma Khanam

Assistant professor, Deptt. of Political Science,
D. V. College, Orai.

for the paper titled

Silk Road Economic Belt

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-2, Page No. 211-222

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152